साहित्य-सुमन-माला पुष्प—८

काम-कुंज

लेखक

श्रीसंतराम बी० ए०

संपादक

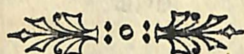
श्रीप्रेमचंद

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस

लखनऊ

प्रथमावृत्ति] १९२९ [मूल्य १॥)



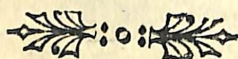
मुद्रक

श्रीकेसरीदास सेठ

सुपरिंटेंडेंट

नवलकिशोर-प्रेस

लखनऊ



दो शब्द

काम-शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण धर्म और नीति के नाम पर हमारे देश में दुराचार, व्यभिचार और अनाचार का कितना प्रचार हो रहा है, यह विज्ञ पाठकों से छिपा नहीं है। स्त्रियों की मौन-भाषा, रमणी-हृदय, उनके संकेत आदि का सच्चा ज्ञान न होने से पुरुष उनकी कार्य-कृतियों का और आचार-विचारों का कैसा विपरीत अर्थ लगाते हैं और प्रच्छन्नरूप से अपने जीवन के सार्थक, सफल और सुखी होने में कैसी और कितनी अड़चनें पैदा कर लेते हैं, इसके कड़ुए अनुभव से शायद ही कोई पाठक बचा हो।

लेखक ने इस विषय का पर्याप्त परिशीलन किया है। मनुष्य-जीवन को सुखी और सर्व-संपन्न बनाने में उसकी जीवन सहचरी की अनुरूपता और अनुकूलता ही मुख्य है। सर्व-संपन्न योरोप और अमेरिका में दंपति-सुख का अभाव ही उनकी आंतरिक अशांति का कारण है। आज भारत में भी पाश्चात्य सभ्यता के साथ-साथ इस अशांति ने भी ज़ोर पकड़ा है। इस हृदय की अशांति या आध्यात्मिक सुख के अभाव के कारण कितने घर वीरान हो गए

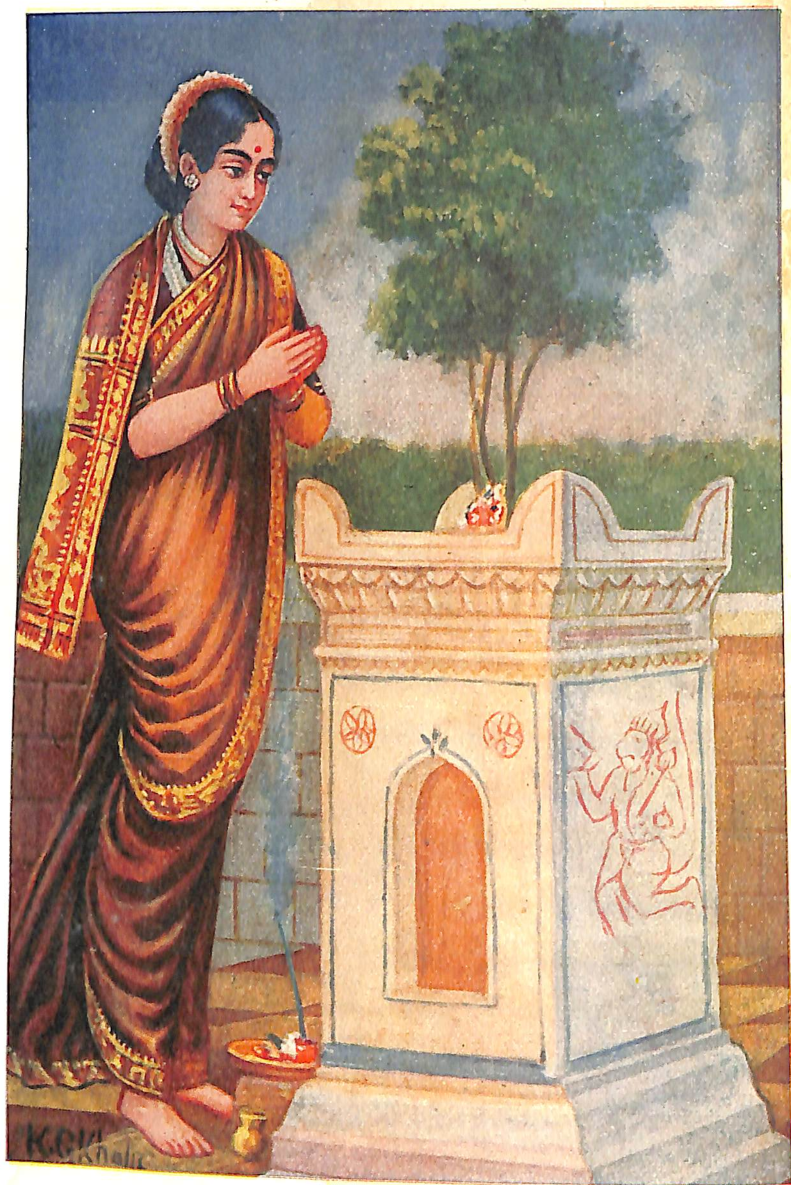
और होते जा रहे हैं । बस, इसी बात को रोकने के लिये, नव दंपति को सुख के सच्चे मार्ग पर लाने के लिये, उनकी जीवन-यात्रा में इस शास्त्र के अल्प ज्ञान या अज्ञान-जनित दुःखों को दूर करने के लिये, अनेक मनोरम दृष्टांतों और सिद्धांतों द्वारा लेखक ने प्रायः सभी ज्ञातव्य और उपयोगी बातों का इस पुस्तक में उल्लेख किया है।

आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि हमारे पाठक इसको पढ़कर कम-से-कम इसमें दिखाई हुई बुराइयों से तो बचेंगे ही।

संपादक

विषयानुक्रमणिका

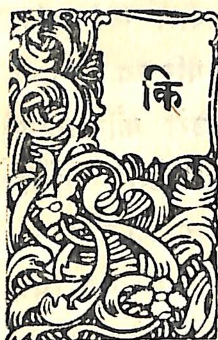




सुभार्या

काम-कुंज

सुभार्या



(कि)न-किन सद्गुणों के होने से स्त्री सुभार्या, सुगृहिणी और सुमाता हो सकती है, आज हम इसी पर विचार करना चाहते हैं। इस कलिकाल में लक्ष्मी ने सरस्वती का स्थान छीन लिया है। सौ पीछे नब्बे युवक नगदनारायण की आराधना में लगे हुए हैं और धन के सामने स्त्री के शेष सभी गुणों को गौण समझते हैं। एक लखपती की अशिक्षिता लड़की एक मध्यम स्थिति के पुरुष की सुशिक्षिता लड़की से अधिक पसंद की जाती है, और

विवाह के लिये भारी-भारी दहेज़ों का तक़ाज़ा होता है, तो भी अंत में सदा सद्गुण ही मान पाते हैं, और गुणवती लड़कियाँ ही गृहस्थी को सुखधाम बनाती हैं। धन के लोभ से विवाह करनेवालों का वैवाहिक जीवन कभी भी सुखी नहीं हो सकता।

स्त्री का पहला गुण सतीत्व है। यह इतना आवश्यक है कि इसके बिना कोई भी स्त्री पत्नी बनने के योग्य नहीं। इतना ही पर्याप्त नहीं कि पुरुषों के प्रति उसका व्यवहार अशिष्ट न हो, इतना ही नहीं कि वह किसी अविनीत संकेत को सुनकर आँखें नीची किए मुसकिराती हुई मुँह फेरकर चली जाय; किंतु ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि वह इसे समझी ही नहीं, और उस पर इस संकेत का उतना ही संस्कार पड़ा है, जितना कि पास खड़े स्तंभ पर। शिथिल आचारवाली स्त्री का तो परिचय भी बुरा समझा जाता है, फिर पत्नी-रूप में उसे कौन ग्रहण करना पसंद करेगा? 'हँसने-खेलनेवाली' और 'खुली' लड़कियाँ बातचीत करने के लिये तो अच्छी होती हैं, परंतु उनसे विवाह करते सभी घबराते हैं। मेरे एक मित्र अपने भाई के लिये एक लड़की को देखने गए, और इनकार करके चले आए। मैंने पूछा—आपने किस कारण संबंध करने से इनकार कर दिया? उन्होंने उत्तर दिया—मैं तो लड़की को देखकर चकित रह गया। उसकी आँखें नाच

रही थीं। मैंने समझा, यह हमारे घर में टिकने योग्य नहीं। वह पुरुष बड़ा ही पशु है, वह अभागा बड़ा ही जघन्य है, जो एक आचारहीन स्त्री को अपनी धर्मपत्नी बनाता है। जो युवक और युवती विवाह से पहले ही एक दूसरे के साथ बिगड़ जाते हैं, उनका विवाह के बाद व्यभिचार में पड़ जाना अवश्यंभावी है। एक अनुभवी गृहस्थ का कहना है कि जिन परिवारों में व्यभिचार फैलता है, उनमें सौ में से निन्नानवे अवस्थाओं में सारा दोष पति का होता है।

सुभार्या का दूसरा गुण मिताचार है। मिताचार से हमारा अभिप्राय केवल यही नहीं कि वह मांस, मदिरा और तमाकू न पीती हो। मदिरा-पान करनेवाली स्त्री से तो एक वेश्या के साथ विवाह कर लेना अच्छा है। मिताचार में गंभीरता, स्थिरता, सावधानता और समीचीन आचरण, सभी आ जाते हैं। उछल-कूद करनेवाली, चंचल लड़कियाँ बड़ी दिलखुश करनेवाली होती हैं; परंतु मा बन जाने पर—घर की स्वामिनी हो जाने पर—उनको यह छिछोरापन छोड़ना पड़ता है। जो स्त्री मा बनकर भी बच्ची बनी रहती है, उसका ईश्वर ही रक्षक है। मिताचारिणी स्त्री सदा प्रसन्न रहती है। दरिद्रता भी उसकी प्रसन्नता को नष्ट नहीं कर सकती। उसकी संतान और घर-गृहस्थी सदा संतुष्ट रहती है। उसका

पति उस पर विश्वास करता है। वह पुरुष बड़ा अभागा है, जिसे घर में पैर रखते ही संदेह, भय और शंका घेर लेती है। स्त्री के सतीत्व की शंका नहीं, वरन् इस बात की शंका कि मेरी स्त्री मेरे स्वार्थों का ध्यान रखती है या नहीं, संतान के स्वास्थ्य तथा आचरण की रक्षा करती है या नहीं, और फ़िज़ूलख़र्ची में रुपया-पैसा नष्ट तो नहीं करती। वह पुरुष बड़ा हतभाग्य है, जो घर में अपनी सारी चीज़ों को विना ताला लगाए, स्त्री के हवाले, छोड़कर बाहर नहीं जा सकता। वही पुरुष सुखी है, जो अकस्मात् सूचना मिलने पर क्षण-भर में अपना सारा घर-बार स्त्री के सिपुर्द करके बाहर जा सकता है। जिसे लौटने पर घर की चीज़ों को बिगड़ी हुई देखने का उतना ही डर है, जितना कि सूर्य के पश्चिम में उदय और पूर्व में अस्त होने का डर है, जो घर आकर देखता है कि जो पुस्तकें और काग़ज़-पत्र मैं इधर-उधर बिखरे हुए छोड़ गया था, वे सब भार्या ने सुव्यवस्थित दशा में रख दिए हैं, और बैठक में झाड़ू लगा दी गई है, ऐसे पुरुष को कोई सच्ची चिंता नहीं तंग करती, ऐसे पुरुष को कोई कष्ट नहीं सताता। ऐसा पुरुष, अपनी सुभार्या के प्रताप से, जहाँ एक ओर गृहस्थी और बच्चों से मिलनेवाले सभी अवर्णनीय आनंद भोगता है, वहाँ साथ ही अविवाहित पुरुषों की तरह

घरेलू चिंताओं से भी मुक्त रहता है। विश्वास-पात्र पत्नी के कारण वह संसार में काम भी बहुत कर सकता है।

जो स्त्री अपने रूप पर अभिमान करती है, जो गहने-कपड़े की बड़ी शौक़ीन है, जो ख़ुशामद-पसंद है, जो इधर-उधर ब्याह-शादियों, मेलों और उत्सवों में बहुत जाती है, जो आवारा फिरती और हाव-भाव दिखलाती है, वह कभी विश्वास-पात्र नहीं हो सकती। इसके विपरीत, शंकाशील—शक्की—पति भी अपने गृहस्थ-सुख का नाश कर लेता है।

मिताचार के उपर्युक्त वर्णन से यह न समझ लिया जाय कि स्त्री की गंभीरता उदासी की सीमा तक पहुँची हुई होनी चाहिए। सदा उदास, विषण्ण और निरानंद बनी रहनेवाली स्त्री एक घृणित जीव है। उसके साथ कोई भी पुरुष सुखी नहीं रह सकता। उदास बैठी रहनेवाली स्त्रियाँ भी दूसरे समयों में खिलखिलाकर हँसती हैं, उनका उल्लास दूसरों के लिये और उदासी पति के लिये होती है; दूसरों के साथ वे मुसकिराती और विनोद की बातें करती हैं, परंतु पति के भाग में उनका विषाद और उदासी ही आती है। एक घड़ी में वे फुदकती फिरती हैं, और दूसरी घड़ी में वे सूई के टूट जाने पर या किसी ऐसी ही दूसरी तुच्छ बात पर रोती हुई देखी जाती हैं। इसी को आवेग कहते हैं! वस्तुतः यह भी एक तमाशा है! माता

का सबसे मधुर संगीत वह है, जो अपने साफ़-सुथरे, मोटे-ताज़े और गुलाबी गालोंवाले बच्चे को खिलाती हुई उसकी प्रशंसा में गाती है। वही संगीत 'प्रेम का आहार' और "आत्मा का भोजन" है। अपनी विद्या का प्रदर्शन करने के लिये हारमोनियम के साथ मचाया हुआ शोर, जो कि अपने कौशल के दंभ के सिवा और कुछ नहीं, स्त्री का सच्चा सुखद संगीत नहीं। साफ़-सुथरा घर है। सामने कुछ फूलों के पौधे लगे हुए हैं। पति और पत्नी एक बच्चे को गोदी में उठाए हुए हैं। दो-तीन बड़े बच्चे पास खड़े हैं। माता प्रेम-भरी चितवन से उन्हें निहार रही है। इससे बढ़कर आनंददायक दृश्य संसार में और क्या हो सकता है? ऐसे परिवार के आनंद को दरिद्रता भी नष्ट नहीं कर सकती।

जो स्त्री गंभीर नहीं, उसका प्रेम भी उथला ही होता है। वेश्याएँ कभी प्रेम नहीं करतीं। उनका प्रेम केवल पाशविक होता है। वह शीघ्र ही तृप्त हो जाता है। उनको बदलते तनिक भी दुःख नहीं होता, वरन् प्रसन्नता होती है। हलके हृदयवाली स्त्रियों में तीव्र प्रेम बहुत कम होता है। जो प्रेम एक ही चीज़ तक परिमित नहीं, वह प्रेम नहीं, प्रेमाभास है। परंतु इस विषय में एक बात ध्यान देने योग्य है। प्रेम की तीव्रता को प्रकट करने का ढंग बहुत कुछ शारीरिक गठन और देशाचार पर भी निर्भर



माता का सबसे मधुर संगीत वह है, जो अपने साफ़-सुथरे, मोटे-ताज़े और गुलाबी गालोंवाले बच्चे को खिलाती हुई उसकी प्रशंसा में गाती है।

पृष्ठ-संख्या ६

है। बहुत-से लोग अँगरेज़ स्त्रियों को स्वतंत्रता-पूर्वक विचरते, हँसते-खेलते और नाचते-कूदते देख उनके आचरण के संबंध में बहुत बुरी सम्मति बना लेते हैं। वे उन्हें अपने लोकाचार की दृष्टि से देखते हैं; परंतु यह उनकी भारी भूल है। मदरास, महाराष्ट्र और गुजरात में सभी स्त्रियाँ खुले मुँह रहती हैं, और सभा-समाजों में जाते उन्हें कोई संकोच नहीं होता; अब यदि अपनी स्त्री को बुर्क़े में ढँपे रखनेवाला उत्तर-भारत का कोई मुसलमान उन प्रांतों की स्त्रियों को आचार-हीन समझे, तो क्या उसकी यह धारणा सत्य कही जा सकती है? जिस समाज में परदा नहीं और स्त्री-पुरुष एक दूसरे से मिलते रहते हैं, वहाँ लोगों को आत्म-संयम का बचपन से ही अभ्यास हो जाता है। उदाहरण के लिये मान लीजिए कि तीन पुरुष बैठे हैं। उनमें से एक अँगरेज़, दूसरा महाराष्ट्र हिंदू और तीसरा पेशावर का मुसलमान है। एक स्त्री उनके सामने से होकर निकल जाती है। अब वह अँगरेज़ तो कदाचित् स्त्री के पास से होकर निकलने को एक साधारण बात समझकर उसकी ओर देखेगा तक नहीं; हिंदू शायद आँख उठाकर देख ले, परंतु मुसलमान न केवल उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़ देखेगा ही, वरन् वह कुछ कुचेष्टाएँ भी करने लगेगा। हाल ही की बात है, बंबई में एक बदमाश मुसलमान ने एक पारसी लड़की का खुले

बाज़ार में बलात् चुंबन कर लिया था। तीनों धर्मों के माननेवाले उपर्युक्त तीनों मनुष्यों के आचार के भिन्न-भिन्न होने का कारण स्पष्ट ही है। और तो और, इस दृष्टि से अँगरेज़ों और फ़्रांसीसों में भी भेद है। एक अँगरेज़ महाशय लिखते हैं कि "जब मैं फ़्रांस में था, तब मेरा एक सत्रह वर्ष की रंग-रँगीली लड़की से परिचय हो गया। मैं एक दिन उससे कह रहा था कि कभी तुम एक के साथ हँसकर उसे मुग्ध कर लेती हो, और फिर उसे छोड़कर दूसरे के साथ मीठी-मीठी बातें करने लगती हो। तुम्हारा इस प्रकार अपने कृपा-पात्रों को जल्दी-जल्दी बदलते रहना ठीक नहीं। उस लड़की ने अपनी एक बाँह ऊपर की ओर और दूसरी नीचे की ओर फैलाकर, अपने-आपको एक पैर पर उठाकर, अपने शरीर को एक ओर झुकाकर, और इस प्रकार अपने को उड़ने की स्थिति में डालकर मेरे गंभीर उपदेश का उत्तर मधुर स्वर से एक पद गाते हुए यह दिया कि जब प्रेम को परमेश्वर ने पंख दिए हैं; तब क्या वह उनके साथ इधर-उधर फड़फड़ाता न फिरे ? उस युवती की रसिकता, बुद्धि-विलास और तर्क ने मुझे निरुत्तर कर दिया। मेरे फ़्रांस छोड़ने के बाद उसने एक बहुत योग्य पुरुष से विवाह कर लिया। अब वह एक अत्युत्तम भार्या और माता है।"

वही महाशय फिर कहते हैं कि जो बात कभी फ़्रांस में

भली रहती है, वह इँगलैंड में बिलकुल भली नहीं। हमारा शिष्टाचार अधिक गंभीर है; हमारे यहाँ स्थिरता नियम है और छिछोरापन अपवाद। फ़्रांसीसी स्त्रियों की अपेक्षा अँगरेज़-पत्नियों का वैवाहिक अनुराग अधिक प्रगाढ़ होता है।

सुभार्या का तीसरा गुण उद्यम है। उद्यम से अभिप्राय केवल रुपया कमाने या बचाने के लिये शारीरिक चेष्टा या परिश्रम नहीं। उद्यम उन लोगों में भी पाया जा सकता है, जिनके पास इतना धन है कि वे जानते नहीं कि हम इसे क्या करें, और उधर दरिद्र किसानों और मज़दूरों की स्त्रियाँ भी आलसी हो सकती हैं। जीवन की ऐसी कोई भी अवस्था नहीं, जिसमें परिवार के सुख और समृद्धि के लिये भार्या में उद्यम का होना आवश्यक न हो। यदि वह आलसी होगी, तो नौकर भी आलसी बन जायँगे, और उससे भी बढ़कर बुरी बात है कि संतान स्वभाव से ही सुस्त होगी। उसके घर में कोई काम कितना भी आवश्यक क्यों न हो, वह अंतिम घड़ी के लिये स्थगित कर दिया जाता है, और तब वह बुरी तरह से किया जाता है, और कई अवस्था में बिलकुल हो ही नहीं पाता। अतएव आलसी स्त्री, चाहे कितने ही रईस, अमीर और उच्च घराने की क्यों न हो, पति के लिये एक शाप सिद्ध होती है।

एक युवक की एक लड़की के साथ सगाई होने की

बातचीत हो रही थी। लड़की की दो और बहनें भी थीं। वह युवक गुप्त-रूप से अपनी भावी मँगेतर को देखने गया। तीनों बहनें मौजूद थीं। उसकी मँगेतर बोली—"न-जाने, हमारी सुई कहाँ रक्खी गई।" इस पर उस युवक ने निश्चय कर लिया कि जो लड़की अपनी अलग सुई भी नहीं रखती, और जिसे यह भी पता नहीं कि वह साझे की सुई भी कहाँ रक्खी हुई है, मैं उसके साथ विवाह करने का कभी विचार भी न करूँगा। उद्यम-हीन होने का यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

अब आलसी लड़की के कुछ बाह्य लक्षण सुनिए। यदि उसकी जीभ सुस्त है, तो प्रायः यह निश्चय ही समझिए कि उसके हाथ और पैर भी वैसे ही होंगे। जीभ की सुस्ती से तात्पर्य चुप नहीं। न बोलना भी कई अवस्थाओं में बहुत अच्छा होता है। परंतु हमारा अभिप्राय मंद और कोमल उच्चारण, शब्दों को बोलने के स्थान में निःश्वास के साथ बाहर निकालने, एक प्रकार से ध्वनियों को बाहर फेंकते जाने से है, मानो बोलनेवाली के पेट में कुछ गड़बड़ है। एक उद्यमी स्त्री का उच्चारण प्रायः सजीव, स्पष्ट और ध्वनि, यदि मज़बूत नहीं तो कम-से-कम दृढ़ अवश्य होती है। वह पुरुष-सुलभ नहीं, वरन् जितना भी हो सके स्त्री-सुलभ होती है, वह न घों-घों करके बोलती, न शोर ही मचाती है, वरन् उसकी ध्वनि द्रुत, स्पष्ट

और निर्दोष होती है। इस संसार में स्त्री के निचले जबड़े के सुस्ती के साथ ऊपर-नीचे हिलने, और अर्धव्यक्त शब्दों की लंबी लड़ी बाहर निकालते जाने से बढ़कर जघन्य चीज़ और दूसरी नहीं। जिस पुरुष में कुछ भी सजीवता है, उसके लिये ऐसी स्त्री के साथ देर तक प्रेम करना असंभव है।

दाँतों का भी शरीर के दूसरे अंगों और मन की क्रियाओं के साथ गहरा संबंध है। दाँतों की क्रिया से भी स्त्री के आलसी या उद्यमशील होने का पता लग जाता है। जो स्त्री भोजन करने में सुस्त नहीं, वह काम करने में भी सुस्त नहीं होगी। यह हो सकता है कि इस डर से कि मैं कहीं दूसरों से पहले न खा बैठूँ, स्त्री थाली में से थोड़ा-थोड़ा भोजन उठाए, और देर के बाद धीरे-धीरे मुँह में ग्रास डाले; परंतु जब वह भोजन को दाँतों से काटेगी, तब प्रकृति ने उसे जो कुछ सिखाया है उसे वह छिपा नहीं सकती। आप निश्चय रक्खें, यदि उसके जबड़े मंद गति से हिलते हैं, यदि वह भोजन के चबाने के स्थान में उसे निचोड़ती है, यदि वह इस प्रकार खाती है, जिससे संदेह होता है कि वह अंत में इसे निगल जायगी या मुख से बाहर फेंक देगी, तो निश्चय जानिए वह काम-काज में बड़ी आलसी है। उसके काढ़े हुए रूमाल और उसके बनाए हुए चित्रों पर मत जाइए। उसे

रोटी खाते देखिए। यदि वह खाने में मिचमिच करके दो घंटे नहीं लगा देती, तो समझिए कि वह अवश्य उद्यमी है। इस उद्यम के बिना स्त्री पति के लिये सहायक के स्थान में एक बोझ बन जाती है, और पुरुष के हृदय में ऐसे आलस्य के पुंज के प्रति प्रेम भी बना नहीं रह सकता।

उद्यम का एक दूसरा चिह्न तेज़ चलना और किसी क़दर भारी क़दम रखना है, जिससे प्रकट होता है कि चलनेवाली अपनी सदिच्छा से पैर रख रही है। यदि शरीर थोड़ा-सा आगे की ओर झुका हो, और आँखें उसी दिशा में स्थिरता से देख रही हों और पैर चल रहे हों, तो और भी अच्छा है; क्योंकि ये बातें लक्ष्य पर पहुँचने की तत्परता को प्रकट करती हैं। रमता फिरने और पोले-पोले पैर रखनेवाली लड़की, जो इस प्रकार चलती है मानो उसे परिणाम की कुछ भी परवा नहीं, उद्यमी नहीं हो सकती। ऐसी लड़की में प्रेम की भी प्रायः कमी होती है। विवाह हो जाने पर वह घृणा-जनक पत्नी और स्नेह-शून्य माता सिद्ध होती है। पति और संतान भी उसकी कुछ परवा नहीं करती। बुढ़ापे और बीमारी में पत्नी से जो स्वाभाविक सुख मिलता है, वह उससे भी शून्य होती है।

तड़के उठना उद्यम का एक और चिह्न है। यद्यपि धन की दृष्टि से धनाढ्य-घरानों में यह स्वभाव उतना महत्त्व-पूर्ण न हो, परंतु दूसरी दृष्टियों से इसका वहाँ भी महत्त्व

है; क्योंकि ऐसी स्त्री के प्रति पति का प्रेम बना रहना बड़ा कठिन है, जो कभी ओस नहीं देखती, जिसे उदय होते हुए सूर्यभगवान् के दर्शन नहीं होते, और जो खाट से उठते ही खाने बैठ जाती है, और भूख न होने पर भी स्वादिष्ट भोजनों को चट कर जाती है। पति को उसके इस स्वभाव से अवश्य घृणा हो जाती है। इसलिये लड़कियों में बचपन से ही तड़के उठने का स्वभाव डालना चाहिए। तड़के उठने से स्त्री को अनेक लाभ हैं—उसका स्वास्थ्य बना रहता है, उसका सौंदर्य जल्दी नष्ट नहीं होता, वह मरने तक पति की प्यारी बनी रहती है और आलस्य से जो हानियाँ होती हैं, उनसे वह आजन्म बची रहती है।

सुगृहिणी का चौथा गुण है मितव्ययिता या किफ़ायत। मितव्ययिता से तात्पर्य फ़िज़ूलख़र्ची का उलटा है। इसका मतलब कंजूसी या पेट को नोचकर धन बचाना नहीं; किंतु इसका अर्थ सर्व अनावश्यक ख़र्चों से तथा सभी प्रकार की चीज़ों के अनावश्यक उपयोग से बचना। किसी भी स्थिति का मनुष्य क्यों न हो, यह गुण बड़े महत्त्व का है। फ़िज़ूलख़र्च स्त्रियाँ लखपतियों को भी कंगाल बना देती हैं।

जो स्त्री बहुमूल्य वस्त्रों की शौक़ीन है, जो अपनी स्थिति से बढ़कर क़ीमती पोशाक पहनती है, जिन चीज़ों को ख़रीदने का उसमें सामर्थ्य नहीं है, उन सबको ख़रीद

लेती है, जो उपयोगी से भड़कीली को, जो कम नुमायशी, परंतु अधिक पायदार से रँगीली तथा बोदी चीज़ को पसंद करती है, समझ लीजिए कि वह फ़िज़ूलखर्च है। जो क़ीमती खाने, क़ीमती असबाब और क़ीमती विनोद चाहती है, अपने पास जितना रुपया हो, उस सारे को खर्च करके ही तृप्त होती है, जो अमीर स्त्रियों के गहनों और दूसरी चीज़ों की प्रशंसा करती नहीं थकती और उनकी नक़ल करने के योग्य बनने की लालसा करती है, वह परम सुंदरी होने पर भी पति के लिये सुखदायिनी नहीं हो सकती।

फ़िज़ूलखर्ची के बाहरी मोटे-मोटे चिह्न ये हैं—अँगूठियाँ, चूड़ियाँ, हार, बकसूए, झूठे या सच्चे मोतियों की मालाएँ, सारांश यह कि वे सब चीज़ें जिन्हें स्त्रियाँ गहने के नाम से शरीर पर धारण करती हैं, ये गहने लखपतियों और राजाओं के घरों में तो शायद उचित जान पड़ें ; परंतु जब ये मध्यम स्थिति के परिवारों में प्रकट होते हैं, तो वे केवल उस दरिद्रता को ही प्रकट करने का काम देते हैं, जिसको इनके द्वारा छिपाने का यत्न किया जाता है। ये मैली, भद्दी और क्षुद्र वस्तुएँ मध्यम स्थिति के लोगों में उस प्रवृत्ति की द्योतक हैं, जो सदा उस चीज़ की प्राप्ति के लिये यत्न करती रहती हैं, जिसे वह प्राप्त नहीं कर सकतीं। ऐसी लड़की की मनःकामना कभी पूरी नहीं

होती। उसे घोड़ा मिल जाय, तो वह गाड़ी माँगने लगती है, गाड़ी मिलने पर वह चार घोड़ों की बग्घी चाहती है। इस प्रकार वह आयु-पर्यंत अपने पति को तंग करती रहती है। उस बेचारे के पास न संपत्ति रहती है और न शांति। तर्क ऐसी स्त्री को कहता है कि फ़ैशन और गहने-कपड़े में दुनिया परे-से-परे है। सबको मात कर देना तुम्हारे लिये संभव नहीं; परंतु तर्क और जड़ाऊ हार और चूड़ियाँ भला एक साथ रह सकते हैं? जो लड़की इतना नहीं समझ सकती कि काँच और पीतल के टुकड़ों से मेरा शरीर सुंदर के स्थान में कुरूप मालूम देता है, जो इतनी मूर्खा है कि साफ़-सुथरे सूती तथा रेशमी वस्त्रों से बढ़कर भी किसी दूसरी चीज़ को शरीर का शृंगार समझती है, ऐसी स्त्री को पत्नी बनाकर कोई मूर्ख ही अपना धन उसके सिपुर्द कर सकता है।

भार्या का पाँचवाँ गुण स्वच्छता है। यह गुण स्त्री के लिये परमावश्यक है; क्योंकि मैली-कुचैली स्त्री के प्रति किसी भी पुरुष को सच्चा, गहरा और चिरस्थायी प्रेम नहीं हो सकता। पुरुष अपने शरीर के विषय में असावधान हो सकते हैं, अपने कार-बार के कारण, या अपने वस्त्रों की सफ़ाई पर ध्यान देने के लिये समय न मिलने के कारण, पुरुषों के अपने वस्त्र तथा स्वभाव गंदे हों तो हों; परंतु वे इस मैलेपन को अपनी स्त्रियों में देखना पसंद

नहीं करते। स्त्रियों में सदा चारुता रहनी चाहिए, परंतु चारुता और मैल दोनों इकट्ठे नहीं रह सकते।

पति केवल कपड़ों और वेष-भूषा की ही सफ़ाई नहीं चाहता, वह प्रत्येक बात में स्वच्छता चाहता है। स्त्रियाँ प्रायः घर में तो मैले-कुचैले कपड़े पहनकर बैठी रहती हैं, परंतु बाहर जाते समय ख़ूब सज-धज करती हैं। इस नैमित्तिक स्वच्छता पर समझदार पति संतुष्ट नहीं हो सकता। वह क्या घर के भीतर और क्या बाहर, क्या दिन में और क्या रात में, क्या फ़र्श पर और क्या रसोई में स्त्री को सदा साफ़-सुथरी देखना चाहता है। कपड़ों की सफ़ाई के ख़र्च और दौड़-धूप पर वह भले ही बड़-बड़ाए, परंतु यदि स्त्री स्वच्छ न होगी, तो वह और भी अधिक कुड़कुड़ाएगा। एक बार किसी चित्रकार ने एक चित्र बनाया था। उसमें तीन पुरुष सुनहरे और रुपहले कपड़े पहने बैठे थे। प्रत्येक के पास राजकुमारी की तरह शृंगार किए उसकी स्त्री बैठी पति के सिर से जूएँ निकालकर मार रही थी! कैसा जघन्य और हास्य-जनक दृश्य था।

सफ़ाई के चिह्नों में से एक साफ़ चमड़ा है। अच्छी स्त्री अपने शरीर को साबुन या उबटन से मलकर निर्मल रखती है। उसकी उँगलियों के नाख़नों में मैल नहीं भरा रहता, उसके केशों से दुर्गंध नहीं आती और गर्दन

तथा कानों के पीछे का प्रदेश मैल से काला नहीं रहता। ये बातें स्त्री-जाति की निंदा या आलोचना के भाव से नहीं, वरन् इस सदिच्छा से लिखी जा रही हैं कि उनको पता लग जाय कि पुरुष उनकी किन बातों को बुरा समझते हैं, और वे आत्म-परीक्षा करके अपने दोषों को दूर कर सकें।

स्त्री के कपड़ों को देखकर भी उसकी सफ़ाई की आदत का पता लग जाता है। मैले स्वभाव की स्त्री अपने पास रूमाल नहीं रखती। वह अपने गंदे-गंदे हाथ दुपट्टे या कमीज़ से ही पोंछ लेती है। उसके कपड़ों पर कहीं हल्दी का और कहीं तेल का धब्बा लगा रहता है। कपड़े पहनने की रीति भी उसकी बड़ी बेढंगी होती है। कहीं कोई बटन टूटा हुआ है, तो कहीं कोई पल्ला फट गया है, कपड़े ऐसी बुरी तरह से सिले हुए हैं कि शरीर पर ठीक नहीं बैठते। जो स्त्री एक बात में गंदी है, वह प्रायः दूसरी बातों में भी सफ़ाई नहीं रखती। जिसके बच्चे और पति मैले हैं, समझ लीजिए कि वह स्त्री भी अवश्य मैली रहनेवाली होगी। स्त्री के जूते पर दृष्टि डालिए! यदि वह एक ओर को रौंदा हुआ, पैर के लिये खुला, और एड़ी दबी हुई है, तो यह अच्छा चिह्न नहीं। जूतों को घसीट-घसीटकर चलना भी सफ़ाई का द्योतक नहीं।

इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान न देने से स्त्रियाँ अपनी कितनी हानि करती हैं! पुरुष प्रायः इन बातों

के विषय में अपनी स्त्रियों से कुछ नहीं कहते; परंतु वे इनका विचार ज़रूर करते हैं। दूसरों की साफ़-सुथरी स्त्रियों को देखकर उन्हें अपने भाग्य पर दुःख होता है। इससे कभी-कभी बहुत भयकर परिणाम भी निकल सकते हैं। सौंदर्य एक बहुमूल्य वस्तु है। यह पति और पत्नी को आपस में बाँधे रखनेवाला एक बंधन, और मज़बूत बंधन है। परंतु सौंदर्य बुढ़ापे तक बना नहीं रह सकता। किंतु स्वच्छता का जादू आयु के साथ ही समाप्त होता है, पहले नहीं। स्त्रियों को याद रखना चाहिए कि "सबसे सुंदर फूल सड़ जाने पर सबसे अधिक दुर्गंध छोड़ता है, और मैली स्त्री संसार में सबसे अधिक गंदी चीज़ है।"

सुभार्या का छठा गुण गृहस्थी की बातों का ज्ञान है। इस ज्ञान के बिना स्त्री, चाहे वह एक करोड़पति की ही पत्नी क्यों न हो, एक निकम्मी चीज़ है। केवल नौकरों पर ही छोड़ देने से किसी भी बड़े परिवार के घरेलू काम समुचित रूप से संपन्न नहीं हो सकते। इस ज्ञान से शून्य स्त्री नौकरों से भी भली भाँति काम नहीं ले सकती। खेद का विषय है कि स्त्री-शिक्षा की वर्तमान शैली से, आश्रमों और बोर्डिंग-हाउसों में रहनेवाली लड़कियाँ, गृहस्थी के इस महत्त्व-पूर्ण ज्ञान से वंचित रह जाती हैं। बोर्डिंग-हाउस से निकली हुई लड़की पति-कुल में जाकर अच्छा भोजन तक नहीं बना सकती।

स्त्री को केवल इतना पता होना ही काफ़ी नहीं कि अमुक काम कैसे किया जाता है, वरन् वह इसे आप कर भी सकती हो ; वह इतना ही न जानती हो कि हलवे और फिरनी में क्या-क्या चीज़ें पड़ती हैं, वरन् वह इन चीज़ों को आप बना भी सकती हो। जवान जोड़ों को विवाह होते ही, जब तक कि वे बहुत धनाढ्य न हों, नौकर रखने का विचार न करना चाहिए। नौकर किस लिये है ? क्या उनको खाने, पानी और सोने में सहायता देने के लिये है ? जब बच्चे हो जायँ, तब नौकर की आवश्यकता है ; परंतु उससे पहले ऐसे घर में नौकर की क्या ज़रूरत है, जिसके स्वामी को रोटी कमाने के लिये रोज़ घोर परिश्रम करना पड़ता है ! आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों में, जो सिवा उपन्यास पढ़ने और नकटाई बुनने के घर का काम कुछ नहीं जानतीं, नौकर रखना एक फ़ैशन और महत्ता का चिह्न समझा जाता है। परंतु ऐसी लड़कियाँ पति के लिये शीघ्र ही घोर दुःख का कारण बन जाती हैं। विवाह के एक दो वर्ष बाद, जवानी का मद उतरते ही, वे अनुभव करने लगते हैं कि हमने जीवन-संगिनी लाने की जगह घर में एक सफ़ेद हाथी बाँध लिया है। बस, इस अनुभव के साथ ही प्रेम-बंधन ढीला पड़ जाता है।

अमीर-घरानों में निस्संदेह घर की मुखिया स्त्री को

घरेलू कामों में अपने हाथ से अधिक परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं; किंतु यहाँ भी वह इस योग्य ज़रूर होनी चाहिए कि वह नौकरानियों पर अनुशासन कर सके कि अमुक खाना ऐसे तैयार करो और अमुक काम ऐसे करो! उसे ध्यान रखना चाहिए कि भोजन ठीक बने, ज़रूरत से कम या ज़ियादा न बने, कोई वस्तु व्यर्थ ख़राब न हो, घर में कोई भी चीज़ ऐसी न देख पड़े, जो उसके पति के पद, स्थिति और चरित्र के असंगत हो।

परंतु साधारण स्थिति के लोगों के घरों में स्त्री के लिये अपने हाथ से काम करना अत्यावश्यक है, चाहे उनके नौकर हों, चाहे न हों। जो मनुष्य किसी काम को स्वयं कर चुका है और कर सकता है, उससे बढ़कर उत्तम रीति से दूसरे को वही काम और कोई नहीं सिखा सकता। एक फ़्रांसीसी सेनापति के विषय में कहा जाता है कि शत्रु पर आक्रमण करते समय वह अपने सिपाहियों को 'चलो-चलो' के स्थान में "आओ-आओ" कहा करता था। जिस व्यक्ति ने नौकरों की चेष्टाओं को तनिक ध्यान से देखा है, उसे मालूम होगा कि उन पर 'चलो' और 'आओ' शब्दों के प्रभाव में कितना भारी अंतर है। हाथ से काम करने से स्वास्थ्य सुधरता है, और स्वास्थ्य के विना सौंदर्य नहीं रहता। रोगी सुंदरी को देखकर दया आ सकती है, परंतु दया एक थोड़ी ही देर तक रहने-

वाला विकार है। उसके अतिरिक्त काम करनेवाली स्त्री को, रात को खूब मीठी नींद आती है, जिससे निकम्मी बैठनेवाली स्त्रियाँ वंचित रहती हैं।

मध्यम स्थिति का जो पुरुष किसी ऐसी लड़की से विवाह करता है, जिसने केवल बाजा बजाना और गीत गाना ही सीखा है, जो लंबे-लंबे प्रेम-पत्र लिखकर काग़ज़, लेखनी और मसी को नष्ट करने और उपन्यास पढ़ने के सिवा और कुछ नहीं जानती, जो सदा नाटक और सिनेमा देखने की ही उत्सुक रहती है, उसे पीछे से अपनी मूर्खता पर रोना पड़ता है। ऐसी खिलौना स्त्री गृहस्थी को कभी सुखमय नहीं बना सकती। उसकी योग्यता, उसका गाना-बजाना, उसकी चित्रकारी और उसके अद्भुत प्रेम-पत्र किस काम के हैं ? यदि वह भली प्रकृति की है, तो उसका पहला बच्चा, उसके सारे सङ्गीत, सारे ताल-स्वर, और सारी चित्रकारी को उसके मस्तिष्क से सदा के लिये निकाल देगा। एक लड़की विद्यालय में पढ़ने के दिनों में बड़ी अच्छी वीणा बजाया करती थी। विवाह के बाद उसका गाना-बजाना सब छूट गया। उसकी सखी ने उससे पूछा—बहन, तेरी वीणा कहाँ है। तू उसे अब कभी बजाती नहीं ? उसने घुटनों के बल बैठे हुए अपने छोटे से बच्चे की ओर संकेत करके मुसकिराते हुए उत्तर दिया—"इस मुन्ने ने मेरी वीणा तोड़ डाली है।"

गृहस्थी में पड़कर राग-रंग सब भूल जाते हैं। पत्नी का कर्तव्य है कि गृहस्थी में पति की सहायता करे। और वह सहायता इसी तरह हो सकती है कि वह उसकी संपत्ति की रक्षा करे, उसके धन को व्यर्थ व्यय न करे, थोड़े पैसों से ज़ियादा-से-ज़ियादा लाभ उठाने का यत्न करे, कोई वस्तु नष्ट न करे और थोड़े-से-थोड़े ख़र्च के साथ घर के लिये पर्याप्त भोजन तैयार करे। और वह ये काम कैसे कर सकती है जब तक उसे घर के कामों को समझने की शिक्षा न मिली हो? वह इन बातों को कैसे कर सकती है, यदि उसे इनको नीच समझना सिखाया गया है? उसका पति उससे इन कामों के करने की कैसे आशा कर सकता है, जब वह इनको करना अपने लिये अपमानजनक समझती है?

कितनी भारी अज्ञता है! अज्ञान उन बातों के जानने का नाम है, जिनको आपका व्यवसाय या जीवन में आपकी दशा स्वभावतः मान लेती है कि आप समझते हैं। पढ़ना न जानने के कारण एक किसान को अज्ञानी नहीं कहा जा सकता, यदि वह हल चलाना जानता है, तो हम उसे अज्ञानी नहीं कह सकते। परंतु यदि भार्या पति के लिये भोजन बनाना नहीं जानती, तो उसे अज्ञानी कहना सर्वथा उचित है। एक भूखे पुरुष को यह कहने से कुछ सुख नहीं मिलता कि तुम्हारी भार्या कैसा अच्छा गाती और

बजाती है। युवतियों को यह बात ख़ूब याद रखनी चाहिए कि साफ़-सुथरी रसोई, ख़ूब पकाया हुआ भोजन, सुव्यवस्थित घर और पत्नी का प्रसन्न वदन पति के हृदय को क़ाबू में रखने में संसार की समस्त संस्थाओं में सिखलाई जानेवाली समस्त ललित कलाओं से कहीं अधिक समर्थ है।

सुभार्या का सातवाँ गुण अच्छा स्वभाव या सुशीलता है। स्त्री को देखकर ही उसके स्वभाव को जान लेना बड़ा कठिन है। बुरे-से-बुरे स्वभाव की स्त्री भी मौक़े के लिये मुख पर मुसकिराहट ले आती है। अच्छे स्वभाव से हमारा तात्पर्य ढीले-ढाले स्वभाव या ऐसी शांति से नहीं, जो किसी भी चीज़ से भंग नहीं होती। वह तो आलस्य का चिह्न है। उदासीनता या मुँह फुलाये रहने का स्वभाव बहुत बुरा है। मुँह फुलानेवाला पुरुष भी बहुत बुरा समझा जाता है, फिर भीतर-ही-भीतर कुढ़ती रहनेवाली स्त्री, और वह भी पत्नी हो, तो कहना ही क्या। एक ही घर में रहते, एक ही कमरे में सोते, और चौके में बैठकर खाते हुए भी दस-बारह दिन तक स्त्री-पुरुष में, बातचीत न होने से पुरुष को जो भारी मानसिक कष्ट होता है, वह उसे सदा मन-ही-मन कुढ़ती रहनेवाली स्त्री के सहवास से होनेवाले दुःख से कहीं अधिक अच्छा प्रतीत होता है। मन में कुढ़ते रहने का स्वभाव चंचल अप्रसन्नता, अर्थात् ऐसी अकारण

अप्रसन्नता से उत्पन्न होता है, जिसका आधार तर्क नहीं होता। स्त्री बिना किसी युक्तिसंगत कारण के क्रुद्ध हो जाती है, और अपनी शिकायत नहीं बता सकती। इसलिए चुप बैठकर अपने दोष का प्रकाश करती है। इसकी चिकित्सा यह है कि जितना वह चाहे, उसे कुढ़ लेने दिया जाय। पर अच्छा यही है कि ऐसे रोग को घर में आने न दिया जाय। झगड़ालूपन एक बड़ा भारी दोष है। कोई पुरुष, और विशेषतः कोई स्त्री, सदा शिकायतें सुनते रहना पसंद नहीं करती। स्त्री का पति के समय का पालन न करने, उससे प्रेम न करने, उपेक्षा करने, और दूसरी स्त्रियों की ओर झुकने की शिकायत करना बुरा नहीं। परंतु मौक़ा-बे-मौक़ा निरंतर शिकायत करते रहना बुरा लक्षण है। इससे धर्म तथा बुद्धि का अभाव प्रकट होता है। परंतु इसके विपरीत, स्नेह-शून्य उदासीनता और भी बुरी है। "आप कब लौटकर आयँगे? आपको घर आने के लिये कभी समय ही नहीं मिलता। आपको घर से बाहर ही आनंद मिलता है।" स्त्री के ऐसे वचन, जब निराधार हों, तब पुरुष को बहुत खिजा देते हैं, और उसकी बहुत अधिक उत्सुक प्रकृति के द्योतक हैं। परंतु जो स्त्री इस बात की कुछ परवा ही नहीं करती कि पति किस समय बाहर जाता और किस समय घर आता है, जो न प्रेम प्रकट करती है और न रोष, ऐसी स्त्री से

परमेश्वर ही पति की रक्षा करे! दुराग्रह या हठ प्रत्येक मनुष्य में, विशेषकर युवती स्त्री में, बहुत बुरी चीज़ है। जिस लड़की में यह माशा भर है, युवती होकर पत्नी बन जाने पर वह अवश्य बढ़कर तोला हो जायगा। हठ करके किसी से अंतिम शब्द कहलवाना बहुत निकम्मी विजय है। परंतु कई लोगों में यह एक प्रकार का मानसिक रोग ही बन जाता है। पत्नी में दुराग्रह का होना पति के लिये बड़े दुःख की बात है। सदा झगड़ते रहनेवाला साथी बहुत बुरा होता है। जहाँ युवती स्त्रियाँ बड़ों की बातचीत में बिन बुलाए टाँग अड़ाएँ, अपनी सम्मति ठूँसें, और वाग्युद्ध के लिये ललकारें, वहाँ सुख और शांति का निवास कठिन ही है।

इस दृष्टि से उदास रहनेवाली स्त्री सबसे बुरी है। कई पत्नियाँ किसी-किसी मौक़े पर विपत्ति खड़ी करती हैं, परंतु उदासीन स्त्री इसे अपना एक काम ही बना लेती है। वह भूत, वर्तमान या भविष्य की किसी-न-किसी बात के लिये सदा ही अप्रसन्न रहती है! बहुत-सी अवस्थाओं में दोनों बाँहें बच्चों से भरी हुई इसका बहुत अच्छा इलाज सिद्ध होती हैं। परंतु यदि इतने बच्चे न हों, तो थोड़ी-सी ज़रूरत, थोड़ी-सी सच्ची तकलीफ़, थोड़ी सच्ची पीड़ा इसको ठीक कर देती है। शोक में निमग्न और सिसकियाँ भरती रहनेवाली स्त्री को कोई भी पुरुष पसंद नहीं करता।

सुभार्या का आठवाँ गुण सौंदर्य है। यद्यपि हम इसका वर्णन सबके बाद कर रहे हैं, तो भी भार्या के लिये इसका महत्त्व दूसरे गुणों से कम नहीं। जिन स्त्रियों को विधाता ने सौंदर्य नहीं दिया, वे प्रायः कहा करती हैं कि "गोरे रंग में क्या रक्खा है, सुंदरता दो दिन की चीज़ है।" परंतु फिर भी इसकी चारुता का बहुत बड़ा प्रभाव है। सुंदर चित्र जल्दी फट जानेवाली चीज़ है, काग़ज़ और रंग के सिवा उसमें कुछ नहीं होता। परंतु फिर भी हम उसकी प्रशंसा करते हैं। "भार्या रूपवती शत्रुः" यह एक बहुत पुरानी कहावत है। ऐसा जान पड़ता है कि इस कहावत का गढ़नेवाला कहना चाहता था कि रूपवती स्त्री सती-साध्वी नहीं होती, परंतु ऐसा कहने का उसमें साहस नहीं था। इसके लिये युक्ति यह दी जाती है कि कुरूपा की अपेक्षा रूपवती पर अधिक पुरुषों की दृष्टि जाती है, इसलिये उसका पतन अधिक संभव होता है। आओ, तनिक इस पर विचार करें।

यह ठीक है, रूपवती स्त्री पर अधिक पुरुषों की दृष्टि पड़ती है और उसके रास्ते में प्रलोभन अधिक होते हैं; परंतु ऐसी कुरूपा स्त्री संसार में शायद कोई भी नहीं, जिसका रूप जवानी में कुछ-न-कुछ चारु न हो जाता हो। भद्दी-से-भद्दी स्त्री भी यौवन-काल में अनेक पुरुषों के हृदयों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। अब इन

दो में से किसके गिरने की संभावना अधिक है ? जो जानती है कि मेरे चाहनेवाले बहुत हैं; वह यदि दुराचार करना भी चाहेगी, तो इस मतलब के लिये किसी पुरुष को चुनने में शीघ्रता नहीं करेगी, क्योंकि वह समझती है कि मेरा सौंदर्य मेरे लिये बढ़िया-से-बढ़िया पुरुष के मन में प्रलोभन पैदा कर सकता है। इसके विपरीत, कुरूपा जानती है कि मेरे चाहनेवाले थोड़े ही निकलेंगे और यह जवानी भी बहुत दिन न रहेगी, इसलिये यदि उसकी प्रकृति दुराचार की ओर हो, तो वह अपने काम के लिये पुरुष को चुनने में देर न लगायेगी।

आप यदि व्यभिचार के इतिहास की पड़ताल करेंगे, तो आपको मालूम होगा कि जहाँ कोई विवाहिता स्त्री पातिव्रत्य-धर्म से गिरती है, वहाँ दस में से नौ दशाओं में दोष पति का होता है। उसकी अपेक्षा, उसके स्पष्ट रूप से पत्नी का निरादर करने, उसकी प्रेम-शून्य उदासीनता, उसके बुरे उदाहरण से पत्नी सती-धर्म का परित्याग करने पर विवश होती है। यदि कोई पति रुपए या पद के लिये किसी स्त्री से विवाह करता है, परंतु फिर उसके सुंदर न होने के कारण उसकी उपेक्षा करता है, तो वह बड़ा मूर्ख और पापी है। यदि यह सत्य है कि पतियों की उदासीनता और प्रेमाभाव के कारण पत्नियाँ पतित हो जाती हैं, तो

रूपवती की अपेक्षा कुरूपा स्त्री के गिरने की अधिक संभावना है।

कपड़ों की दृष्टि से भी रूपवती भार्या कुरूपा की अपेक्षा कम ख़र्चीली होती है। अनुभव बताता है कि कुरूपा स्त्रियाँ ही सदा अपने वस्त्राभूषण पर अधिक ध्यान देती हैं। तर्क भी यही मानता है। बहुत थोड़ी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो रूपवती हैं और जानती नहीं कि हम रूपवती हैं। यदि उन्हें मालूम हो कि लोग हमारे मुख-मंडल की स्वभावतः ही प्रशंसा करते हैं, तो क्या वे यह पसंद करेंगी कि उनके रँग-रूप को छोड़कर वे उनके फ़ीते, तिल्ले, रेशमी कपड़े और जड़ाऊ गहने की प्रशंसा करें।

अब रही शिष्टाचार और स्वभाव की बात। निस्संदेह कई रूपवती रमणियाँ बड़ी मानिनी और सगर्वा होती हैं। परंतु अपने रूप पर प्रसन्न होने के लिये उनके पास प्रबल कारण है, इसलिये वे पुरुष को रसिकता का अवसर देती हैं, और यह रसिकता विवाहित जीवन में एक बहुमूल्य चीज़ है। सच्ची बात यह है कि सुंदरता स्त्रियों के केवल चेहरे के रङ्ग-रूप में ही नहीं, वरन् उनकी गति-मति में भी पाई जाती है। परंतु इस बात में प्रकृति बड़ी न्यायशीला है, क्योंकि वह रूपवती तथा कुरूपा दोनों को प्रकीर्ण रूप से रसिकता तथा उल्लास देती है। इस गुण

का अभाव रूपवती में वैसा ही खटकता है जैसा कि कुरूपा में।

परंतु स्त्री के सौंदर्य का बड़ा उपयोग, उसका बड़ा क्रियात्मक लाभ यह है कि यह स्वभावतः तथा अनिवार्य रूप से पति को अपने आपमें प्रसन्न रखती है। मुझे रूपवती स्त्री मिली है, यह अनुभव करके वह सदा हँस-मुख बना रहता है। बुढ़ापा आने पर जब पति-पत्नी साझे की अनेक चिन्ताओं और स्वार्थों के कारण एक दूसरे के प्रिय बन चुकते हैं, जब बच्चे पैदा होकर उनको एक दूसरे से प्रकृति के मज़बूत-से-मज़बूत बंधनों के साथ जकड़ चुकते हैं, तब इस आयु में रूप-रंग का इतना महत्त्व नहीं रहता ; परंतु मस्तानी जवानी के दिनों में जब पुरुष की आँखें इधर-उधर घूमती रहती हैं, तब घर से निकलने पर हर बार अपनी जीवन-संगिनी से अधिक सुंदर मुखों का दर्शन होना पति के लिये भय से ख़ाली नहीं।

सौंदर्य किसी हद तक रुचि की भी बात है। जिस चीज़ को एक मनुष्य सुंदर कहता है, दूसरा उसे वैसा नहीं समझता। और ऐसा होना हमारे लिये सौभाग्य की बात है, नहीं तो बड़ी ख़राबी होने का डर था। फिर भी कई ऐसी चीज़ें हैं, जिनकी सब पुरुष प्रशंसा करते हैं, और पति जब देखता है कि उन चीज़ों का कम-से-कम

कुछ भाग मेरे अधिकार में भी है, तब वह सदा बहुत प्रसन्न होता है। वह अपने लिये इसे एक प्रशंसा की बात समझता है। वह मन में कहता है कि संसार समझता होगा कि इसमें ज़रूर कोई-न-कोई ख़ूबी है, जो इसे ऐसी सुंदरी पत्नी मिली है।

रोग, व्यापार में विपत्ति, घाटा इत्यादि अनेक ऐसी अचिंतित घटनाएँ हो सकती हैं, और अनेक ऐसी, पूर्णतया नामहीन अवस्थाएँ हैं, जो नव-विवाहिता सुंदरी के पति को बताती हैं कि जिसको पाकर तुम फूले नहीं समाते, वह वस्तुतः स्वर्गीय देवी नहीं। इस प्रकार की कितनी ऐसी बातें हैं, जो उमंगों और विकारों पर घड़ों पानी फेंक देती हैं, जो शांतिपूर्वक विचार करने पर विवश करती हैं कि किसी ऐसी चीज़ की, और वह भी बहुत बड़ी राशि में, आवश्यकता है, जो उसको उसकी इस परिवर्तित तथा प्रबुद्ध दशा में सानंद रख सके। स्त्रियों का अनुराग पुरुषों के समान शीघ्र ठंडा नहीं हो जाता। उनका प्रेम-प्रदीप अधिक स्थिरता से जलता है, और ज्यों-ज्यों जलता है, त्यों-त्यों अधिक चमकता है। युवा पुरुष को विश्वास करना चाहिए कि एक सुंदरी के और एक कुरूपा के प्रेम के प्रभाव में भारी भेद होता है। तर्क और तत्त्वज्ञान चाहे कुछ ही कहें, परंतु सवेरे काम पर जाते समय सुंदरी भार्या का मुख देखकर पुरुष का

जितनी प्रसन्नता होती है उतनी दूसरे प्रकार की स्त्री का मुख देखकर नहीं होती ।

परंतु एक बार विवाह हो चुकने पर जो पुरुष अपनी स्त्री को, सुंदरी न होने के कारण, तुच्छ समझकर घृणा की दृष्टि से देखता है, वह बड़ा अन्याय और क्रूरता करता है, और यदि वह इसी कारण उसके साथ कठोरता का बर्ताव करता है, तो वह पशु है। परंतु ऐसी अवस्थाओं में न्यायपूर्वक चलना प्रत्येक पुरुष का काम नहीं । इसके लिये गहरे सोच-विचार का प्रयोजन है। इसलिये सौंदर्य-उपासकों को चाहिए कि पीछे से खटपट करने की अपेक्षा पहले ही देखभाल कर विवाह करें ।

सुपति



वाहिक जीवन को सुखी बनाना केवल पत्नी का ही कर्तव्य नहीं। यह केवल उसके ही वश की बात भी नहीं। जब तक पति और पत्नी दोनों ही उसके लिये यत्न न करें, दोनों ही अपने आचार-विचार का ध्यान न रक्खें, तब तक उनको इसमें सफलता नहीं हो सकती। परंतु आजकल देखने में क्या आता है, सब ओर स्त्रियों के सुधार पर ही ज़ोर दिया जाता है। चाँद, गृहलक्ष्मी, स्त्री-दर्पण और स्त्री-धर्म-शिक्षक इत्यादि बीसियों पत्रिकाएँ स्त्रियों को उपदेश की ओषधि पिलाने के लिये ही प्रकाशित होती हैं, परंतु आज तक मेरी दृष्टि एक भी ऐसी पत्रिका पर नहीं पड़ी, जिसका काम पुरुषों

को अच्छे पति और पिता बनने का उपदेश करना तथा उपाय बताना हो। पुरुष तो इस संबंध में कोई उपदेश सुनना ही अपना अपमान समझते हैं। परंतु सच्ची बात यह है कि सौ पीछे कदाचित् पाँच पुरुष भी मुश्किल से ऐसे नहीं मिलेंगे, जो अच्छे पति और अच्छे पिता कहलाने के पात्र हों—जिन्हें गार्हस्थ्य विज्ञान का यथोचित ज्ञान हो। मूर्ख-से-मूर्ख पुरुष भी अपने को स्त्री को उपदेश देने का अधिकारी समझता है।

पत्नी का अच्छा या बुरा होना बहुत कुछ पति पर निर्भर करता है। एक उत्तम स्त्री को भी एक दुर्बलेंद्रिय, कठोर, फ़िज़ूल-खर्च, निरादर करनेवाला और दुश्चरित्र पति एक सचमुच बुरी भार्या और बुरी माता बना सकता है। उसकी स्वाभाविक प्रकृति और विद्या को छोड़कर शेष जो कुछ हम स्त्री में देखते हैं, वह दस में से नौ भाग उसके पति का बनाया हुआ होता है। कुमारी कन्या पिघले हुए शीशे के समान है। उसे जैसे साँचे में ढाल दिया जाय, वह वैसी ही बन जाती है। पति के लिये सबसे पहली बात यह है कि चाहे वह कोई भी काम करता हो, चाहे उसकी कितनी भी आय हो, वह पत्नी को ख़र्च में किफ़ायत करने की आवश्यकता का अनुभव कराए। वह उसे समझाए कि होनेवाले बच्चों के लिये भी हमें अभी से कुछ-न-कुछ बचाते रहना चाहिए। यह

ठीक है कि मनुष्य को अपनी कमाई को ख़र्च करने का पूर्ण अधिकार है, परंतु नैतिक दृष्टि से विवाह के समय मनुष्य भावी संतान के साथ ऋण का ठेका करता है। इसलिये विवाहित जीवन के आरंभ से ही ख़र्च इतना कम रखना चाहिए, जितना कि जीवन में अपने पद और कुलीनता के विचार से रक्खा जा सकता है।

आजकल नौकर रखना एक फ़ैशन-सा हो रहा है। जिसके नौकर नहीं, उसकी स्त्री अपनी सखियों की दृष्टि में अपने को अपमानित समझने लगती है। जो मनुष्य धनाढ्य है या जहाँ काम इतना अधिक है कि गृहस्थी के कार्य को चलाने के लिये बाहरी सहायता की आवश्यकता है, वहाँ एक या अनेक नौकर अवश्य रखने चाहिए; परंतु जिस घर का काम केवल दो हाथ कर सकते हैं, वहाँ चार की क्या आवश्यकता है? बच्चे हो जाने पर बेशक बाहरी सहायता का प्रयोजन होता है। परंतु उससे पहले अकेले पति-पत्नी के लिये नौकर की क्या आवश्यकता है? स्त्री युवती है, फिर पति-पत्नी दोनों क्या घर का काम नहीं चला सकते? इसमें कोई संदेह नहीं कि नौकर का रखना अमीरी का चिह्न और फ़ैशन है, और इस प्रथा का विरोध सुनकर कई दंपति क्रुद्ध होंगे, परंतु दीर्घ अनुभव बताता है कि यह वैवाहिक जीवन के लिये विष के समान है, और उस दरिद्रता और उन असंख्य दुःखदायक ब्याहों तथा चिंताओं का मूल

कारण है, जो वैवाहिक आनंद को शीघ्र ही नष्ट कर डालती हैं। हमने अनेक ऐसे युवक देखे हैं, जो पहले तो नई दुलहिन के चाव में नौकर रख लेते हैं; परंतु कुछ काल उपरांत जब गृहस्थी के दूसरे आवश्यक ख़र्चों से कचूमर निकलने लगता है, तो तंग होकर नौकर को हटा देने पर विवश होते हैं। परंतु एक बार आलस्य के जीवन का स्वभाव हो जाने पर फिर पत्नी को अपने हाथ से काम करना मुश्किल जान पड़ता है। बस, घर में कलह और अशांति रहने लगती है।

प्रश्न हो सकता है कि भला, यदि स्त्री घर का सारा काम न कर सकती हो? न कर सकती हो! स्त्री जवान हो और घर का चौका-भाँड़ा न कर सके, मैले कपड़ों को धो और फटे हुओं की मरम्मत न कर सके, घर में झाड़ू न लगा सके, अपना तथा पति का बिछौना न बिछा सके! यह कैसी बात है! तो फिर यदि पति बहुत धनाढ्य नहीं और वह आप भी दहेज़ में बहुत धन नहीं ला सकी, तो अच्छा यही था कि उससे विवाह ही न किया जाता। स्मरण रखिए, थोड़े-से धन से नौकर रखनेवाली पत्नी उस पत्नी की बराबरी नहीं कर सकती, जो नौकर की मुहताज ही नहीं।

यदि घर का काम सचमुच इतना कड़ा हो कि एक युवती बिना कष्ट के उसे पूरा न कर सके या उससे वह बहुत अधिक थक जाती हो; या इससे स्वास्थ्य को हानि

पहुँचने का डर हो ; या सौंदर्य के बिगड़ने का भय हो, तब बेशक चिंता की बात है ; परंतु प्रायः घर का काम बहुत कड़ा नहीं होता, वरन् इससे स्वास्थ्य सुधरता, चित्त प्रसन्न होता, और सौंदर्य चिरकाल तक बना रहता है। आपने बहुधा चक्की पीसते, कपड़े धोते, चरखा कातते समय लड़कियों को गाते सुना होगा; परंतु सुई का काम करते समय वे कभी नहीं गातीं। आज से कुछ वर्ष पहले हिंदू-घरानों में स्त्रियों के लिये काम करना कोई ताने या उलाहने की बात न समझी जाती थी। बड़े-बड़े अमीर-घरों में भी गृह-देवियाँ स्वयं भोजन बनाया करती थीं। परंतु अँगरेज़ी फ़ैशन और सभ्यता के आने से अब हाथ से काम करना अपमान-जनक समझा जाने लगा है। यही कारण है कि नाम-मात्र उच्च जातियों में सौंदर्य का ह्रास हो रहा है और जिन्हें नीच कहा जाता है, उनमें शारीरिक परिश्रम के प्रताप से रूप-लावण्य दिन-दिन अधिक बिखर रहा है। अँगरेज़ों के पास साम्राज्य और धन-दौलत अधिक होने से उनकी स्त्रियों में हाथ से काम करने को अपमान-जनक समझने का मिथ्या गर्व उत्पन्न हो गया है, और उसी की नक़ल भारत की नवशिक्षिता स्त्रियाँ भी करती हैं, परंतु अमेरिकन पत्नियाँ किसी भी ऐसे काम को करने में अपना अपमान नहीं समझतीं, जिसमें उनकी रुचि और प्रकृति हो और जो साथ ही युक्तिसंगत

भी हो। वे किसी ज़रूरत या मजबूरी के कारण नहीं काम करतीं, क्योंकि उनके पति बड़े ही सदय और सदा उनके अनुकूल रहनेवाले हैं। नगरों में बाज़ार जाकर सब चीज़ें खरीदती और आप उठाकर घर लाती हैं। देहात में वे न केवल घर का ही काम करती हैं, प्रत्युत वाटिका और खेत में जाकर निराई करती, फल इकट्ठे करती और पानी देती हैं। इससे उनके पतियों को ख़ूब बचत होती है, और वे भी मुक्तहस्त से पत्नियों को धन देकर उन्हें सदा प्रसन्न रखते हैं।

पति यदि घर के काम में पत्नी को थोड़ी-सी सहायता दे दे—उसके लिये पानी ला दे, भाजी छील दे, आग जला दे, बच्चा उठा ले—तो उसके लिये कौन-सी अपमान की बात है ? आख़िर वह भी तो गृहस्थीरूपी गाड़ी का एक पहिया ही है। और, यदि स्त्री बीमार हो, तब तो पति उसकी जितनी भी सेवा-शुश्रूषा करे, उसको सुखी, निश्चिंत और नीरोग रखने का जितना भी उद्योग करे, थोड़ा है। यह पति का परम कर्तव्य है। उसको रोग-मुक्त करने के लिये धन व्यय करने में पति को तनिक भी संकोच न होना चाहिए। नीरोग हो जाने पर उसका पति के प्रति प्रेम तथा कृतज्ञता का भाव बहुत बढ़ जायगा।

इस महत्त्व-पूर्ण विषय में आरंभ ही सब कुछ है। आपको उसे इस बात का विश्वास दिलाने में बहुत कुछ करना

पड़ेगा कि जिस बात की आप सिफ़ारिश करते हैं, वह न केवल लाभदायक ही है, न केवल उचित ही है, वरन् उसके करने से स्त्री की सामाजिक स्थिति भी नहीं गिरती। तब वह उसे प्रसन्नता-पूर्वक करने लगेगी। अब उसे पड़ोसियों की दृष्टि में गिर जाने का भय है। वे सब बातों में उसके समान हैं, परंतु घर का काम नहीं करतीं। उनको वह कैसे मुँह दिखाए। यहाँ आपको आलस्य के साथ नहीं, वरन् अनिष्टकर फ़ैशन के साथ लड़ाई लड़नी है। परंतु इस युद्ध की नौबत ही क्यों आए! इस महत्त्व-पूर्ण विषय का निर्णय और पूरा-पूरा समझौता पहले ही हो जाना चाहिए। यदि स्त्री का आप पर सच्चा प्रेम है, और उसमें व्यवहार-बुद्धि है, तो वह एक मिनट के लिये भी संकोच न करेगी। और, यदि उसमें इन दोनों बातों की कमी है, और तुम उन्मत्त होकर उस पर इतने लट्टू हो रहे हो, उसके बिना तुम्हारा जीना कठिन है, तो एक धन लुटानेवाली सेविका के दास बनकर कष्ट तथा चिंता में दिन काटने के सिवा तुम्हारे लिये दूसरा उपाय नहीं है।

सबसे विचारणीय प्रश्न मुग्धा पत्नी के प्रति तुम्हारा आचरण है। अनेक प्रौढ़ा और विधवा स्त्रियों का हृदय काल और जीवन के कटु अनुभवों से अपेक्षा-कृत कठोर हो जाता है। पति के कड़े और रूखे व्यवहार से उनका हृदय विदीर्ण नहीं होता। परंतु बाला और अनुभव-

शून्य पत्नी की दशा सर्वथा विपरीत है। तुम्हें यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि तुम्हारी पहली घुड़की उसके कोमल हृदय में कटार का काम करती है। प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि विवाह के बाद पुरुषों की लालसा कम तीव्र हो जाती है, परंतु इसके विपरीत स्त्रियों का अनुराग बढ़ने लगता है। इस संबंध में संतान हो जाने पर उनका अनुराग बालक और पति में बँट जाता है ; परंतु तब तक उनका सारा प्रेम तुम्हीं पर है, और यदि तुम सुखी होना चाहते हो, तो प्राणपण से उस प्रेम का बदला दो। दूसरे लोगों के साथ तुम भले ही नाराज़ हो जाओ, परंतु स्त्री के नाराज़ होने का कोई अवसर न आने दो। तुम्हारी वाणी, तुम्हारी दृष्टि और तुम्हारे आचरण पर सदा प्रसन्नता की छाप रहनी चाहिए।

परंतु पत्नी के प्रति प्रेम तथा प्रसन्नता का भाव दर्शाने का ढंग वह नहीं, जो योरपीय समाज की देखा-देखी कुछ काले साहब लोग करने लगे हैं। पत्नी का रूमाल या दस्ताना गिर जाने पर चटपट उठाने दौड़ना, स्त्री पर छतरी लगाए चलना, व्यर्थ झूठी श्लाघा करना, उसके शरीर पर गहने लटकाकर उनकी झनकार पर मुग्ध होना और उसके मुखचंद्र को चकोर की तरह टकटकी लगाए देखते रहना, सभा-समाज में जाते समय हाथ में

हाथ देकर चलना और उसके बूट के तसमें खोलना, ऐसी सब बातें बनावट-मात्र और हास्य-जनक हैं। इन छिछोरेपन की बातों के बदले स्त्री के साथ सचमुच के भलाई के काम करके अपना प्रेम तथा सम्मान-भाव प्रकट करो। तुम्हारे मन में उसके स्वास्थ्य, उसके जीवन और उसकी मानसिक शांति का जो हर समय ध्यान रहता है, उसको अपने स्पष्ट कार्यों में प्रकट करो; तुम्हारे मुख से निकली हुई प्रशंसा उसको प्रसन्नता से भर दे, परंतु यह सचाई और बुद्धि के अनुकूल और उसको तुम्हारी निष्कपटता का विश्वास दिलानेवाली हो। जो पुरुष अपनी पत्नी की झूठी खुशामद करता है, वह उसके कानों को दूसरों के मुख से अतिशयोक्ति-पूर्ण बातें सुनने के लिये तैयार करता है। तुम्हारे शब्द नहीं, वरन् तुम्हारे कर्म उसे प्रतिदिन और प्रति घड़ी इस बात का विश्वास दिलाएँ कि तुम्हारे हृदय में उसका स्वास्थ्य, जीवन और सुख का मूल्य संसार के अन्य सब पदार्थों से बढ़कर है; और यह बात उस पर विशेष-रूप से ऐसे समयों में अभिव्यक्त हो जाय, जब उसे इसकी अनिवार्य आवश्यकता होती है।

एक समय की बात है, मेरी स्वर्गीय धर्मपत्नी अपने मायके में थीं। वह गाँव मेरे गाँव से कोई पंद्रह कोस के अंतर पर है। जिन दिनों की यह बात है, उन दिनों

वहाँ इक्का-मोटर कुछ न जाता था। एक दिन मुझे एका-एक उनके बहुत बीमार हो जाने का समाचार मिला, मैं तुरंत घोड़े पर सवार होकर वहाँ जा पहुँचा। वहाँ पहुँच-कर उनको होशियारपुर-अस्पताल में ले आना ही उचित जान पड़ा, क्योंकि दशा बहुत शोचनीय थी। उस गाँव में कोई बहली भी न थी, जिसमें बैठाकर उन्हें लाया जाता। मैं उसी दिन फिर अपने गाँव वापस आया, और घर से अपनी बहली लेकर उसी रात ससुराल जा पहुँचा। सवेरे रोगी को बहली में बैठाकर सायंकाल घर आ गया। फिर दूसरे दिन उसे ले जाकर अस्पताल में दाखिल करा दिया। अस्पताल में भी मेरा उनके पास रहना आवश्यक था। मैं उन दिनों अपने घर से कोई एक मील के अंतर पर स्कूल में काम करता था। होशियारपुर हमारे गाँव से कोई ढाई मील की दूरी पर है। मैं रात अस्पताल में सोता, तड़के उठकर घर आता, वहाँ नहा-धोकर स्कूल जाता और स्कूल से बारह बजे लौटकर घर पर भोजन करता, और फिर रोगी के लिये भोजन दोपहर को ही होशि-यारपुर पहुँचाता। इस प्रकार मुझे कोई डेढ़ मास दौड़-धूप करनी पड़ी। ईश्वर की कृपा से धर्मपत्नी नीरोग हो गई। इसके बाद मैंने उन्हें अपनी सखियों और संबंधियों के पास मेरी इस सेवा और प्रेमभाव के लिये कृतज्ञता प्रकट करते देखा। मैंने यह भी अनुभव किया कि उस दिन से

मेरे प्रति उनका अनुराग तथा विश्वास भी बहुत बढ़ गया। मेरी इस तुच्छ सेवा के असाधारण मालूम होने का एक कारण और भी था। उन दिनों हमारे देहात में, लोक-लाज के कारण, कोई नवयुवक पति अपनी पत्नी की इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से सेवा करने का साहस न कर सकता था। पत्नी की उपेक्षा करने में ही पति का महत्त्व माना जाता था। तब तक हमारे गाँव का कोई भी युवक अपनी बीमार पत्नी को चिकित्सा के लिये अस्पताल न ले जा सका था, यद्यपि कई एक के प्राण भी जाते रहे थे। मुझ पर भी पहले बहुत-सी फबतियाँ कसी गईं, मुझे स्त्री-दास कहा गया; परंतु मेरे उदाहरण ने बाद को दूसरों के लिये मार्ग खोल दिया। इस झूठी लोक-लाज की परवाह न करने के कारण ही मेरी धर्मपत्नी पर मेरी निष्कपटता का अत्युत्तम प्रभाव पड़ा, और यह प्रभाव भविष्य में, उनको अपने अनुकूल बनाने में, मेरे बहुत काम आया।

मैं समझता हूँ, जो पुरुष गरमी की रात में जागकर बीमार पत्नी को पंखा झलता है; उसे नींद आ जाय, इसलिये जो कुत्तों को उसके आसपास भोंकने नहीं देता, जो सिर दर्द होने पर उसका सिर दबाता है, वह लाहौर की ठंडी सड़क पर बाँह डालकर चलनेवाले या उसे गहनों से लाद देनेवाले पति की अपेक्षा उसका अधिक सम्मान

करता है। लाहौर के सरकारी कालेज में एक हिंदू-प्रोफ़ेसर थे। आप विलायत भी हो आए थे। यद्यपि घर में पति-पत्नी की पटती न थी, परंतु एक आर्यसमाज के उत्सव पर उन्होंने अपनी संस्कृतज्ञा भार्या के बूट के तसमे खोल-कर अपने पत्नी-सम्मान का स्वाँग भर ही दिया, किंतु दुनिया उनके पारिवारिक जीवन को जानती थी। इसलिये उनके इस अनोखे कृत्य से कीर्ति के स्थान में उनकी निंदा ही हुई। इसलिये पत्नी के प्रति अपने प्रेम को दिखलाने की सच्ची रीति यह है कि जिस समय उसका जीवन संकट में हो, उस समय सब काम छोड़कर उसकी चिंता से चिंतातुर हो जाओ। सच्चे प्रेम के लिये उसे गोटे-किनारी से मढ़े हुए बहुमूल्य वस्त्रों में लपेटने और मणि-मुक्ता-जटित आभूषणों से अलंकृत करने की उतनी आवश्यकता नहीं।

स्मरण रहे कि पत्नी के प्रति अपने सच्चे और हार्दिक प्रेम का जो यथासंभव सबसे बड़ा प्रमाण आप दे सकते हैं, वह उसे अपना समय देना है। दफ़्तर के काम से, वाणिज्य-व्यापार के काम से, सरकारी और ग़ैरसरकारी लोगों से मिलने से जो भी समय बचे, वह पत्नी ही के अर्पण हो। इस काम में मित्रों से मिलना-मिलाना भी आ जाता है; परंतु उस पुरुष को हम क्या कहें, जो समय बिताने के लिये अपना घर छोड़कर दूसरों के यहाँ

भटकता फिरता है। जो आधी-आधी रात तक दूसरों के घर बैठकर गपशप किया करता है। जो केवल भोजन के लिये ही घर में कुछ मिनट बैठता है। जिन लोगों को आनंद के लिये नित सिनेमा, नाटक या सर्कस देखने या दूसरों के यहाँ रात को जाकर हुक्का-तमाकू पीते रहने का दुर्व्यसन पड़ जाता है, उनका गृह-सुख सर्वथा नष्ट हो जाता है।

हमारे एक मित्र के घर जब कोई ऐसा ही गपशप का व्यसनी मित्र कालयापन के लिये रात का भोजन करके आता और देर तक उठने का नाम न लेता, तो उनकी धर्मपत्नी मन-ही-मन उसको कोसती हुई कहा करती कि "घर-द्वार से निकाले हुए निगोड़े यहाँ आ मरते हैं, अपने घर में इनको बैठना ही नहीं आता।" श्रीमतीजी का क्रोध उचित ही था। कारण, वह समय उनका अपने पति के साथ बैठकर बातचीत करने का होता था, और उसे वह बिना बुलाए मेहमान छीन लेते थे। जिन लोगों को अपने घर में आनंद नहीं मिलता, वही इस प्रकार दूसरे दंपतियों के रंग में भंग डालते फिरा करते हैं। यदि इन महाशयों की पत्नियाँ अपने पतियों का अनुकरण करती हुई दूसरों के घरों में आनंद की तलाश में घूमने लगें, तो सारा घर चौपट हो जाय।

जब हम अकेले हों, तो हमारा मन उसी प्राणी से मिलने को चाहता है, जिसकी संगति में हमें सबसे अधिक

प्रसन्नता होती है। इसलिये जो पति चाहे उसके जीवन की अवस्था कुछ ही हो, अपने अवकाश का समय अपनी पत्नी और सन्तान को छोड़कर किसी दूसरे की संगति में बिताता है, या जिसको कम-से-कम ऐसा करने की लत है, वह स्त्री तथा बच्चों से अपने आचरण द्वारा उतने ही साफ़ तौर पर कहता है, जितना कि वह अपनी वाणी से कह सकता है कि "मुझे तुम्हारी संगति की अपेक्षा दूसरों की संगति में अधिक प्रसन्नता होती है।" बच्चे इसका बदला पिता के प्रति अनादर के रूप में देते हैं, और थोड़ा-सा भी मान रखनेवाली स्त्री के लिये तो यह कलेजे में कटार है, या फिर प्रतिकार की उत्तेजना। और यह बदला भी इस प्रकार होता है, जिसके लिये साधन ढूँढ़ने में तरुणी नारी को देर नहीं लगती। घर से ग़ैरहाज़िर रहनेवाले पतियों की पत्नियों के सतीत्व का ईश्वर ही रक्षक है! ऐसे पति को अपनी पत्नी से सती रहने की आशा करने का कोई अधिकार नहीं। जो लोग मदिरा-पान करके रात-भर वेश्या के यहाँ पड़े रहते हैं, और तड़का होते ही, नशे में मदमत्त, मुँह और नाक से दुर्गंध के फ़व्वारे छोड़ते और अंड-बंड बकते, बेचारी घरवाली को दुःख देने के लिये घर में आ लुढ़कते हैं, वे किस मुँह से स्त्री से व्रतधारिणी होने की आशा करते हैं। विवाह के समय उनकी स्त्री समझती है कि

कोई मनुष्य मेरा पाणिग्रहण कर रहा है; परंतु बाद को यह जानकर दुःख होता है कि मनुष्य नहीं, पिशाच है। इसलिये घर से बाहर वक्त काटने की बुरी बान को पहले से ही रोकना चाहिए। पति को पहले से ही ध्रुव निश्चय कर लेना चाहिए कि जब तक कोई आवश्यक काम न हो, वह अपने अवकाश का एक घंटा भी घर से बाहर नहीं बितावे। तभी वह पति कहलाने का सच्चा अधिकारी है। कविवर मतिराम ने भी पति का ऐसा ही लक्षण लिखा है—

पाँव धरे दुलही जिहि ठौर, रहे 'मतिराम' तहाँ दृग दीने;
छोड़ि सखीन के साथ को खेलिबो, बैठ रहे घर ही रस भीने।
साँझहि तै ललके मन-ही-मन, लालन यौं रस के बस लीने;
लौनो सलौनी के अंगनि नाह, सु, गौने की चूनरी ठोने से कीने।

जिन पतियों को घर से बाहर गपशप लगाते फिरने की लत है, वे यदि पत्नी और परिवार के साथ घर पर अपने अवकाश का समय बिताने का यत्न-पूर्वक अभ्यास करेंगे, तो कुछ दिन बाद यह उनका एक स्वभाव ही बन जायगा, और उन्हें इसमें बड़ा आनंद आवेगा। संसार का ऐसा कोई भी विषय नहीं, जिस पर तुम पत्नी के साथ बातचीत करके आनंद न ले सको। धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास आदि सभी विषयों में यदि तुम थोड़ा-सा उद्योग करो, तो उसमें पूरी-पूरी

रुचि उत्पन्न कर सकते हो, और अल्प काल में ही वह तुम्हारे वार्तालाप में वैसे ही भाग लेने और उसे आनंददायक बनाने लगेगी, जैसा कि तुम्हारे दूसरे मित्र जिनके आकर्षण से खिंचकर तुम घर से बाहर रहते हो। इससे एक बड़ा लाभ यह भी होगा कि तुम्हारी संतान की शिक्षा में बड़ी सहायता मिलेगी, क्योंकि माता-पिता की वार्तालाप का अज्ञानतः संतान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि तुम अपने घर में संवादपत्र, उपन्यास या नाटक पढ़कर सुनाओगे, तो धीरे-धीरे सभी को इनमें रुचि हो जायगी।

पुरुषों के लिये दिन-रात का बहुत-सा हिस्सा घर से बाहर रहना आवश्यक है। क्लर्क, दूकानदार, सिपाही, किसान और मज़दूर, सबको अपनी अवस्था तथा काम के कारण घर से बाहर रहना पड़ता है। हम इस अनुपस्थिति का विरोध नहीं करते। हम जिसका प्रतिवाद करते हैं, वह है अवकाश के घंटों को विना ज़रूरत और जान-बूझकर घर से बाहर बिताने का स्वभाव, अपने घर की अपेक्षा पड़ोसी के या उसी गली में किसी भी दूसरे घर को अधिक पसंद करना। किसी आवश्यकता-वश पुरुष के घर से अनुपस्थित होने से स्त्री के हृदय को दुःख नहीं होता। वह समझती है, यदि तुम्हारे वश की बात होती, तो तुम अवश्य उसके पास होते, और इतने

से ही उसको संतोष रहता है; उसे यह अनुपस्थिति बुरी तो लगती है, परंतु विना शिकायत किए वह उसे सहन कर लेती है। इन अवस्थाओं में भी यथासंभव उसके भावों का ध्यान रखना चाहिए। उसे इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान रहना चाहिए कि अनुमान से तुम कितनी देर तक बाहर रहोगे और संभवतः किस समय तक लौटोगे। और, यदि यह बात अवस्था पर निर्भर हो, तो वे अवस्थाएँ पूरी तरह से उसे बता दी जानी चाहिए; क्योंकि जब तुम उसके मन को शांत रख सकते हो, तो तुम्हें उसे अशांत रखने का कोई अधिकार नहीं। मैं इतने बजे लौट आऊँगा, ऐसा वचन दे जाने पर उसी समय लौटने का पूरा यत्न करो। यदि न लौट सको, तो अपने रुक जाने की सूचना भेजवा दो। उसे व्यर्थ प्रतीक्षा में बैठाए मत रक्खो। पति के आने का निश्चित समय मालूम रहने पर, प्रायः देखा जाता है, सुभार्या घर के नौकरों तथा बच्चों को सुलाकर स्वयं रात के दो-दो बजे तक अकेली प्रतीक्षा में बैठी रहती है। परंतु जो पुरुष अपने वचन का ध्यान न रखकर निश्चित समय पर लौटने की परवा नहीं करते, वे पत्नी की इस भक्ति को शीघ्र ही खो बैठते हैं।

यदि नवयुवकों को मालूम हो कि स्त्रियाँ इस प्रकार की पत्नीभक्ति को कितना अच्छा समझती हैं, तो दुःखी

दंपतियों की संख्या वर्तमान की अपेक्षा बहुत कम हो जाय। यदि पुरुष किसी अफ़सर या बड़े आदमी से मिलने का समय नियत कर ले, तो ठीक समय पर उसके पास पहुँचने से कभी नहीं चूकता, और विश्वास रखिए कि स्त्रियाँ भी इसमें चूक होने को किसी अफ़सर से कम बुरा नहीं मानतीं। मैं कहाँ चला और किस समय घर लौटूँगा, इस बात की निश्चित सूचना पत्नी को देने में असावधानी करने से हमने अनेक परिवारों का गार्हस्थ्य सुख नष्ट होते देखा है। बुद्धिमान् पति आरंभ से ही इस विषय में सावधान रहते हैं। किसी भी मनुष्य को किसी भी निरपराध व्यक्ति के भावों की, विशेषतः उस व्यक्ति के जिसने अपने सुख को उसके हाथ समर्पण कर रक्खा है, अवहेलना करने का अधिकार नहीं। सच तो यह है कि प्रायः पुरुष यही समझे हुए हैं कि हमारे और स्त्रियों के भावों में कुछ भी भेद नहीं, परंतु यह बड़ी भूल है। यह बात पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक चुभती है। उनका अनुराग अधिक तीव्र, अधिक पवित्र, अधिक स्थायी होता है, और वे अपने मन के भावों को कह देने में अधिक सरल और अधिक निष्कपट होती हैं। उनके सुप्रिय गुणों और समस्त निर्बलताओं का ध्यान रखकर उनके साथ कोमल बर्ताव होना चाहिए, और उनके हृदय पर चोट करनेवाली किसी भी बात को तुच्छ नहीं समझना चाहिए।

आओ तनिक सोचें कि विवाह करके स्त्री कैसा अपूर्व त्याग करती है। वह दंपति के सम्मिलित आनंद के लिये अपनी स्वतंत्रता का समर्पण करती है। वह पति को इस बात का पूर्ण अधिकार देती है कि वह उसे जिस जगह, जिस ढंग से, और जिस समाज में चाहे रख सकता है। वह उसे अधिकार देती है कि वह पत्नी के धन और संपत्ति को आप ले ले और स्वेच्छानुसार उपभोग करे। और इन सबसे बढ़कर वह उसके हाथ आत्म-समर्पण करती है—अपने शरीर तथा आत्मा पर उसको अधिकार दे देती है। फिर सोचिए, वह पति के लिये कितना कष्ट सहन करती है। बच्चे पालने का प्रायः सारा कष्ट उसी को उठाना पड़ता है। पति के रुग्ण होने पर वह किस प्रेम और भक्ति से उसकी टहल करती है—उसकी सेवा में दिन-रात एक करती और प्रसन्नता से उसका मल-मूत्र तक उठाती है। वह गृहस्थी में ऐसे-ऐसे काम करती है, जिनको यदि पति को अकेले ही करना पड़े, तो उसका कचूमर निकल जाय। वह अपनी संतान का कैसा हित करती है। कई अवस्थाओं में तो वह उन पर अपने प्राणों से भी बढ़कर प्रेम करती है। इन बातों का विचार करके कौन न्यायप्रिय पुरुष उसके सुख पर आघात करनेवाली किसी बात को तुच्छ समझने का खयाल तक मन में ला सकता है?

एक समय की बात है, एक स्त्री नहर पर कपड़े धो रही थी। उसकी दो बरस की नन्हीं बच्ची खसककर सड़क पर आ गई, और धूप में लेट गई। उधर से तीन-चार गाड़ियाँ आ निकलीं। प्रत्येक गाड़ी में चार-चार मज़बूत घोड़े लगे हुए थे। वे सरपट दौड़े आ रहे थे। सबसे अगली गाड़ी के कोचवान की दृष्टि बच्ची पर नहीं पड़ी। वह बराबर घोड़ों को बढ़ाता चला आया। क़रीब था कि अगले घोड़ों के सुम बच्ची को कुचल डालें कि निकट की दूकान पर से एक युवक एकदम झपटा। उसने कुरते से पकड़कर बच्ची को सड़क के एक ओर फेंक दिया। इतने में घोड़े के सुमों की ठोकर उसे लगी। उसे चोट तो आई, परंतु अपनी होशियारी के कारण वह बच गया। घोड़ा-गाड़ियों का शब्द सुन इधर लड़की की माता भी चौंककर बे-तहाशा सड़क की ओर दौड़ी, इस बीच में युवक लड़की को उठाकर एक ओर फेंक चुका था। माता ने पहले तो उठाकर उसे ज़ोर से छाती के साथ लगाया, फिर एक ऐसी चीख़ मारी, जैसी पहले कभी न सुन पड़ी थी, और धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी, मानो उसमें प्राण बिलकुल नहीं रहे। कुछ देर बाद उसे होश में लाया गया। एक सज्जन यह सब देख रहे थे। उन्होंने बच्ची को बचानेवाले युवक से पूछा कि क्या आप विवाहित हैं, और क्या आपका इस बच्ची के माता-पिता के साथ कोई संबंध

है ? उसने उत्तर दिया—न मैं विवाहित हूं, और न मेरा उनके साथ कोई संबंध है। तब वह सज्जन बोला—"तब आप संसार के सभी माता-पिताओं की कृतज्ञता के पात्र हैं।" फिर उसने जेब में से एक पाँच रुपए का नोट निकालकर उसे देना चाहा, और कहा कि मैं अपनी कृतज्ञता के रूप में यह तुच्छ भेंट आपको देता हूँ। परंतु युवक ने लेने से इनकार करते हुए कहा—"महाशय, मैंने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है। मैं आपकी भेंट लेने में असमर्थ हूँ।"

इससे बढ़कर वीरता, निःस्वार्थता और मातृ-स्नेह की कल्पना असंभव है। माता इन बलवान् और भयानक घोड़ों के पैरों और गाड़ियों के ठीक नीचे घुसने के लिये दौड़ी जा रही थी। उसे अपना कुछ भी विचार न था; उसकी चीख़ एक ऐसे हर्ष की ध्वनि थी, जो व्यक्त नहीं किया जा सकता, जो इतना अपार था कि उसे प्राप्त कर वह अपने को सँभाल नहीं सकती थी। ऐसी अवस्था में कदाचित् सौ में से निन्यानबे माताएँ ऐसा ही करें। अपेक्षा-कृत बहुत थोड़ी ऐसी माताएँ हैं, जो मातृ-स्नेह से परिपूर्ण न हों। जो लड़की बच्चों से प्यार नहीं करती, वह इस योग्य ही नहीं कि उससे कोई पुरुष विवाह करे। जिस पुरुष को छोटे बच्चों से घृणा है, उसे विवाह करने का अधिकार ही नहीं।

यह एक पुरानी कहावत है कि माता को प्रसन्न करना हो, तो उसके बच्चे से प्रेम करो। स्नेहमयी माता को प्रसन्न करने का उसके बच्चे की प्रशंसा करने से बढ़कर और कोई उपाय नहीं। बच्चा जितना छोटा होगा, उसकी प्रशंसा में कहे गए शब्दों को उतना ही अधिक वह पसंद करेगी। माता के साथ कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें कीजिए, किंतु उसके बच्चे का ध्यान न कीजिए, तो वह आपसे घृणा करेगी। किसी भी पति को इस बात को न भूलना चाहिए; क्योंकि यदि पत्नी दूसरों से अपने बच्चे की प्रशंसा कराना चाहती है, तो आप अनुमान कर सकते हैं कि—पति से प्रशंसा सुनने की उसकी कितनी प्रबल इच्छा होती होगी ! एक मद्यप कहा करता था कि यदि मैं अपने कुरूप बालक को चूम लूँ, और कहूँ कि यह कैसा सुंदर है, तो फिर चाहे मैं अपना सारा वेतन बाहर ही खर्च कर डालूँ, मेरी स्त्री मुझे क्षमा कर देती है। यद्यपि यह व्यक्ति बड़ा दुश्चरित तथा लंपट था, तो भी वह आसन को समझता था। यह बात निश्चित है कि तब तक कोई वैवाहिक सुख संभव नहीं, जब तक पति स्पष्ट रूप से संतान के प्रति और वह भी उसके जन्म-दिन से ही, प्रेम का व्यवहार न करे।

यद्यपि उपर्युक्त कारणों से पति को पत्नी के साथ यथा-संभव बहुत ही दया-पूर्ण व्यवहार करना चाहिए, तो भी

वह उससे धर्मानुकूल आचरण की आशा करे। वह उसका दास न हो; वह अपने विवेक और तर्क की आज्ञाओं के विरुद्ध पत्नी के सामने सिर न झुकाए; पति के सभी धर्मसंगत आदेशों को मानना पत्नी का कर्तव्य है, और यदि उसमें कुछ भी बुद्धि है, तो वह झट समझ जायगी कि एक ऐसी वस्तु को अपना पति स्वीकार करना, जो पूर्णरूप से उसकी मुट्ठी में है, अपमान-जनक है। यदि आवश्यकता हो, तो पति को भार्या की जिह्वा को भी क़ाबू में रखने का अधिकार है; क्योंकि यदि वह उसका अनुचित और अशोधनीय रीति से प्रयोग करती है, तो उसकी निंदा और कुत्सा से दुःखित होनेवाले व्यक्ति को पति के विरुद्ध शिकायत करने का अधिकार है। पत्नी के दूसरों को गालियाँ देने या चुग़ली करने से पति का बड़ा भारी अपयश होता है।

एक समय की बात है, एक मनुष्य एक दूसरे मनुष्य की निंदा कर रहा था। एक सज्जन ने उससे कहा कि जिसकी आप निंदा कर रहे हैं, क्या आप कभी उससे मिले भी हैं? आप जैसा उसे समझ रहे हैं, वह वैसा बुरा नहीं। आप पहले उससे मिलकर तो देखिए। यदि सचमुच आपको उसमें दोष जान पड़े, तो बेशक निंदा कीजिए। बिना जाने व्यर्थ ही किसी को बुरा कहना ठीक नहीं। निंदक महाशय की स्त्री भी पास बैठी थी। वह

पुरुषोचित कठोर स्वर में बोल उठी—इनको उससे मिलने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं तो इन्हें उसके पास कभी न जाने दूँगी। उस सज्जन ने कहा—आप इनको उसके पास जाने नहीं देंगी, यह दूसरी बात है। परंतु यदि यह उसके पास नहीं जायँगे, यदि यह ठीक-ठीक बात मालूम किए विना ही उसकी निंदा करेंगे, तो कम-से-कम मैं इनको न्यायप्रिय नहीं समझ सकता। और न मैं यही मान सकता हूँ कि इनकी कोई अपनी सम्मति है। ये सब बातें स्त्री-दास दब्बू पति चुपचाप सुनता रहा। उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। ऐसा दब्बू पति बड़ा ही जघन्य जीव है। उस पर किसी बात के लिये भी भरोसा नहीं किया जा सकता। क्या मालिक और क्या नौकर के रूप में वह विश्वस्त नहीं हो सकता? ऐसा मनुष्य किसी भी मामले पर और किसी भी वचन पर पक्का नहीं रहता। जिस प्रकार वायु के प्रबल झोंके के सामने सरकंडे का पेड़ झुक जाता है, उसी प्रकार गरजती हुई चंडिका-रूपिणी स्त्री के सामने वह सिर नहीं उठा सकता। पड़ोसियों की दृष्टि में (क्योंकि मित्र तो ऐसे पुरुष के हो ही नहीं सकते) नौकरों की दृष्टि में, यहाँ तक कि भिखारियों की दृष्टि में भी ऐसा मनुष्य एक नीच और घृणित प्राणी होता है, चाहे वह लाखों का मालिक और बड़ा भारी सेठ ही क्यों न हो। वास्तव में, ऐसे मनुष्य की कोई संपत्ति

नहीं होती, उसके पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं, जिसे यथार्थतः वह अपनी कह सके। वह अपने ही घर में भिखारी के सदृश पराधीन है, और यदि उसमें मनुष्यत्व का कुछ भी अंश शेष रह गया है, और उसके निकट कोई रस्सी अथवा नदी है, तो जितनी शीघ्र वह उनमें से एक का आश्रय ले, उतना ही अच्छा है। पति के स्त्री का दास बन जाने, सदा उससे भयभीत रहने, उससे दबने से, कितने ही मनुष्य और कितने ही परिवार नष्ट हो गए हैं। फिर यदि ऐसे प्रचंड स्वभाव की स्त्री आचारहीना भी हो, तब तो उस दब्बू पति का ईश्वर ही रक्षक है।

स्त्रियाँ सब बहनें बहनें बन जाती हैं। क़ानून ने पुरुष को स्त्री पर बहुत बड़ा अधिकार दे रक्खा है, इसलिये उनका पुरुषों के विरुद्ध मिल जाना स्वाभाविक है। हाल में रूस के एक गाँव में एक पुरुष ने अपनी स्त्री को पीटा था। इस गाँव की सब स्त्रियों ने मिलकर हड़ताल कर दी। वे घर का काम-काज और बच्चे छोड़कर एक गिरजे में जा बैठीं। उनके पतियों ने उनको बलात् ले जाने का उद्योग किया। आपस में ख़ूब युद्ध हुआ, और पुरुष हार गए। फिर आपस में संधि हो गई। उसमें एक शर्त यह थी कि कोई पति अपनी पत्नी को नहीं पीटेगा। तब वे स्त्रियाँ अपने घरों को लौटीं। यह प्रशंसनीय भी है। परंतु जहाँ "मैं कभी न जाने दूँगी" तक की नौबत पहुँच जाय,

वहाँ यह एक ओर स्वेच्छाचारिता और दूसरी ओर दासता हो जाती है। इसलिये स्त्री को अनुचित दबाव डालने का स्वभाव कभी न पड़ने देना चाहिए। ज्यों ही इसके चिह्न प्रकट हों, चटपट उसे रोक देना चाहिए। कुछ परवा नहीं, चाहे तुम्हें उस काम में कितना ही कष्ट क्यों न हो। इस समय एक दिन का कष्ट भविष्य में वर्षों के कष्ट को रोक देगा। एक दिन का कष्ट भोगने का दृढ़ निश्चय न कर सकने के कारण ही अनेक पुरुषों ने अपने तथा अपनी स्त्री के जीवन को बीस-बीस और चालीस-चालीस वर्ष के लिये दुःखमय बना लिया है। जिस पर तुम इतना प्यार करते हो, जिसके सद्गुण दिन-पर-दिन तुम्हारे लिये उसे अधिक और अधिक प्रिय बनाते रहते हैं, उसकी इच्छाओं का विरोध करना कोई साधारण काम नहीं। इसके लिये तुम्हें बहुत कुछ सहना पड़ेगा। परंतु जब स्नेहमयी माता अपनी आँखों में आँसू भरकर भी रोते हुए बीमार बच्चे को कड़वी ओषधि पिला देती है, बच्चे को कष्ट होता है, यह जानकर भी वह बच्चे के हित से प्रेरित होकर, उसे दवाई पिलाने से नहीं झिझकती, तब तुम्हें उसके प्रति, तुम्हारे अपने प्रति तथा तुम्हारे बच्चों के प्रति उससे भी कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण और अधिक पवित्र कर्तव्य का पालन करने में क्यों संकोच होना चाहिए?

क्या हम अत्याचार की सिफ़ारिश कर रहे हैं ? क्या हम भार्या की सम्मतियों और इच्छाओं के निरादर की सिफ़ारिश कर रहे हैं ? क्या हम उसके प्रति एक ऐसी विरक्ति की सिफ़ारिश कर रहे हैं, जिससे यह ध्वनि निकलती है कि वह विश्वास्य नहीं, या उसे अपने पति के कामों में रुचि नहीं ? नहीं, यह बात बिलकुल नहीं, इसके विपरीत, हम तो यह पसंद करते हैं कि अप्रिय बात को उससे दूर रक्खा जाय; परंतु हम किसी शुभ और प्रसन्नता की बात को, उसे सम्मिलित किए बिना, अकेले आनंद लेने के घोर विरोधी हैं। तर्क कहता है, और ईश्वर की भी आज्ञा है कि भार्या का अपने पति की आज्ञाकारिणी और सुप्रबंध की दृष्टि से भी, घर का एक मुखिया और सर्वाधिकारी होना परमावश्यक है। फिर बात भी स्पष्ट रूप से न्यायसंगत है कि यह अधिकार उसी के हाथ में हो, जिसके सिर पर सारा उत्तरदायित्व है।

पति पर हुकुम चलानेवाली स्त्रियाँ प्रायः बूढ़े और दुर्बलेंद्रिय पुरुषों की युवती पत्नियाँ हुआ करती हैं। ये प्रायः निःसंतान भी होती हैं। इन्हें बाल-बच्चों के पालन की चिंता तो होती नहीं, सारा दिन स्त्रियों के साथ अपनी डींग हाँकने में बिताती हैं। अपनी संतानवाली बहनों से द्वेष रखने के कारण वे यह कहकर उन्हें नीचा दिखाना चाहती हैं कि तुम अपने पति की लौंडी हो,

और मैं अपने पति पर शासन करती हूँ। यह स्वाँग रच-कर वे उन पर अपनी श्रेष्ठता का भाव अंकित करना चाहती हैं।

जब स्त्री अपनी बात मनवाना चाहती है, और देखती है कि मेरी कुछ चलती नहीं, तो वह पति के मित्रों को अपने पक्ष में करने का यत्न करती है। "सुधा के पिता, मेरा पति कहता है कि इस प्रकार है, और मैं कहती हूँ कि यह उस प्रकार है। क्या आप नहीं समझते कि मैं सच्ची हूँ?" कहना न होगा कि सुधा का पिता, प्राण की माता, ज्ञान का चचा और रमेश्वर का बाबू, सब श्रीमतीजी को सच्ची समझते हैं, और पति को ऐसा जान पड़ता है कि वे सब उसकी पत्नी के निकट संबंधी हैं। परंतु यह बड़ी मूर्खता की बात है। इन सुशील सज्जनों में से कोई भी अपने घर में ऐसी अवस्था को कभी पसंद नहीं करेगा। स्त्री जो कुछ भी कहे विशेषतः अपने पति के विरुद्ध, उसकी हाँ-में-हाँ मिलाना एक फ़ैशन-सा हो रहा है, और यह बड़ा ही अनिष्टकर फ़ैशन है। यह उस स्त्री की प्रशंसा करना नहीं, बरन् अनुचित प्रशंसा करके एक स्त्री के मिज़ाज को बिगाड़ना है। कोई भी समझदार स्त्री सिवा केवल प्रमाद के अपने पति के मित्रों से इस प्रकार की अपील नहीं करेगी। यह फ़ैशन अत्यंत घृणित होने के कारण प्रायः बड़े ही शोचनीय परिणाम

पैदा कर देता है। पति के मित्रों की सम्मति से पुष्टि पाकर पत्नी दुगुनी शक्ति और दुराग्रह के साथ पति पर आक्रमण करती है, और यदि पति सिर न झुका दे, तो दस में से नौ बिस्वे तो एक झगड़ा या कम-से-कम झगड़े के क़रीब-क़रीब ही कोई बात खड़ी हो जायगी। एक समय की बात है, एक सज्जन अपने अठारह वर्ष के पुत्र को दूकान के काम में लगाना चाहते थे। लड़के की माता, जो बड़ी समझदार और पवित्र आचरण की स्त्री थी, पुत्र से नौकरी कराना चाहती थी। एक दिन उनके घर में सात-आठ मित्र बैठे थे। वे सब-के-सब माता से सहमत हो गए, और कहने लगे कि हरिश्चंद्र को इतना पढ़ाकर दूकान कराना अच्छा नहीं लगता। उनके साथ एक स्वतंत्र विचार का अनुभवी गृहस्थ भी बैठा था। लड़के की माता ने उससे भी कहा—क्या आपकी यही सम्मति नहीं? उसने उत्तर दिया—"श्रीमतीजी, मेरे लिये ऐसे विचारणीय विषय में किसी प्रकार की सम्मति देना अन-धिकार चेष्टा है, विशेषतः पिता के निर्णय के विरुद्ध, जो ऐसी दशा में सबसे अच्छा और न्यायसंगत निर्णेता है।" वह बड़ी ही समझदार और सुशीला स्त्री थी, परंतु फिर भी उस गृहस्थ ने देखा कि वह उसकी दृष्टि में एकदम गिर गया। किंतु उसे इतनी प्रसन्नता ज़रूर हुई कि अंत को हरिश्चंद्र दूकान में ही लगाया गया।

जिस परिवार में आपस में मतभेद हो, वह सफल कभी नहीं हो सकता। पत्नी की बात सुनी जानी चाहिए और बड़े धैर्य-पूर्वक सुनी जानी चाहिए; उसके साथ युक्ति और प्रमाण से काम लेना चाहिए, और यदि संभव हो, तो उसे संतुष्ट कर देना चाहिए; परंतु इस विषय में सब प्रयत्न करने पर भी यदि वह पति की सम्मति के विरुद्ध ही रहे, तो पति की इच्छा मानी जानी चाहिए, नहीं तो वह कोई चीज़ नहीं रह जाता। वास्तव में, वह शासक हो जाती है और पति घर में रहनेवाला एक तुच्छ-सा जीव रह जाता है। अपेक्षा-कृत कम महत्त्व के विषयों में, जैसा कि भोजन के लिये क्या-क्या चीज़ें पकाई जायँ, घर के और घरेलू नौकरों के प्रबंध, और ऐसी ही दूसरी बातों में पत्नी जैसा चाहे कर सकती है; इसमें कुछ भी डर नहीं। परंतु जब यह प्रश्न हो कि कौन-सा व्यवसाय किया जाय, किस जगह को निवास-स्थान बनाया जाय, किस ढंग से रहा जाय और कितना ख़र्च किया जाय, संपत्ति को क्या किया जाय, बच्चों को कैसे और किस जगह शिक्षा दिलाई जाय, उनका व्यवसाय और जीवन की स्थिति क्या हो, पति किनको नौकर रक्खे और किन पर विश्वास करे, सार्वजनिक बातों में वह किन सिद्धांतों पर चले, किनको अपना सहकारी या मित्र बनावे, ये सब बातें पति के लिये छोड़ देनी चाहिएँ;

इन सबमें वह जैसा चाहे कर सके, नहीं तो परिवार में एकता कभी नहीं हो सकती।

इस पर भी, इनमें से कुछ कामों में, विशेषतः अपने मित्र तथा साथी चुनने में, स्त्रियों को बड़े ध्यान से सुनना चाहिए। स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक शीघ्र बात को ताड़ जाती हैं। किसी व्यक्ति से पहली बार मिलने पर जितनी जल्दी पुरुष उस पर विश्वास करने लग जाता है, उतनी जल्दी स्त्रियाँ नहीं करतीं। वे निमित्तों पर अधिक संदेह करती हैं, प्रतिज्ञाओं और दृढ़ोक्तियों द्वारा ठगे जाने की उनकी कम संभावना होती है। वे दूसरों के शब्दों की खूब छानबीन करतीं, और उनकी सूरतों को अधिक गहरी दृष्टि से देखती हैं और विशेष अवस्थाओं में उनके पक्षपातों और प्रतिवादों को, बिना सोचे-विचारे, तुच्छ नहीं समझना चाहिए।

एक फ्रांसीसी लिखता है कि "मैं शत्रु-सेना से भागता हुआ लँगड़ा होकर रात को एक गाँव में एक किसान के घर जा टिका। मेरे पास राहदारी का कोई नियमित परवाना नहीं था। किसान ने मुझसे पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ से और किस लिये आए हो? मैंने उसे उत्तर दिए। वह उनसे संतुष्ट हो गया। परंतु किसान की स्त्री ने आते ही मुझे एक निगाह में छान डाला। उसने चटपट एक लड़के के हाथ चुपके-से नंबरदार को बुला भेजा।

मैं फ़ौरन् समझ गया कि नंबरदार से मुझे कोई डर नहीं, क्योंकि वह मेरे राहदारी के झूठे परवाने को समझ नहीं सकता था। उसको मैंने ख़ूब मदिरा पिलाई, और नशे में मस्त होकर उसने परवाने की बात सुनने से ही इनकार कर दिया। यह देखकर घरवाली चुपके-से बाहर जाकर दो चौधरियों को बुला लाई। उन्होंने आकर राहदारी का परवाना (पासपोर्ट) माँगा।

"मैंने कहा, बहुत अच्छा। पहले मदिरा पान कीजिए। तब नशे में बदमस्त नंबरदार की प्रार्थना पर मैंने एक हँसानेवाली कहानी सुनानी शुरू कर दी, ख़ूब हँसी हुई और मदिरा पी गई। राहदारी का परवाना मेरे हाथ में रहा, परंतु इसे खोलने की नौबत नहीं आई। जब वे सब दुबारा मदिरा पीने लगे, तो मैंने परवाने को चुपके-से जेब में डाल लिया। इस बीच में वह स्त्री बड़ी क्रुद्ध देख पड़ती थी। अंत को नंबरदार, चौधरी और किसान ने, जो सब-के-सब मदिरा में बदमस्त थे, मेरे साथ हाथ मिलाया और कहा कि तुम बहुत अच्छे आदमी हो, परंतु वह तीक्ष्ण दृष्टिवाली स्त्री, मेरी कहानियों और प्रतिज्ञाओं के धोखे में नहीं आई, और मेरे इस प्रकार से बचकर निकल जाने पर, उसे बड़ी निराशा और संताप हुआ।" जिस गुण के कारण स्त्रियाँ कठिनाई की अव-स्थाओं में चटपट उपाय ढूँढ़ लेती हैं, उसी के कारण वे

निमित्तों और चरित्रों की तह तक पहुँचतीं, और संदेह करती हैं।

अब हम यथासंभव सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण विषय को लेते हैं। यह एक ऐसा विषय है, जिससे विवाहित जीवन दुःखमय हो जाता है, और परिवारों की शांति नष्ट हो जाती है। इसका नाम है डाह या शंकाशीलता। हम पहले पत्नी में डाह का वर्णन करते हैं। यह सदा बड़े ही दुर्भाग्य की बात होती है, और प्रायः घातक सिद्ध होती है। यदि इसकी ओर स्त्री का अधिक झुकाव हो, तो इसका रोकना बड़ा कठिन होता है। परंतु इसको रोकने के लिये एक बात तो प्रत्येक पति कर सकता है, और वह यह है कि वह पत्नी को शंका के लिये कोई अवसर ही न दे। इसके लिये इतना ही पर्याप्त नहीं कि वह पर-स्त्रीगामी न हो। इसके अतिरिक्त उसे प्रत्येक ऐसी चेष्टा से भी बचना चाहिए, चाहे वह कितना ही निष्पाप क्यों न हो, जो उसके मन में थोड़ा-सा भी संदेह उत्पन्न कर सकती है, जिसकी शांति को भंग न करने के लिये वह न्याय और मनुष्यता के प्रत्येक बंधन से आबद्ध है। न वह किसी दूसरे को इसे भंग करने दे। जो स्त्री अपने पति पर मुग्ध है, और सौ में निन्नानवे स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं, वे नहीं चाहतीं कि कोई दूसरी स्त्री उसके पति के, न केवल प्रेम, वरन् मनोनिवेश और प्रशंसा का भी

कुछ अंश उससे छीन ले। इस प्रकार दूसरी स्त्री पर प्रेम प्रकट करने और उसकी प्रशंसा करने से अपने वृथा गर्व की परितुष्टि के सिवा और कुछ फल नहीं होता, इसलिये इन बातों से बचना ही चाहिए, विशेषतः जब कि इस परितुष्टि से उसके हृदय में अशांति पैदा होने की संभावना है, जिसको सुखी रखना तुम्हारा परम धर्म है।

हमारे जाने हुए लोगों में से एक युवक वकील हैं। आपका हाल में विवाह हुआ है। आप बड़े रसिक और हँसमुख हैं। आपको स्त्री भी अच्छी, रूपवती और पंडिता मिली है। परंतु आपका अपनी बड़ी भाभी से बड़ा प्रेम है। वे आपस में ख़ूब हँसी-मज़ाक़ किया करते हैं। हम जानते हैं, उन दोनों के मन पवित्र और उनकी दिल्लगी सर्वथा निष्पाप है। परंतु उनकी नव-विवाहिता धर्म-पत्नी को पति की यह हँसी-दिल्लगी पसंद नहीं। कुछ दिन तो वह चुपचाप देखा की, परंतु अंत में उसका धैर्य जाता रहा। स्त्री-सुलभ डाह ने उस पर अधिकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि घर में खटपट हो गई। और बढ़ते-बढ़ते उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। पति कहता था कि भाभी के साथ मेरा पवित्र प्रेम है। स्त्री के झूठे संदेह के कारण मैं भाभी से जुदा होने को तैयार नहीं। मामला यहाँ तक बिगड़ा कि वकील महाशय अपनी स्त्री का परित्याग करने पर उतारू हो गए। घर में आठों याम

अशांति की अग्नि धधकने लगी। वकील महाशय का सबसे बड़ा दोष यही था कि वे नारी-प्रकृति का ज्ञान न रखते हुए अज्ञानतः ऐसी चेष्टाएँ करते थे, जिनसे उनकी धर्म-पत्नी के हृदय में संदेह और डाह का उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

एक अनुभवी अँगरेज़ लिखता है कि मैं जिन दिनों सेना में नौकर था ,फ्रांस और अमेरिका में जो भी लड़की मार्ग में मिल जाय उसके साथ छेड़-छाड़ किया करता था। जब मेरा विवाह हो गया तब भी मुझमें चंचलता करने का स्वभाव बना रहा। एक दिन मेरी स्त्री ने मुझसे बड़ी गंभीरता-पूर्वक कहा—"ऐसा मत किया करो, मैं इसे पसंद नहीं करती।" मेरे लिये इतना ही पर्याप्त था। मैंने कभी पहले इस विषय पर विचार ही न किया था। उसके सिर का एक बाल मेरे लिये संसार की शेष सभी स्त्रियों से अधिक मूल्यवान् था, और मैं जानता हूँ, यह बात उसे भी मालूम थी। परंतु मुझे अब पता लगा कि मुझसे वह केवल इतना ही प्रेम पाने की अधिकारिणी नहीं, वह मुझसे यह भी मुतालबा कर सकती है कि मैं कोई ऐसी भी चेष्टा न करूँ, जिसमें दूसरों को यह विश्वास करने का अवसर मिले कि मेरा किसी दूसरी स्त्री के साथ अनुराग है।

विवाहित युवकों को यह बात कभी न भूलनी चाहिए;

क्योंकि इसी प्रकार की किसी तुच्छ सी बात से ही विवाहित जीवन सदा के लिये दुःखमय हो जाता है । यदि पत्नी का मन इस कारण अशांत हो, तो जहाँ तक भी संभव हो, प्रत्येक उपाय से उसे शांत करने का यत्न करना चाहिए । चाहे उसके संदेह सर्वथा निराधार हों, चाहे वे पागल के स्वप्नों के सदृश उच्छृंखल हों, चाहे वे प्रचंडता और उपहास का सम्मिश्रण मालूम होते हों, तो भी उन पर बड़ी सौम्यता तथा कोमलता के साथ ध्यान देना चाहिए । यदि, सब यत्न करने पर भी, तुम्हें सफलता न हो, तो इसको दुर्भाग्य समझना चाहिए, न कि दोष समझकर दंड देना चाहिए, क्योंकि तुम जानते हो कि इस डाह का मूल्य तुम्हारे प्रति उसका अनन्य प्रेम है और उस प्रेम का बदला किसी प्रकार की कठोरता के रूप में देना, परले दर्जे की निर्दयता और नीचतम कृतघ्नता होगी।

जो पति अपनी पत्नियों के अनुचित संदेहों को उचित संदेह बनाने की युक्ति बना लेते हैं, जो इन संदेहों को एक खेल समझकर उनमें आनंद लेते हैं, जो इन पर शेख़ी बघारते हैं, और इनको शांत करने के बदले इनको बढ़ाते हैं, उनके प्रति हमें कुछ नहीं कहना, क्योंकि वे हमारे परामर्श के क्षेत्र से परे हैं । परंतु जो पति इस प्रकार के नहीं, उनसे इस स्त्री-डाह को रोकने के संबंध में हमें दो-एक बातें कहनी हैं—

पहली बात तो यह है कि पत्नी का किसी दूसरे पुरुष के साथ अकेले जाना या बैठना न तो सभ्यता के अनुकूल है और न कुलीनता का ही चिह्न है। जब पति साथ हो, तो किसी दूसरे पुरुष का स्त्री की टहल-सेवा करना और उसके आगे-पीछे फिरना शिष्टाचार के नितांत विरुद्ध है। जो लोग अँगरेज़ों की नक़ल करते हुए ऐसी बेहूदा बातें स्वयं करते या दूसरों को करने देते हैं, वे अपनी तथा समाज की भारी हानि करते हैं। ऐसी नक़ल से समाज का चरित्र सुधरने के स्थान में गिरता ही है। यह झूठी सभ्यता है। वे लोग बाहर से दिखलाते यह हैं कि पति और पत्नी को एक दूसरे पर इतना विश्वास है कि एक पुरुष अपनी स्त्री को दूसरे के विश्वास पर, और एक स्त्री अपने पति को दूसरी के विश्वास पर छोड़ सकती है। परंतु नक़ली शुद्धता का यह ढोंग उल्टा परिणाम पैदा करता है, क्योंकि यह कहता है कि पति-पत्नी दोनों के मन में लंपट विचार भरे हुए हैं।

सच तो यह है कि पत्नी में डाह न पैदा होने देने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि तुम अपने आचरण से (अपने शब्दों से भी, परंतु विशेषतः अपने आचरण से) यह दिखलाओ और प्रमाणित करो कि तुम उसे सारे संसार से अच्छी समझते हो; और, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इसके लिये सबसे उपयुक्त काम यह है कि अपने अवकाश

का प्रत्येक मुहूर्त उसकी संगति में व्यतीत करो। सब कोई जानता है, और तरुणी पत्नियाँ इस बात को सबसे अधिक जानती हैं कि यदि मनुष्य के वश की बात हो, तो वह वहीं बैठना पसंद करता है, जहाँ उसे सबसे अधिक आनंद आता है, और वे उन्हीं के साथ होंगे जिनकी संगति को वे सबसे अधिक पसंद करते हैं। यह बात बिलकुल साफ़ है और इसे कभी भूल न जाना चाहिए। एक युवा पति और युवती पत्नी को एक दूसरे को छोड़कर और किसकी संगति की आवश्यकता है? और यदि उनके बच्चे हों, फिर तो कहना ही क्या है। दूसरों के साथ बैठकर गप हाँकने की जिनको लत पड़ जाती है, उन्हें ताश, शतरंज, मदिरा आदि का धीरे-धीरे चस्का पड़ जाता है। परंतु संगति की तलाश में मारे-मारे फिरना, यह प्रकट करता है कि तुम पत्नी से बढ़कर किसी और चीज़ के लिये तड़प रहे हो; यह बात उसे अवश्य चुभेगी। यह उस पर बड़ा भारी दोषारोप है। इससे डाह की नींव पड़नी अवश्यंभावी है।

यों तो प्रत्येक अवस्था में तुम्हें पत्नी के साथ दया का व्यवहार करना चाहिए, परंतु उसकी बीमारी में तो यह विशेष रूप से आवश्यक है। हमें आशा है कि हमारे पाठकों में कोई भी ऐसा पति नहीं, जो रोग के कारण पत्नी के जीवन को संकट में देखकर, उसके लिये चिंतित

न हो, यद्यपि कभी-कभी इस प्रकार के नर-पिशाच दृष्टि-गोचर हो जाते हैं। परंतु इस नृशंसता से बहुत दर्जे कम, एक और प्रकार का अपराध प्रायः पुरुष किया करते हैं। जब पुरुष बीमार होता है, तो उसके प्रति स्त्री की थोड़ी-सी भी उपेक्षा से वह बहुत दुःख अनुभव करता है। फिर पुरुषों की अपेक्षा, स्त्रियों का हृदय बहुत अधिक सूक्ष्म और शीघ्रग्राही होता है। अतएव अपनी बीमारी में स्त्रियों को, उपेक्षा से, विशेषतः जब उपेक्षा करनेवाला पति हो, कितना भारी मनस्ताप होता होगा? इसका उत्तर पाठक अपने हृदय से पूछें। हम इसके लिये निष्फल यत्न नहीं करना चाहते। अब यदि आपका हृदय कहता है कि आपके उपेक्षा करने से स्त्री के हृदय पर भारी चोट लगती है, तो हमें यह परामर्श देने की कोई आवश्यकता नहीं रहती कि पत्नी की बीमारी में पति जितनी सेवा-शुश्रूषा और वचन तथा कर्म से दया का व्यवहार करे, थोड़ा है। यही तुम्हारी परीक्षा का समय है; और निश्चय रक्खो कि उसके मन पर इस समय का संस्कार सच्चा और स्थायी संस्कार होगा; और यदि तुम अपने विषय में इस समय उस पर अच्छा संस्कार डालने में सफल हो गए फिर उसे तुम्हारे संबंध में कभी डाह या परस्त्रीगामी होने का संदेह करने की कम संभावना है।

पत्नी की बीमारी की दशा में जितना भी ख़र्च उसकी

चिकित्सा पर तुम कर सकते हो, निःसंकोच होकर करो। अपनी शक्ति-भर जो कुछ भी तुम उसके लिये कर सकते हो, उसके करने में उपेक्षा मत करो, क्योंकि यदि इस दशा में भी धन व्यय न किया, तो फिर ऐसे धन से लाभ ही क्या ? परंतु शेष सब बातों से बढ़कर, तुम्हारा स्वयं उसके रोग तथा आराम पर ध्यान देना है। यह बहु-मूल्य चीज़ है, यह दुखिया के घावों पर शांतिदायक मरहम है। जितना अधिक यह निर्व्याज प्रमाणित होगा, उतना ही अधिक इसका असर होगा। जो काम तुम स्वयं कर सकते हो, उसे दूसरे को मत करने दो; शरीर की सारी व्याधियों में मन का बड़ा संबंध रहता है; और इस बात को याद रक्खो कि चाहे कोई भी घटना हो, तुम्हें काफ़ी से अधिक बदला मिल जायगा। इस बात पर जितना भी ज़ोर दिया जाय, थोड़ा है; रोगी की शय्या में कोई प्रलोभन, कोई चारुता नहीं होती और स्त्रियां, इस बात को ख़ूब जानती हैं; ऐसी अवस्था में, वे तुम्हारे प्रत्येक शब्द और प्रत्येक दृष्टि को ध्यान-पूर्वक देखती हैं, यही समय है, जब या तो आयु-भर के लिये उनको विश्वास प्राप्त हो जाता है या उनका संदेह भड़क उठता है।

इस प्रसंग में हम उन पतियों के प्रति घृणा प्रकट किए विना नहीं रह सकते, जो स्त्रियों के इस डाह को उपहास का विषय समझते हैं ; यह बात निश्चित है कि पुरुष का

व्यभिचारी होना, पत्नी के व्यभिचारिणी होने की अपेक्षा कम गर्ह्य है, परंतु फिर भी क्या विवाह के समय में की हुई प्रतिज्ञाएँ कुछ भी नहीं ? क्या अग्नि-रूप परमेश्वर तथा जनता के सामने गंभीरता-पूर्वक दिए हुए वचन कुछ नहीं ? जिसको धर्मपत्नी बनाया है, क्या उस अबला के साथ वचन-भंग करने में कुछ लज्जा नहीं ? परंतु इन सब बातों को छोड़कर भी, इसमें क्रूरता है। पति के पर-स्त्री-गामी होने से स्त्री के हृदय में कटार चल जाती है। यद्यपि क़ानून की दृष्टि में पति का व्यभिचार नर-हत्या के बराबर अपराध नहीं, तो भी तर्क और नैतिक न्याय की दृष्टि में बहुत थोड़े अपराध इस अपराध से अधिक कठोर हैं। कहा जा सकता है कि पुरुष, काम-वासना के वशीभूत होकर, यह पाप करता है, इसलिये क्षंतव्य है। परंतु इस प्रकार मनुष्य का प्रत्येक अपराध किसी-न-किसी मनोविकार के वशीभूत होने से किया जाता है। यह ठीक है कि प्रलोभन बहुत भारी होता है, परंतु मनुष्य जब चोरी करता है, तब क्या; या ठगता है, तब क्या प्रलोभन प्रबल नहीं होता ? सारांश यह कि ऐसे अन्याय-युक्त और ऐसे क्रूर काम के लिये कोई बहाना नहीं हो सकता। इस कुकर्म से चरित्र पर कलंक का टीका लग जाने से अनेक मनुष्यों का रोज़गार नष्ट हो जाता है। इसका बहुत ही छोटा परिणाम यह होता है कि समस्त

परिवार दुःखी और झगड़ालू बन जाता है, बच्चे पिता से घृणा करने लगते हैं; और यह उनके सामने एक ऐसा उदाहरण उपस्थित करता है, जिसके अंतिम परिणामों के विचार से ही पिता को काँप उठना चाहिए। ऐसी दशा में बच्चे माता के साथ मिल जायँगे। उन्हें मिलना भी उसी के साथ चाहिए। उसी के साथ अत्याचार हुआ है। जो अप्रतिष्ठा उसकी हुई है, उसका कुछ अंश उन पर भी लागू होता है; वे अपने साथ होनेवाले अन्याय का अनुभव करते हैं; और यदि ऐसे पुरुष को जब उसके बाल पक गए हैं, टाँगें लड़खड़ा रही हैं और वाणी के साथ सीटी का-सा सायँ-सायँ शब्द निकलता है, कोई आश्रय देनेवाला दिखाई नहीं देता, तो उसे न्याय करते हुए यह स्वीकार करना चाहिए कि मुझे अब विलासिता के वशीभूत होकर, उस देवी के साथ दुष्टता करने का उचित फल मिल रहा है, जिसके साथ आजीवन प्रेम में सच्चा रहने की प्रतिज्ञा मैंने विवाह-मंडप में की थी।

व्यभिचार यद्यपि पति में बुरा है, परंतु पत्नी में तो यह उससे भी कई गुना अधिक हानिकारक है। कई लोग, विशेषतः आजकल के पढ़े-लिखे, कहा करते हैं कि व्यभिचार, व्यभिचार ही है, चाहे यह पुरुष में हो, चाहे स्त्री में, इसलिये व्यभिचारिणी स्त्री व्यभिचारी पुरुष से अपराधिनी नहीं। परंतु युक्ति

कहती है कि स्त्री के व्यभिचारिणी हो जाने से समाज की कहीं अधिक हानि होती है। सिद्धांतरूप से यह ठीक है कि दोनों का अपराध बराबर है, परंतु उनके परिणामों की दृष्टि से उनमें भारी भेद है। दोनों पवित्र प्रतिज्ञा का भंग करते हैं। परंतु बड़ा अंतर यह है कि उस प्रतिज्ञा को भंग करके पति केवल अपनी पत्नी तथा परिवार के लिये अप्रतिष्ठा का कारण बनता है, परंतु पत्नी उस प्रतिज्ञा को तोड़ने से हराम के बच्चे पैदा करती है और ये बनावटी बच्चे उसके असली बच्चों की संपत्ति में से हिस्सा बँटाकर उनको उनके धन से वंचित करते हैं। इसलिये घोर अप्रतिष्ठा के अतिरिक्त इस दशा में अन्याय भी बहुत अधिक लोगों के साथ होता है।

अच्छा, तो स्त्री के व्यभिचारिणी होने से लज्जा अधिक क्यों होती है? क्योंकि इसमें पवित्रता का पूर्ण अभाव होता है, या मन की मलिनता और स्थूलता होती है। यहाँ प्रत्येक बात चरित्र की नीचता को प्रकट करती है। बहुत थोड़े अपवादों को छोड़कर स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा प्रायः अधिक लज्जाशील और सभ्य होती हैं; और उनको होना भी चाहिए, प्रकृति उनको ऐसा स्वभाव बनाने का आदेश करती है, संसार के स्वभाव और रीति-रिवाज प्रकृति की इस आज्ञा को पुष्ट करते हैं, इसलिये जब वे यह पाप करती हैं, तो उनके प्रति विरक्ति

और घृणा उत्पन्न होती है। जिन लोगों में एक साथ कई स्त्रियाँ कर लेने की आज्ञा है, उनमें भी एक स्त्री को अनेक पति रखने की आज्ञा नहीं। वहाँ पुरुष के लिये कई स्त्रियाँ रखना असभ्यता नहीं समझी जाती, परंतु एक स्त्री के दो पति होने की कल्पना ही भयभीत कर देती है। पुराने समय में हिंदू विधवाएँ पति के शव के साथ जल मरती थीं, रंडुवों को अपनी स्त्री की लोथ के साथ जलकर मरने की रीति कभी भी प्रचलित नहीं थी। विधवाएँ इसलिये अपने को जला डालती थीं कि कहीं पति की मृत्यु के बाद उन्हें किसी दूसरे पुरुष के साथ सहवास करने का प्रलोभन वशीभूत न कर ले। यद्यपि यह पातिव्रत्य धर्म को उचित सीमा से भी अधिक बढ़ा देना है, फिर भी अपने माता-पिता, अपनी संतान और उन सबके मुख पर, जो उन्हें अपना समझते हैं, व्यभिचार के कारण कलंक का टीका लगाने की अपेक्षा तो स्त्रियों के लिये जलकर राख का ढेर हो जाना ही अच्छा ।

इन स्पष्ट और प्रबल कारणों से इस प्रकार का दोष पति की अपेक्षा पत्नी में बहुत अधिक भयानक है। एवं सभी सभ्य देशों के लोग इस निश्चित भेद को मानते हैं। व्यभिचार करनेवाले पुरुष को समाज से बहिष्कृत नहीं किया जाता, परंतु स्वैरिणी की जाती हैं। इसलिये कोई भी शुद्धाचारिणी स्त्री, चाहे वह विवाहित हो और

चाहे अविवाहित, किसी ऐसी स्त्री के साथ फिरकर अपने नाम को कलंकित करने का साहस नहीं करेगी, जो व्यभिचार आदि के कारण बदनाम है।

यदि पति का धर्म है कि वह दूसरी स्त्रियों को माता, बहन और बेटी समझकर परस्त्रीगमन न करे, यदि पत्नी-व्रत का त्याग करने से उसे ऊपर कहे भयानक कुफल भोगने पड़ेंगे, तो आप समझ सकते हैं कि पत्नी के लिये तो व्यभिचार के नाम से ही डरते रहने की कितनी अधिक आवश्यकता है! यदि इस संबंध में पुरुष के दुराचार से इतने निरपराध व्यक्तियों को लज्जित होना पड़ता है, तो पत्नी के दुराचारिणी होने से कितनी लज्जा, कितनी अप्रतिष्ठा और कितना दुःख उत्पन्न होता होगा! उसके मायकेवालों, ससुरालवालों, सारे संबंधियों और सखी-सहेलियों को उसकी अप्रतिष्ठा का भागी बनना पड़ता है। रहे उसके बच्चे! वह उनके सामने कैसे प्रायश्चित्त कर सकती है? उनको अपने माता-पिता का सम्मान करने की आज्ञा है, परंतु ऐसी माता का नहीं जो इसके विपरीत उनसे घृणा और शाप के सिवा और कुछ भी पाने की अधिकारिणी नहीं। उसी ने प्रकृति के संबंधों को तोड़ा है, उसी ने अपनी संतान को अनादृत किया है। उसी ने उन पर कलंक का टीका लगाया है जो कभी उसके शरीर के अंश थे, प्रकृति उसे अपने

प्रभाव-क्षेत्र से बाहर निकाल देती है और जिनको उसने पहले अपने प्राणों के समान प्यार करने का आदेश दे रक्खा था, उन्हीं का उसे न्याय-संगत रीति से घृणा-पात्र बना देती है।

परंतु पति की अपेक्षा पत्नी में व्यभिचार का दोष बहुत अधिक भयानक समझा जाता है और इसका दंड भी अपेक्षा-कृत बहुत कठोर है। इसलिये स्त्री में इसका संदेह करने या दोषारोपण करने में बहुत अधिक सावधानी से काम लेने की आवश्यकता है। पुरुषों को ऐसा संदेह करने में शीघ्रता कभी नहीं करनी चाहिए। संदेह करने से पूर्व उनके पास स्पष्ट प्रमाण ज़रूर होना चाहिए। व्यर्थ ही संदेह करने का स्वभाव भारी विपत्ति का कारण हो जाता है। ऐसे शक्की तबियतवाले पति से बढ़कर कुत्सित जीव और दूसरा नहीं। ऐसे पुरुष के साथ विवाह-बंधन में जकड़ी जाने की अपेक्षा तो स्त्री मज़दूरी करके पेट भर लेना या राँड़ रहना ही अधिक पसंद करेगी। ऐसे पति के साथ कभी शांति नहीं रह सकती, और बच्चे तो झूठे दोष को भी सच्चा ही समझने लगते हैं। जब पत्नी पति पर संदेह करती है, तो वह उस पर पत्नी-व्रत और विवाह-समय की पवित्र प्रतिज्ञा को भंग करने का दोषारोपण करती है। परंतु पति के पत्नी पर शंका करने का अर्थ यह है कि वह हराम के बच्चे

पैदा करके उसकी औरस संतान के जन्म-सिद्ध अधिकार को छीननेवाले डाकू पैदा करना चाहती है, और इसके अतिरिक्त इसमें मलिनता, स्थूलता और वेश्या-वृत्ति का भी आरोप होता है। वह उस पर अन्याय और निर्दयता का ही दोष लगाती है; परंतु वह उस पर ऐसी तोहमत लगाता है, जो उसे समाज से बहिष्कृत कर देती है, जो जीवन भर के लिये उसको स्त्रियों के पवित्र आदर्श से गिरा देती है, जो उसके मरते दम तक उस पर कलंक का टीका लगाए रखती है।

इसलिये पति को अपनी स्त्री में दोष का विचार तक लाने के लिये भी कभी जल्दी से काम नहीं लेना चाहिए। दोष लगाने की ओर थोड़ा-सा पग उठाने के पहले उसे इस संबंध में अपना पूरा-पूरा निश्चय कर लेना चाहिए। परंतु यदि दुर्भाग्य से उसे इसका निश्चित प्रमाण मिल जाय, तो फिर उसे किसी भी विचार से एक मुहूर्त के लिये भी उस स्त्री का सहवास नहीं करना चाहिए। शंकाशील पति इसलिये बुरा नहीं कि उनके पास शंका के लिये कारण होते हैं, वरन् इसलिये कि उनके पास हेतु नहीं होते और प्रायः अवस्था ऐसी ही होती है। जब उनके पास हेतु हों, तब उनकी अपनी प्रतिष्ठा ही यह चाहती है कि वे स्त्री को इस प्रकार अलग कर दें जिस प्रकार घट्ठे या नासूर को काटकर शरीर से अलग कर दिया जाता है। शंका-

शीलता स्वयं निंदनीय नहीं, बरन् सदा शंका की अवस्था में रहना कुत्सित है। उदाहरणार्थ शत्रु के पंजे में फँस-कर दास रहना अपमान की बात नहीं, अप्रतिष्ठा वहीं आरम्भ होती है जहाँ तुम स्वेच्छा-पूर्वक दास रहते हो। यह उस मुहूर्त से आरम्भ होती है जब तुम दासता से बच सकते हो, पर बचते नहीं। अपनी स्त्री पर अन्याय-पूर्वक शंका करना निंद्य है, परंतु यह जानते हुए भी कि वह पतिव्रता नहीं उसका सहवास करना कलंक है।

कहा जायगा कि जब तक मनुष्य इस क़दर अमीर न हो कि स्त्री को गुज़ारा देकर अलग कर सके, क़ानून उसको उसके साथ रहने के लिये विवश करता है। परंतु क़ानून तुमको उस स्त्री के साथ उसी देश में रहने के लिये मजबूर नहीं करता और यदि पुरुष के पास ऐसी बला से छूटने का और कोई साधन न हो, तो पर्वतों और समुद्रों को पार करना क्या है? शारीरिक सुख के जीवन को छोड़कर श्रम के जीवन को ग्रहण करना क्या है? ये और ऐसी ही दूसरी विपत्तियाँ क्या हैं? एक व्यभिचारिणी स्त्री के साथ एक ही घर में रहने और उसे अपनी पत्नी कहने की सदा मौजूद रहनेवाली लज्जा, निंदा, नीचता और कलंक के सामने स्वयं मृत्यु भी क्या है? परंतु बच्चों का क्या बनेगा? निश्चय ही उन्हें उस वेश्या से अलग कर लेना चाहिए। उनके प्रति तुम्हारा यह कर्तव्य है;

जितनी जल्दी वे उसे भूल जायँ उतना ही अच्छा है और जितना अधिक वे उससे दूर होंगे उतनी ही जल्दी वे उसे भूलेंगे। एक पुंश्चली के साथ रहने के लिये कोई भी बहाना नहीं हो सकता। ऐसे गंदे कलंक की दशा में से अपना छुटकारा कराने से पुरुष को कोई भी असुविधा, कोई भी हानि, कोई भी कष्ट रोकने न पावे और बच्चों को ऐसी दशा में रहने देना एक ऐसा अपराध है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसे जीवन के सामने तो जेल स्वर्ग है, और जो कष्टों से डरकर इस दशा में पड़ा रह सकता है, वह निगोड़ा पुरुष नाम का अधिकारी नहीं।

परंतु उपर्युक्त बातों की तभी आशा हो सकती है, जब पति अपने कर्तव्य में पूरा और सच्चा हो। इतना ही नहीं कि वह पर-स्त्री-गामी न हो, परंतु वह कोई भी ऐसी चेष्टा न करे, जिससे पत्नी को असती बनाने का प्रलोभन मिलता हो। बाल-विवाह, जात-पाँत के बंधनों के कारण अनमेल-विवाह, वृद्ध-विवाह, धन के लालच से किए हुए विवाह, स्त्री के पतिव्रता रहने में घोर रूप से बाधक हैं। ऐसे विवाहों के रहते पत्नी के सत्पथ से भ्रष्ट हो जाने पर उसे कठोर दंड देना घोर अन्याय है। यदि पति पत्नी के साथ रूखा बर्ताव करता है, अपने जीवन में किसी नियम पर स्थिर नहीं रहता, यदि उसने स्त्री पर यह सिद्ध कर दिया है कि मुझे घर में आनंद नहीं मिलता, यदि वह

घर में गिरे हुए चरित्र के साथियों को लाता है, यदि वह नाटक, सिनेमा और रास-रंग की महफ़िलों में समय व्यतीत करता है, यदि उसे चारयारी में आनंद लेने की लत पड़ गई है, यदि उसने पर-स्त्रियों के साथ हँसी-मज़ाक़ करने का स्वभाव डाल लिया है, तो सारा दोष उसका अपना है, उसे इनके कुफल अवश्य भोगने चाहिए; उसे स्त्री को दंड देने का कोई अधिकार नहीं; वास्तव में उसी ने स्त्री को पाप-पंक में ढकेला है। इस संबंध में ईश्वर के और मनुष्य के क़ानूनों ने उसे पूर्ण अधिकार दे रक्खा है। उस अधिकार को अपनी तथा अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा के लिये उपयोग में लाना उसका अपना काम है। यदि वह उसके उपयोग में उपेक्षा करता है, तो इसका फल उसे भोगना चाहिए। जहाँ तक हमारा अनुभव है, बीस में उन्नीस दशाओं में स्त्री के व्यभिचारिणी होने का मूल-कारण पति ही होता है। पति की मूर्खता या दुश्चरित्रता पत्नी के लिये व्यभिचारिणी हो जाने का कोई बहाना नहीं हो सकता। पत्नी को तो स्वभाव से ही ऐसे पाप से काँपना चाहिए। परंतु इतनी बात अवश्य है कि पति पत्नी को दंड देने के अधिकार से वंचित हो जाता है। स्त्री के संबंधी, उसकी संतान और सारा संसार न्याय-पूर्वक उससे घृणा करेगा; परंतु दुराचारी पति को बोलने का कोई अधिकार नहीं।

पर-पुरुष के साथ स्त्री का हँसना, खेलना अथवा क्रीड़ा करना किसी भी दशा में अच्छा नहीं। कुछ लोग इसे निष्पाप दिल्लगी भले ही समझें; परंतु इसका परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। इस दिल्लगी का अर्थ स्त्री की स्वाभाविक लज्जा के कड़े नियमों का उल्लंघन या उपेक्षा के सिवा और क्या हो सकता है। हम नहीं समझते, यह निष्पाप कैसे हो सकता है। यह अपराध भले ही न हो, फिर भी यह निष्पाप नहीं। जो पुरुष अपनी स्त्री को ऐसी दिल्लगी से नहीं रोक सकता, वह उसका पति बनने के योग्य नहीं। प्रश्न हो सकता है कि यदि कोई मित्र घर आकर पत्नी के साथ मीठी-मीठी बातें और उसकी चापलूसी करे, तो क्या पति उसी समय पत्नी को उसके साथ बात करने से रोक दे? इसका उत्तर यही है कि पत्नी को ऐसी शिक्षा मिली होनी चाहिए कि वह अपने वर्ताव से उस पुरुष को यह दिखला दे कि तुम्हारी चापलूसी का यहाँ कुछ असर नहीं। फिर वह अपने आप झख मारकर पीछे हट जायगा *।

पुरुष अपने जीवन में सुखी और सफल तभी हो सकता है, जब उसका मन इस प्रकार की सभी चिंताओं

* अपनी स्त्री को दुष्ट मित्रों से बचाने के उपाय के लिये देखो मेरी पुस्तक रति-विज्ञान (साहित्य-सदन, लाहौर) 'स्वदार-रक्षा'-नामक प्रकरण।—लेखक

से सर्वथा मुक्त होगा। अतएव इन चिंताओं को रोकने के लिये जितना भी उपाय किया जाय, थोड़ा है। इसलिये हम फिर कहते हैं कि इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि पति-पत्नी यथासंभव अपने घर पर ही अपना अवकाश का समय बिताया करें; दूसरों की संगति में आनंद पाने की लालसा से भटकते न फिरा करें। पति का अपने घर में बहुत-से मित्रों को लेकर बैठे रहना भी अच्छा नहीं। उसका समय पत्नी के सहवास में बीतना चाहिए। यदि वे बाक़ी लोगों की अपेक्षा एक दूसरे की संगति को अधिक पसंद नहीं करते; यदि उनमें से कोई एक दूसरे की संगति से ऊब रहा है; यदि वे किसी आवश्यक कार्य के कारण एक दूसरे से जुदा हो जाने पर दुबारा मिलने के समय का प्रसन्नता-पूर्वक विचार नहीं करते, तो यह बुरा शकुन है। जो पति पहले से ही इन बातों का ध्यान रक्खेगा, उसकी पत्नी कभी व्यभिचार के पंक में लिप्त न होगी। वह उसे सदा सबसे अधिक बुद्धिमान् मनुष्य समझेगी और जो कोई उसके पति की बुद्धिमत्ता या योग्यता पर संदेह प्रकट करेगा, उसे वह कभी क्षमा नहीं करेगी।

आप कहेंगे कि यदि गृहस्थ में सुखी रहने, नई-नई विपत्ति और विनाश से बचे रहने के लिये उक्त उपायों और इतनी चिंताओं का प्रयोजन है, जिनमें से किसी एक

में भी तनिक-सी त्रुटि रह जाने से मनुष्य को इतना दुःख उठाना पड़ता है, तो इससे अविवाहित रहना ही अच्छा है। परंतु यह बात ठीक नहीं। बच्चे तो अवश्य उत्पन्न होंगे, क्योंकि मनुष्य अपनी काम-वासना को रोक नहीं सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री-पुरुष स्वेच्छानुसार संभोग करेंगे या वे किसी विशेष काल के लिये इकट्ठे रहेंगे, और जब उनका आनंद जाता रहेगा, तो वे एक दूसरे को छोड़ देंगे। इसलिये उनका यह सहवास अल्पकालिक और प्रेम-शून्य होगा, क्योंकि इसका समय अनिश्चित होगा। इसलिये पिता शब्द के साथ जो चिरस्थायी और सुखद बंधन लगे हुए हैं, उनका विचार करके, यह आवश्यक जान पड़ता है कि पिता बनने के लिये पहले तुम पति बनो। संसार में बहुत थोड़े ऐसे मनुष्य हैं, जो पहले या पीछे पिता बनने की लालसा नहीं रखते। यदि यह कहा जाय कि विवाह सारी आयु के लिये नहीं होना चाहिए, वरन् इसका काल पति और पत्नी दोनों की पारस्परिक इच्छा के अनुसार होना चाहिए, तो इसका उत्तर यह है कि यह वैवाहिक काल क्वचित् ही लंबा होगा। प्रत्येक छोटे-से झगड़े का परिणाम जुदाई होगा ; ज़रा-सी बात पर पति-पत्नी अलग-अलग हो जायँगे। यह जानकर कि विवाह-बंधन जीवन-भर के लिये है, वे अनेक झगड़ों से बचते हैं ; इससे क्रोध भी आरंभ में ही दब जाता है।

एक घोड़े को रस्सा डालकर, एक ऐसे कमज़ोर बाड़ेवाले खेत में चरने के लिये छोड़ दीजिए, जिसके पास ही दूसरे खेत में लुभावनी सुंदर घास लहलहा रही हो, वह सदा उस खेत से बाहर निकलने का यत्न करता रहेगा। परंतु खेत के गिर्द पक्की दीवार बना दीजिए, तो वह उसी घास पर संतुष्ट रहकर अपना समय चरने और सोने में व्यतीत करेगा। इसके अतिरिक्त, नियम-पूर्वक विवाह-बंधन न होने से 'परिवार' नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती ; सब कुछ गड़बड़ और अवर्णनीय मिश्रण होगा ; भाई और बहन के नामों का कुछ भी अर्थ न होगा। इसलिये विवाह का होना आवश्यक है।

इसमें संदेह नहीं कि गृहस्थ बनने में बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ अपने ऊपर लेनी पड़ती हैं ; बहुत-सी चिंताएँ दबाए रहती हैं, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि अविवाहित पुरुष को विवाहित से कम चिंताएँ होती हैं। वरन् अनभव से पता लगता है कि अविवाहितों की अपेक्षा विवाहित अधिक लंबी आयु भोगते हैं। रोगी होने पर जिस प्रकार पत्नी सेवा करती है, वैसी सैकड़ों नौकर और नर्सें मिलकर नहीं कर सकतीं। वह किसी लोभ से नहीं, वरन् प्रेम के कारण सेवा करती, और रातों जागती है। उसकी देखरेख से रोगी चंगा भी अपेक्षा-कृत जल्दी होता है। इसीलिये कहा भी है—बिन घरनी घर भूत का डेरा।

नौकर रखकर जितना अकेले अविवाहित पुरुष का खर्च होता है, उससे भी कम में पत्नी सारे परिवार का निर्वाह कर देती है।

फिर अकेले पुरुष का जीवन ही क्या है! जब तक वह घर से बाहर न निकले या बाहर से कोई घर में न आए, उसके साथ कोई बात करनेवाला ही नहीं; कोई मित्र नहीं, जिसके साथ बैठकर रात को दिन की थकावट दूर हो जाय। कोई भी ऐसा नहीं, जो तुम्हारे दुःख और सुख में भाग ले; कोई भी ऐसी आत्मा नहीं, जिसे तुम्हारे कल्याण की चिंता हो; तुम्हारे इर्द-गिर्द जितने हैं, सब अपनी-अपनी चिंता में हैं, तुम्हारी चिंता किसी को नहीं; उदासी और विषाद के समय में कोई तुम्हें धीरज बँधाने और प्रसन्न करनेवाला नहीं; सारांश यह कि कोई तुम्हें प्रेम करनेवाला नहीं, और जीवन के अंत तक किसी ऐसे व्यक्ति के मिलने की आशा भी नहीं। माता-पिता और भाइयों का संबंध इससे बिलकुल भिन्न प्रकार का है। जीवनसंगिनी भार्या के शुद्ध प्रेम की उपमा संसार में नहीं।

इसके अतिरिक्त स्त्री जीवन के सुधारने में बड़ी सहायक होती है। संतान और पत्नी के लिये कमाने की चिंता से अनेक आलसी पुरुष उद्यमी और चुस्त हो गए हैं; अनेक मूढ़ और अरसिक पुरुष पत्नी के प्रेम के अंकुश से यदि

कुशाग्रबुद्धि नहीं, तो कम-से-कम दौड़-धूप करनेवाले अवश्य बन गए हैं। विवाहित पुरुष को घर की कुछ चिंता नहीं रहती। घर का सारा काम उसकी सुभार्या सँभालकर उसे इस संबंध में चिंता-रहित कर देती है। इसलिये वह अपने कारबार में अधिक अच्छी तरह ध्यान दे सकता है। मैंने अपने ही संबंध में देखा कि विधुर होने से पहले जितना अधिक काम मैं कर लेता था, उतना अब नहीं कर सकता। उस समय मैं रोगी भी बहुत कम होता था। मैं तो समझता हूँ कि स्त्री न केवल पुरुष के धर्म की, वरन् उसके स्वास्थ्य की भी रक्षिका है।

पति का यह धर्म है कि स्त्री के लिये अपनी संपत्ति का कुछ नक़द भाग अवश्य वसीयत कर जाय, ताकि पति की मृत्यु के बाद उसे दूसरों का मुंह न ताकना पड़े। कुछ लोग कहेंगे कि ऐसा करने से डर है कि विधवा धन लेकर दूसरी जगह न चली जाय। मरते हुए के मन में इस प्रकार के भय होना बड़े दुर्भाग्य की बात है। जो माता विधवा हो जाने पर पुनर्विवाह करके अपनी संतान के सुख को भय में डाल देती है, उसके इस कुकर्म के लिये कोई भी क्षमा-याचना नहीं हो सकती। इसमें संदेह नहीं कि क़ानून इसकी आज्ञा देता है, परंतु क़ानून के शब्दों से परे भी कोई चीज़ है। यद्यपि विधवा के लिये दूसरा पति करना क़ानून की दृष्टि से वैसा ही धर्म-संगत

है, जैसा कि रँड़वे के लिये दूसरी स्त्री कर लेना, तो भी नीति और विवेक की दृष्टि में दोनों की अवस्थाओं में भारी अंतर ह। जिस प्रकार पत्नी का जारिणी होना पति के व्यभिचारी होने से अधिक पाप है, उसी प्रकार स्त्री का पुनर्विवाह करना पुरुष के पुनर्विवाह से अधिक भद्दा और निकृष्ट कर्म है। इससे उसमें उस पवित्रता, उस सहज लज्जा की भारी कमी प्रकट होती है, जो स्त्री-जाति की सबसे बड़ी चारुता और मोहिनी शक्ति है। हमें पुरुष के मुख से 'मेरी पहली स्त्री' यह शब्द सुनना विशेषत: दूसरी की विद्यमानता में अच्छा नहीं लगता, परंतु किसी स्त्री के मुख से चाहे वह कितनी ही सुंदरी और अच्छी क्यों न हो 'मेरा पहला पति' यह शब्द निकलते ही सुननेवाले की दृष्टि में उसे एकदम गिरा देता है; क्योंकि अंत को इसका अर्थ यही निकलता है कि उसने दूसरी बार वह आत्म-समर्पण किया है, जो अतीव तीव्र अनुराग ही किसी पवित्र और शुद्धाचारिणी स्त्री से करा सकता है।

इस विधवा का कोई रक्षक नहीं था, यह भूखी मरती थी, यह बच्चों का भरण-पोषण न कर सकती थी, इस प्रकार के सब हेतुओं का कुछ भी मूल्य नहीं। क्या वह इन चीज़ों की प्राप्ति के लिये अपना शरीर दूसरे को समर्पित करती है! यदि हम इन हेतुओं को प्रबल समझ लें, तो फिर हमें वेश्याओं और रखेलियों को बुरा क्यों कहना

चाहिए ? वे भी कह सकती हैं कि भूख और दरिद्रता से तंग आकर ही हम यह कुकर्म करने पर विवश हैं। इन दुखियाओं के हेतुओं को कोई नहीं सुनता, चाहे वे भीख माँगने पर ही विवश क्यों न हों, कोई उनकी क्षमा-याचना को स्वीकार नहीं करता। उनके लिये सबकी राय यही है कि "तुम भले ही भूखी मरो, नंगी फिरो, कष्ट उठाओ, रास्ते में पड़ी-पड़ी मर जाओ; परंतु स्त्री-जाति की अप्रतिष्ठा के लिये अपने शरीर को दूसरे पुरुष के अर्पण मत करो।" परंतु क्या हम अन्याय किए विना उनके लिये यह व्यवस्था दे सकते हैं; और साथ ही इस वात को उचित, युक्तियुक्त और विनीत भाव से कह सकते हैं कि विधवाएँ अपने सांसारिक लाभ के लिये, सुखभोग के लिये या किसी दूसरे विचार से अपने शरीरों को अर्पण करें ?

हमारी यह टिप्पणी दस-दस, वारह-वारह वर्ष की बच्चियों के लिये नहीं जिनको यह भी मालूम नहीं कि सुहाग किस चिड़िया का नाम है। जिनको तुम बचपन में अपनी इच्छा से ब्याह देते हो, उनको आयु-पर्यंत बलात् विधवा रहने पर विवश करना घोर हानि का कारण है। या तो वालविवाह बंद होने चाहिए या फिर इन निरपराध बच्चियों के भी पुनर्विवाह का प्रबंध करके समाज को घोर पतन से बचाना चाहिए।

हमें आशा है कि इस लेख के पाठक ऐसी बुराइयों से सदा अपने को बचाते रहेंगे; वे उन दुर्व्यसनों से सदा दूर भागेंगे, जिनके परिणाम ऐसे घातक होते हैं; वे किसी देवी का पाणिग्रहण करने के पहले गृहस्थी के कर्तव्यों पर भली भाँति विचार कर लेंगे; वे आरंभ से ही इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि उनसे अज्ञान में भी कोई ऐसी बात न होने पाए जिससे उस अबला को दुःख हो, जिसने प्रेम के कारण उनको अपने शरीर पर पूर्ण अधिकार दे दिया है; और वे इस सचाई को कभी न भूलेंगे कि आज तक बुरा पति कभी भी गुणी मनुष्य नहीं हुआ।

स्त्री और सौंदर्य



सार में कौन ऐसा प्राणी है, जिसे सौंदर्य प्रभावित नहीं करता। सुंदर रंग-बिरंगे फूलों पर अलि मुग्ध होता है, मोर के सुंदर पंखों को देखकर मोरनी रीझती है, चंद्रमा के दर्शन से चकोर नाचने लगता है और सुंदर बालक को सभी प्यार करते हैं। जीवन के सोपान में जितना उच्च कोई जीव है, उतना ही अधिक वह सौंदर्य द्वारा प्रभावित होता है। किसी अँगरेज़ कवि का कथन है कि सुंदर वस्तु से सदा आनंद मिलता है, और उसका कथन अधिकांश में सत्य ही है। मनुष्य, व्यष्टि रूप से ही नहीं, समष्टि रूप से भी, सदा सौंदर्य की चाहना करता रहा है। यूनानियों की जाति-की-जाति ही

सौंदर्य की उपासक थी। वे अपने देश में कोई भी कुरूप वस्तु नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने अपने शारीरिक सौंदर्य के विकास के लिये विशेष प्रयत्न किया था। फलतः उनकी जाति सौंदर्य की दृष्टि से आदर्श-स्वरूप बन गई थी। और तो और, स्वयं वेद में हमें सौंदर्य-प्राप्ति के लिये प्रार्थनाएँ मिलती हैं।

स्त्री में सौंदर्य-प्रेम स्वाभाविक है। जहाँ वह आप सुंदर बनना चाहती है, वहाँ दूसरों को भी सुंदर देखना चाहती है। वह सौंदर्य-प्राप्ति के लिये नाना प्रकार के कष्ट सहर्ष सहन कर लेती है। प्रायः देखा गया है कि सुंदर स्त्री की ओर स्त्रियाँ अनायास खिंच आती हैं। वे उसे विशेष सम्मान की दृष्टि से देखती हैं। योरप की गौरांग रमणियाँ कलेवर की स्थूलता से बहुत घबराती हैं। अतएव वे मुटापे को दूर करने के लिये कई-कई दिन उपवास करती हैं। कमर पतली रहे, इस उद्देश्य से उन्हें कड़ा कोर्सट पहनने में कोई कष्ट नहीं होता। ऊँची एड़ी का बूट पहनने से मोच आने का डर भले ही हो; पर वे सुंदरता के लिये इसे अवश्य पहनेंगी। रंगत को निखारने के लिये अनेक कृष्ण-वर्ण भारतीय युवतियाँ उपवास करती, और मिट्टी तक खाती देखी गई हैं। गुदना गोदने में कितना कष्ट होता है! परंतु सौंदर्य के लिये वे सब चुपचाप सहन कर लेती हैं।



स्त्री में सौंदर्य-प्रेम स्वाभाविक है।

पृष्ठ-संख्या ६२

सच्चा सौंदर्य विधाता की एक अमूल्य कृपा है। उसके लिये स्रष्टा को जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। इसके लिये इतर-फुलेल और पोमेड-पाउडर की उतनी आवश्यकता नहीं। शरीर और मन के नीरोग होने से ही मनुष्य सच्चे अर्थों में सुंदर बनता है। एक काली स्त्री भी सुंदरी और एक गोरी भी कुरूपा हो सकती है। फूल का सौंदर्य किस चीज़ में है? उसकी पत्तियों के एक विशेष संगठन में ही सुंदरता है। उन पत्तियों को तोड़कर अलग-अलग कर दीजिए, सब सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के अंगों के सुडौलपन में ही सुंदरता है। जिसके शरीर में रक्त नहीं, जिसका मुखमंडल रोग के कारण पीला पड़ गया है, उसे सुंदर नहीं कहा जा सकता, चाहे उसने कितना ही शृंगार क्यों न कर रक्खा हो।

सौंदर्य का मुख्य उद्देश्य आकर्षण है। फूल को प्रकृति ने इसलिये सुंदर बनाया है कि उससे भौंरे उसकी ओर आकृष्ट होकर नर-पुष्प की धूल को मादा-पुष्प के बीज-कोष में पहुँचाने में सहायता दें। मोरनी के लिये मोर के पंख और मेंढकी के लिये मेंढक की टर-टर इसीलिये आकर्षक है कि उससे सृष्टि में संतानोत्पत्ति का कार्य निर्विघ्नता-पूर्वक चलता रहे। इसी प्रकार प्रत्येक पुरुष प्रत्येक सुंदर स्त्री को देखकर आकर्षित होता है, और प्रत्येक स्त्री प्रत्येक कांति-युक्त पुरुष को देखकर उसकी

कामना करने लगती है। काम-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों का ऐसा ही मत है। युवतियाँ गहने, कपड़े और बनाव-चुनाव से जो कुछ भी अपनी सजावट करती हैं, उसमें उनका भीतरी भाव अपनी आकर्षणशीलता को बढ़ाना होता है। विलक्षणता में ही सदा आकर्षण होता है। ग्रामीण स्त्रियाँ प्रायः देसी जूता पहनती हैं। यदि कोई स्त्री उनमें स्लिपर या बूट पहनकर चली जाय, तो वह बड़ी विलक्षण प्रतीत होगी, और सभी उसे शौक़ीन समझने लगेंगी। इसके विपरीत, नगरों में जहाँ प्रायः प्रत्येक स्त्री बूट पहनती है, उस "शौक़ीन" स्त्री की ओर संभवतः किसी का ध्यान भी न जायगा। अफ़्रीका और आस्ट्रे-लिया की उन आदिम जातियों में, जो सदा नग्न रहती हैं, नंगा रहना एक स्वाभाविक बात है। वहाँ जो स्त्री अपने गुह्य अंगों को कपड़े से ढकती है, वह विलक्षण प्रतीत होने से आकर्षण का कारण बन जाती है। इसके विपरीत हमारे यहाँ, जहाँ सभी लोग शरीर को ढककर रखते हैं, नग्न शरीर अधिक आकर्षणकारी बन जाता है।

एक बड़े प्राणिशास्त्र-वेत्ता का कथन है कि घूँघट और बुर्क़े में छिपी हुई सूरतें नग्न की अपेक्षा काम-वासना को अधिक उत्तेजित करती हैं। श्रीयुत सनो का कहना है कि बिलकुल नंगी फिरनेवाली जंगली स्त्रियों में रहते हुए विषय-वासना उतनी नहीं भड़कती, जितनी योरप के बड़े-

बड़े नगरों की फ़ैशनेबल पोशाकें पहननेवाली रमणियों के साथ मिलने-जुलने से। बुर्क़ा, जो अब लज्जा और धर्म का एक अंग समझा जाने लगा है, आदि में स्त्री के आकर्षण को बढ़ाने के लिये ही जारी हुआ प्रतीत होता है।

भिन्न-भिन्न जातियों में सौंदर्य की कल्पना भिन्न-भिन्न है। आस्ट्रेलिया के जंगली लोग हमारी लंबी नाकों को हँसते हैं। कोचीन-चायना के लोग सफ़ेद दाँतों को अच्छा नहीं समझते। कई जंगली स्त्रियाँ घुटनों के नीचे टाँगों को बाँधकर उन्हें सुजा लेती हैं। इसे वे सुंदरता का एक अंग समझती हैं। चीनी लोगों को अपनी स्त्रियों के छोटे-छोटे कुडौल पैर ही सुंदर लगते हैं। प्रत्येक जाति में सौंदर्य की कल्पना प्रायः उस जाति के आदर्श के नमूने के अनुरूप होती है। सामान्यतः पुरुष में पट्ठों की मज़बूती और स्त्री में चेहरे का भरा हुआ होना सुंदरता समझा जाता है। आफ़्रिका के हाटंटाट लोग स्त्री का सौंदर्य इसी में समझते हैं कि उनके स्तन इतने ढीले और लंबे हों कि वे उनको कंधों पर से पीछे की ओर फेंककर पीठ पर उठाए हुए बच्चे को दूध पिला सकें। योरप के लोग स्त्री के स्तन की उपमा हिम से और मलायी लोग स्वर्ण से देते हैं।

प्रेम शारीरिक सौंदर्य और विषय-वासना के आश्रित नहीं। लैली कितनी काली थी; परंतु मजनूँ उसकी ख़ातिर मर मिटा। अनेक स्त्रियाँ लँगड़े-लूले और कुडौल

पुरुषों के साथ भागती हुई देखी गई हैं। जो दो स्त्री-पुरुष केवल एक दूसरे पर ही आसक्त रहकर जीवन व्यतीत करते हैं, यदि उनमें से एक का देहांत हो जाय, तो दूसरा विषाद-सागर में डूब जाता है। जिसके साथ उसका प्रेम था, वह अब इस संसार में नहीं और दूसरे किसी काम में दिलचस्पी लेना उसने सीखा नहीं, इसलिये उसके नैराश्य का पारावार नहीं रहता। विधवाओं की दुर्दशा का यही कारण है। इसीलिये न केवल ब्रह्मचारियों, विधवाओं और विधुरों को; वरन् विवाहित जोड़ों को भी समाज-सेवा के काम में भाग लेते रहने की आवश्यकता है।

साधारण स्त्रियों में, विशेषतः जवान लड़कियों में काम-वासना प्रेम के आधीन होती है। युवती स्त्री के प्रम के भाव में दो बातें शामिल रहती हैं—एक तो पुरुष के उत्साह तथा ऐश्वर्य के प्रति प्रशंसा, और दूसरे ममता तथा मातृत्व की उत्कट लालसा। वह चाहती है कि बाहर से तो पुरुष का मुझ पर आधिपत्य रहे, परंतु उसके हृदय पर मेरा राज्य हो। इसी भावुकता के वशीभूत होकर उसमें एक ऐसा आनंदोन्माद उत्पन्न होता है, जो उसकी इच्छा और तर्क के सभी बाड़ों को तोड़ डालता है। वह उस पुरुष के हाथ, जिस पर वह मुग्ध हो चुकी है, या जिसने उस पर अपना मोहिनी-मंत्र चलाया है, आत्म-समर्पण कर देती है। अब वह उसकी दासी हो-

कर उसका अनुसरण करती है, और उसके लिये बड़ी-बड़ी मूर्खताएँ करने से भी नहीं हिचकती।

पुरुष का प्रेम चाहे कितना ही प्रचंड और तीव्र क्यों न हो, वह स्त्री की अपेक्षा इस प्रकार विवेक बुद्धि को बहुत कम जवाब देता है। एक बार मन चंचल हो जाने पर फिर स्त्री के लिये अपने को सँभालना कठिन हो जाता है। परंतु पुरुष किसी भी समय अपने को सँभाल सकता है। इसीलिये हम कहते हैं कि स्त्री का कार्य निष्क्रिय होने पर भी उसमें भावुकता पुरुष से अधिक होती है।

एक मर्तबा की बात है, मांटगुमरी की एक हिंदू-स्त्री जालंधर-रेलवे-स्टेशन पर एक मुसलमान सिपाही के साथ भागी हुई पकड़ी गई। बहुत-से हिंदू वहाँ इकट्ठे हो गए। उन्होंने सिपाही को समझाया-बुझाया और धमकाया भी। सिपाही ने कहा—मैं इस विधवा से अपना संबंध तोड़ता हूँ। मैं इसको नहीं लाया। यह स्वयं ही मेरे साथ आई है। अब जहाँ आपकी इच्छा हो, इसे भेज दीजिए। मुझे इसमें कुछ भी कहना-सुनना नहीं। मैं तो आप इससे पीछा छुड़ाना चाहता हूँ। परंतु जब उस स्त्री से उसका पीछा छोड़ने को कहा गया, तो उसने एक न मानी। हिंदू-सभा के कर्मचारी बहुतेरा ज़ोर लगा चुके; परंतु उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। वह उस समय उस सिपाही के मोहन प्रभाव (Hypnotic influence) में

होने के कारण अपना हिताहित विचारने में सर्वथा असमर्थ थी। उसकी विवेक-बुद्धि उस वक़्त उसे छोड़ गई थी।

सदा पुरुष के साहस और शौर्य के कार्य को देखकर ही स्त्री के हृदय में उसके प्रति प्रेम का भाव नहीं उत्पन्न होता। सुंदरता और चारुता आदि पुरुष के बाह्य गुण भी उस पर प्रभाव डालते हैं, यद्यपि इनका प्रभाव उतना निर्णायक नहीं होता, जितना कि स्त्री की शारीरिक चारुता का पुरुष में उसके प्रति प्रेम पैदा करने में होता है। बौद्धिक श्रेष्ठता, उच्च नैतिक कार्य और मानसिक सद्गुण रमणी-हृदय को बहुत सुगमता से प्रभावित कर देते हैं। और वह उनके प्रभाव से उन्मत्त-सी हो जाती है। प्रत्येक प्रसिद्ध पुरुष, चाहे उसकी प्रसिद्धि किसी अच्छे काम के कारण हो, चाहे बुरे के कारण, शौक़ीन नर (रासधारी या अभिनेता) और उत्तम वक्ता आदि होकर स्त्री के हृदय में प्रेम का भाव उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। अशिक्षित या घटिया बुद्धिवाली स्त्रियाँ प्रायः पुरुष के शारीरिक बल या बाह्य रंग-रूप से अधिक प्रभावित होती हैं। इनको धर्म-प्रचारक, जादू-टोना करनेवाले, ओझे और दंभी लोग चट विमोहित कर लेते हैं। वे हतज्ञान होकर उनको आत्मसमर्पण कर देती हैं।

स्त्री पति के आधिपत्य में रहने या कम-से-कम उसके द्वारा रक्षित होने में आनंद का अनुभव करती है। इसी

के लिये वह प्रेम प्रकट करती है। स्त्री तभी सुखी हो सकती है, जब उसका पति ऐसा हो, जिसको वह सम्मान और पूजा के योग्य समझ सके, जिसमें उसे शारीरिक बल, साहस, स्वार्थत्याग या श्रेष्ठ बुद्धि का आदर्श दिखाई दे। ऐसा न होने पर पति झट ही स्त्री-दास हो जाता है, या स्त्री में उदासीनता और विराग का भाव उत्पन्न हो जाता है।

जिस घर में पति स्त्री-दास है (पत्नी-भक्ति होना दूसरी बात है), वहाँ सुख निवास नहीं कर सकता; क्योंकि वहाँ स्थिति बिलकुल उलटी हो जाती है, और स्त्री इसलिये शासन करती है कि पुरुष निर्बल है। परंतु स्त्री की स्वाभाविक इच्छा पुरुष के हृदय पर शासन करने की होती है, उसकी बुद्धि या संकल्प पर नहीं। स्त्री-दास पुरुष पर शासन करने से स्त्री को वृथा गर्व होना तो संभव है, परंतु उससे उसका हृदय संतुष्ट कभी नहीं होता। यही कारण है कि पति पर शासन करनेवाली स्त्री बहुत कम सदाचारिणी होती है। जिस सच्चे प्रेम की उसे तलाश थी, वह उसे वैवाहिक संबंध में नहीं मिलता। इसलिये उसे पर-पुरुष को ताकने की आवश्यकता होती है।

कुछ अज्ञानी लोग यह समझते हैं कि पुरुष तो रूपवती स्त्री चाहता है; परंतु स्त्री को चाहे कैसा ही कुरूप पुरुष मिल जाय, वह संतुष्ट रहती है। इसी भूल के कारण अनेक चंद्र-मुखी सुकुमारियाँ काले-कलूटे पुरुषों के साथ

ब्याह दी जाती हैं। फिर उनको गृहस्थी में जकड़े रखने के लिये यह शास्त्राज्ञा सुनाई जाती है कि पति चाहे कोढ़ी, कलंकी, भद्दा, भोंडा और दुराचारी ही क्यों न हो, जो उसका ईश्वर-तुल्य पूजन करती है, वही स्त्री स्वर्ग को जाती है। कुछ दिन हुए इस विषय में स्त्रियों के हार्दिक भाव जानने के उद्देश्य से मैंने अपनी भाभीजी से पूछा, तो उन्होंने यह कथा सुनाई—

"एक रूपवती लड़की का विवाह एक महाकाले पुरुष से हो गया। विवाह के बाद जब लड़की ने पति को देखा, तो उसे अत्यंत दुःख और ग्लानि हुई। रात को सास जब दूध का कटोरा देकर उसे पति के पास भेजती, तो पति के निकट जाकर वह चुपचाप खड़ी हो जाती। "दूध लीजिए" आदि कोई भी शब्द मुख से न निकालती। पति आप दूध लेकर पी लेता। इसी प्रकार कई दिन बीत गए। एक दिन पति ने मन में सोचा कि यह मुझसे बोलती नहीं। आज मैं इसे बुलाकर छोड़ूँगा। चाहे यह कितनी ही देर क्यों न खड़ी रहे, जब तक अपने मुख से नहीं कहेगी, मैं दूध का कटोरा न लूँगा। रात को उसने ऐसा ही किया। वह हाथ में कटोरा लिए खड़ी रही। खड़े-खड़े सारी रात बीत गई। परंतु वह मुख से न बोली। तब पति ने सोचा—अहो! मेरे कारण इसे भारी मानसिक कष्ट हो रहा है। जब इसका हृदय ही मुझसे प्रसन्न नहीं,

तो इसे यहाँ रखने से ही क्या लाभ ? बस, वह उसे उसके मायके छोड़ आया। वह वहीं अंतर्वेदना से घुल-घुलकर मरने लगी। एक दिन किसी ज्योतिषी ने उसका हाथ देखकर कहा कि तू जैसे कर्म पिछले जन्म में कर आई है, उन्हीं का फल भोग रही है। तेरे पति का इसमें कुछ दोष नहीं। तूने पिछले जन्म में काले उरदों का दान किया था, इसलिये तुझे काला पति मिला; तेरे पति ने सफ़ेद मोती दान दिए थे, इसलिये उसे रूपवती भार्या मिली। यह तो अपना-अपना कर्म-फल है। तेरे लिये अच्छा यही है कि पति के पास चली जा, और जो भाग्य में लिखा है, उसे संतोष और शांति से भोग। यह बात उस लड़की की समझ में आ गई, और वह मन मसोसकर ससुराल चली गई।"

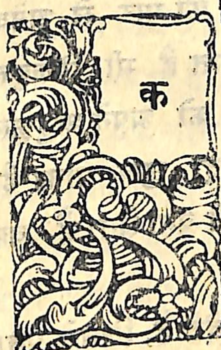
न-मालूम ऐसी और कितनी कथाएँ हिंदू-स्त्रियों में प्रचलित हैं, जो अभागे अनमेल जोड़ों को संतुष्ट करने का व्यर्थ यत्न करती हैं। गत मई-मास में मुझे काशी जाना पड़ा। रास्ते में दो ऐसे ही जोड़े देखकर बेचारी स्त्रियों की दशा पर दया और उनके माता-पिता की मूर्खता पर क्रोध आया। रेल-गाड़ी में अमृतसर के स्टेशन पर एक श्वेत-वस्त्रधारी तवे से भी अधिक काला पुरुष चढ़ा। कदाचित् वह कुछ रुग्ण था। डिब्बे में प्रवेश करते ही बेंच पर लेट गया। उसने गाड़ी में थूक-थूककर ढेर लगा दिया। उसके साथ एक अत्यंत रूपवती युवती और कोई

तीन वर्ष की छोटी बालिका थी। बालिका भी बहुत सुंदर थी। मैंने समझा कि यह काला मनुष्य इस देवी के साथ कोई मारवाड़ी नौकर है। परंतु जब वे लुधियाना-स्टेशन पर उतरे, तो यह मालूम करके कि वह नौकर नहीं, पति है, मुझे बहुत दुःख हुआ।

फिर जब हरद्वार पहुँचे, तो वहाँ भी एक ऐसा ही मामला देखा। एक कृशांगी सुंदरी अपने गोल-मोल कुप्पे के सदृश फूले हुए पति के साथ "हर की पैड़ी" पर गंगा में स्नान कर रही थी। जो भी मनुष्य उस अनमेल जोड़े को देखता, हँसे बिना न रहता। मैंने अनेक स्त्रियों को उस स्त्री की दशा पर दयार्द्र होते देखा। वे दंपति भी दर्शकों को अपने पर हँसते और संकेत करते देख मन-ही-मन अत्यंत लज्जित हो रहे थे। सुंदरी की दशा तो सचमुच ही दयनीय थी।

ऐसे विवाहों के परिणाम कभी-कभी अत्यंत भयंकर हो सकते हैं। बेचारी बेज़बान लड़कियों की जाति-पाँति और लक्ष्मी की वेदी पर बलि चढ़ा दी जाती है। वे आजन्म माता-पिता और अपने भाग्य को कोसा करती हैं। मानव-प्रकृति के स्वाभाविक नियमों को तोड़कर जो काम किया जायगा, उसका परिणाम हितकर न होगा। भाग्य और शास्त्रों का डरावा अधिक काम नहीं दे सकता। मानव-प्रकृति उसके विरुद्ध विद्रोह करती है।

स्त्री की अनुकूलता से ही पुरुष का कल्याण है



कवियों ने स्त्री की निन्दा और प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है। जब तक यह संसार है, स्त्री उनकी कविता का विषय बनी ही रहेगी। स्त्री एक शक्ति है, जिसका उपयोग अच्छे और बुरे, दोनों प्रकार के कामों में हो सकता है। स्त्री की सहानुभूति और सहयोग से पति यश और सांसारिक सुख-लाभ कर सकता है, और उसका विरोध तथा असहयोग पति के लिये अपयश और परम दुःख का कारण बन सकता है। संतुष्ट भार्या दरिद्र पति को भी संसार में संतुष्ट बनाए

रखती है, और असंतुष्ट पत्नी धनी-से-धनी पुरुष को भी लोक में निन्दित कर देती है। जिस प्रकार बिजली स्वयं छिपी रहती है, केवल उसके द्वारा संपादित कार्य ही देख पड़ते हैं, इसी प्रकार नारी-शक्ति भी स्वयं अदृष्ट रह-कर पुरुष के कार्यों में अपने अस्तित्व का परिचय दिया करती है। स्त्री-द्वारा उत्साहित किए जाने पर पुरुष बड़े-बड़े अद्भुत कार्य कर डालता है—वह युद्ध में अपने प्राण तक दे डालता है; और उसके द्वारा तिरस्कृत होने से भी वह चुल्लू-भर पानी में डूब मरता है। तुलसीदास, कालिदास और भर्तृहरि आदि के जीवनों को स्त्री ने ही बदल दिया था। पंजाब में कहावत है कि "स्त्रियों की मार से अनेक लोग फ़क़ीर हो जाते हैं"; यह बात है भी बिलकुल सत्य। इसलिये जो पुरुष इस शक्ति को अपने अनुकूल बनाकर जीवनयात्रा करता है, वह सदा सुख पाता है, और जो दुर्भाग्य से इसे अपना विरोधी बना लेता है, वह इसी संसार में नरक भोगता है।

आगे हम कुछ ऐसी सत्य घटनाएँ देते हैं, जिनसे पता लगेगा कि स्त्री किस प्रकार पति के यश-अपयश और सुख-दुःख का कारण होती है—

मेरे एक मित्र एक कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। उनमें धर्म-प्रचार की बड़ी लगन है। एम्० ए० पास करने के बाद

आपने हिंदी और थोड़ी-बहुत संस्कृत का अभ्यास किया है। धर्म-प्रचार के लिये भी बाहर उत्सवों में जाते हैं। कर्म-कांड में भी पूरे हैं। परंतु दुर्भाग्य से आपकी गृहिणी का स्वभाव अच्छा नहीं, अथवा उन्होंने उसे अच्छा बनाया नहीं। पति-पत्नी और सास-बहू में प्रायः खटपट रहा करती है; कभी-कभी तो मार-पीट तक की भी नौबत पहुँच जाती है। परंतु जो स्त्री आँख के इशारे से नहीं डरती, उसे मार-पीट भी भयभीत नहीं कर सकती। इस घरेलू कलह के कारण प्रोफ़ेसर महाशय बहुत दुःखी रहते हैं। कभी-कभी तो उन्हें अपना सारा जीवन ही अंधकार-मय जान पड़ता है। स्त्री, बच्चा और पागल इनके साथ तर्क करना व्यर्थ है। इनसे प्रेम तथा चतुराई से ही काम लिया जा सकता है। एक समय की बात है, प्रोफ़ेसर महाशय ने एक प्रतिष्ठित मित्र को अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण दिया। परंतु दुर्भाग्य से दूसरे दिन पति-पत्नी में झगड़ा हो गया। पत्नी ने भोजन बनाने से इनकार कर दिया और कोप-भवन में जाकर लेट रही। उधर भोजन का समय हो गया; अतिथि महाशय घर में आ गए। परंतु यहाँ तो आज चूल्हा ही नहीं जला था। प्रोफ़ेसर महाशय बड़े असमंजस में पड़े। इस समय की उनकी मानसिक दशा का अनुमान पाठक स्वयं करें, उसका वर्णन करना कठिन है। अब वह सोचने लगे कि क्या किया जाय,

जिससे अतिथि को घर की अवस्था का भी पता न लगे, और काम भी हो जाय। यह सोचकर वह अतिथि से बोले—आज आपको बाज़ार की पूड़ियाँ और हलवा खिलाऊँगा। वह बोला—नहीं महाशय, मुझे बाज़ार की पूड़ी की ज़रूरत नहीं; मैं तो घर की रोटी-दाल ही खाना चाहता हूँ। प्रोफ़ेसर ने कहा—अजी, घर की रोटी तो आप रोज़ खाते ही हैं, आज पूड़ियाँ कचौड़ियाँ उड़ने दीजिए; देखिए, कैसा आनंद आवेगा। अतिथि के बार-बार मना करने पर भी उन्होंने ज़बर्दस्ती बाज़ार से पूड़ियाँ मँगा ही लीं। अतिथि बड़े आश्चर्य में था कि यह कैसा आतिथ्य है! मैं घर में भोजन करने आया हूँ, बाज़ार की पूड़ियाँ क्या मैं स्वयं लेकर नहीं खा सकता था? फिर मुझे निमंत्रण देने का प्रयोजन ही क्या था? पर उसे क्या मालूम कि गृह-देवी की अप्रसन्नता के कारण आज उनके मित्र घर से बहिष्कृत हैं। वह बेचारे पूड़ी खाकर आश्चर्य में डूबे हुए वहाँ से लौट आए।

इसी प्रकार कलकत्ते की एक बात है। वहाँ एक पंजाबी सज्जन कार-बार करते थे। काम बहुत अच्छा चल रहा था। आप बड़े जोशीले समाज-सुधारक भी थे। एक बार उनका मित्र बर्मा से सपरिवार वहाँ आया, और एक धर्मशाला में ठहरा। उन्होंने उसे सपरिवार भोजन के लिये निमंत्रण दिया। मित्र ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

परंतु जब भोजन का समय हुआ, तो उन्हें बुलाने के लिये कोई न आया। उन्होंने समझा, शायद काम के कारण देर हो गई होगी। दस-पंद्रह मिनट देख ले, कोई-न-कोई ज़रूर लिवा ले जाने के लिये आवेगा। परंतु पंद्रह मिनट की तो बात क्या, जब ढाई घंटे बीत गए, तो उन्हें संदेह हुआ कि पता तो लें बात क्या है, शायद वह भूल ही न गए हों। अब मित्र महाशय उनकी दूकान पर पहुँचे। उन्हें देख-कर भी उन महाशय ने खाने की कोई बात न की; इधर-उधर की बातों में ही टाल दिया। मित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कल इसने मुझे आग्रह-पूर्वक निमंत्रण दिया था, आज यह उसको ऐसे भूल गया है मानो कोई बात ही नहीं हुई। अस्तु, वह दूकान से उठकर चले आए। शाम को बाज़ार में उनकी फिर भेंट हो गई। अब मित्र ने उससे पूछ ही लिया कि भले आदमी, निमंत्रण देकर इस प्रकार न बुलाना, यह कहाँ का शिष्टाचार है? उसने साफ़ कह दिया कि आपको निमंत्रण देने के बाद रात्रि को मेरी स्त्री के साथ झगड़ा हो गया था। उसने मुझसे डाँट-कर कह दिया था कि ख़बरदार, जो किसी पाहुने को मेरे यहाँ लाए। मुझसे उनकी आवभगत नहीं हो सकती। यदि अब भी तुम उन्हें ले आए, तो अपना किया पाओगे। यह सज्जन ऊपर से लोगों में बड़े धर्मात्मा प्रसिद्ध थे।

इसी प्रकार एक डाक्टर की बात है। उन्होंने भी अपने

एक मित्र को सपरिवार भोजन के लिये निमंत्रण दिया। देने को तो वह सपरिवार निमंत्रण दे चुके ; परंतु बाद को घबराए, और यत्न करने लगे कि केवल उनका मित्र ही खाना खाने को आवे, उसका परिवार न आवे। जब मित्र महाशय खाना खाने गए, तो डाक्टर ने उन्हें अपने घर में न ले जाकर दूकान पर ही भोजन मँगवा दिया। यह देख मित्र महाशय बहुत बिगड़े। उन्होंने कहा—भले आदमी, मैं तेरी रोटी का भूखा नहीं था। रोटी तो बाज़ार में भी खा सकता था। मैं तो तेरे प्रेम के कारण आया हूँ। दूकान पर रोटी मँगाकर तूने मेरा बड़ा अपमान किया। तेरा यह स्वादिष्ट भोजन भी मुझे विष के समान कड़वा जान पड़ता है। तब डाक्टर बड़ा दुःखी होकर बोला—भाई, क्या करूँ, स्त्रियाँ बड़ी ख़राब होती हैं। घर में सास-बहू की लड़ाई रहती है। मैं कुछ बोलता हूँ, तो मुझ पर डाँट-डपट हो जाती है।

और लीजिए, काशी में एक सज्जन थे। घर के अच्छे संपन्न थे। उन्होंने नगर से कुछ दूर एक रम्य वाटिका बनवाई थी। उसमें जल का एक सुंदर कुंड था। सड़कों के किनारे-किनारे हरियाली के अक्षरों में सुंदर वेदमंत्र लिखे हुए थे। वाटिका की सफ़ाई और सजावट बहुत चित्ताकर्षक थी। नगर छोड़कर रईस महाशय उसी में रहा करते थे। भजन और भक्ति के बिना उनका कोई

और काम न होता। जो भी कोई वहाँ जाता, वाटिका की प्रशंसा के साथ-साथ रईस महाशय के सुखी जीवन की भी प्रशंसा करता। लोग कहते सेठजी, आप वाटिका में नहीं, स्वर्ग में रहते हैं। एक दिन उनके एक पंजाबी मित्र को काशी जाने का सुयोग हुआ। यह भी उनकी उस वाटिका में उनसे मिलने गए। उनकी कोठी में किसी स्त्री को न देख उन्होंने ताड़ लिया कि सेठ महाशय का एकांत-वास रहस्य-पूर्ण है। उन्होंने उनसे कहा—सेठजी, आपका यह बाग़-बग़ीचा और महल-अटारी सब नरक है। गृहस्थ होकर इस प्रकार अकेले रहने का मतलब क्या ? गृहस्थ को तो विनोदमय होना चाहिए। बाल-बच्चे, पति-पत्नी, सब मिल-जुलकर खेलें कूदें, और हँसें-हँसावें। यह श्मशान-घाट क्या बना रक्खा है ? सेठ ने कहा—मैं घर में स्त्री के कारण ब्रह्मचर्य नहीं रख सकता, इसी से अकेला वाटिका में रहता हूँ। इस पर मित्र ने फिर डाँटा, और बताया कि एक पत्नीव्रती ऋतुगामी पुरुष ही सच्चा ब्रह्मचारी है। तुम्हारी तरह एकाकी रहने से तो तुम्हारे पतन का भारी भय है। अस्तु, उस समय तो सेठ ने लोगों के सामने उनकी बात स्वीकार न की। परंतु जब वह उन्हें स्टेशन पर छोड़ने आया, तो धीरे से कहने लगा—आपका कथन है तो सर्वथा सत्य। मुझे भी यह मकान नरक-धाम मालूम होता है। पर क्या करूँ, घर से

तंग हूँ। मुझे भी गृहस्थी को स्वर्ग-धाम बनाने की कोई विधि बताइए। मित्र ने दो-चार बातें बताईं। वे सेठ के मन में जम गईं। तभी से उसके जीवन में भारी परिवर्तन हो गया, और वह स्त्री बच्चों के साथ सुख-पूर्वक रहने लगा।

इसी प्रकार दिल्ली की एक बात है। प्रौढ़ अवस्था के एक कारबारी लाला थे। अपने व्यवसाय में ख़ूब चतुर थे। एक समय की बात है, उनके एक परिचित सज्जन कई वर्ष के बाद उनसे मिलने गए। उन्होंने देखा, लालाजी की प्रकृति में बड़ा अंतर आ गया ह। वह आजकल भक्त बन रहे हैं। लोग भी उन्हें 'भक्तजी, भक्तजी' कहकर पुकारते हैं। घर जाना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया है। रोटी भी दूकान पर ही मँगाते हैं। भक्तों में उनका ख़ूब नाम हो रहा है। उस सज्जन ने लाला के किसी मित्र से हँसी में कह दिया—"यह कब से भक्त बन गए हैं? स्त्री के साथ खटपट रहती होगी। बड़े भक्त वही बनते हैं, जिनके घर में अनबन रहती है और जिन्हें गृहस्थी में आनंद नहीं मिलता।" ये बातें उस मित्र ने लाला तक पहुँचा दीं। लालाजी अपनी भगताई पर बट्टा लगते देख बहुत बिगड़े। लोगों ने भी कहा—नहीं, लालाजी की भगतई सच्ची है; इन पर यह झूठा लांछन लगाया जा रहा है। अस्तु, बात गई-आई।

एक दिन लालाजी अपनी दूकान से कुछ काल के लिये

अनुपस्थित हुए। उनकी दूकान के सामने एक सुनार बैठता था। वह उनके घर का भेदिया था। जिन महाशय ने उनकी भगतई पर संदेह किया था, उन्होंने उस सुनार से उनकी पारिवारिक अवस्था पूछी, तो उसने बताया कि लालाजी के यहाँ घर में भयंकर अशांति फैल रही है; उनकी स्त्री अनेक बार दूकान पर आकर भी उन्हें खरी-खरी सुना जाती है। तब लालाजी के श्रद्धालुओं को, जो दूसरे बाज़ार में रहने के कारण उनकी भीतरी दशा से अनभिज्ञ थे, बड़ा आश्चर्य हुआ।

उपर्युक्त घटनाओं से स्त्रियों को कलह-प्रिय और झगड़ालू समझकर उनकी निंदा करना मूर्खता होगा। इस अनबन में पुरुष उनसे कम दोषी नहीं होते। पुरुष को बर्ताव का ढंग न आने से ही स्त्री लड़ाका बन जाती है। बुद्धिमान् पुरुष अपनी स्त्री को और बुद्धिमती स्त्री अपने पति को चतुराई से अपने अनुकूल बना सकती है। पर दुःख तो यह है कि पुरुष अपने को ज्ञानवान्, बुद्धिमान्, चतुर और सर्वांगपूर्ण समझते हैं। वे समझते हैं, हमें गृहस्थी के संबंध में कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं। त्रुटियाँ केवल स्त्री ही में होती हैं। उसी को गृहस्थी-संबंधी पुस्तकें पढ़नी चाहिए, उसे ही अपना सुधार करना चाहिए। हमें तो जो कुछ बनना था, बन चुके। मेरी यह धारणा निराधार नहीं। गत वर्ष मैंने स्त्रियों के

लिये 'आदर्श-पत्नी' और पुरुषों के लिये 'आदर्श-पति' नाम की पुस्तकें लिखी थीं। विशेषज्ञों की सम्मति है कि 'आदर्श-पत्नी' की अपेक्षा 'आदर्श-पति' अच्छा लिखा गया है। परंतु 'आदर्श-पत्नी' का तो एक वर्ष में दूसरा संस्करण भी हो गया है और 'आदर्श-पति' की अभी आधे के लगभग प्रतियाँ पड़ी होंगी। कारण स्पष्ट है।

मेरे जाने हुए सज्जनों में एक वृद्ध महाशय हैं। आप आर्य-समाज के पक्के भक्त हैं। सरकारी नौकरी करते हुए भी आप आर्य-समाजों के प्रधान रहे हैं। पहली स्त्री के मर जाने पर आपने दूसरा विवाह किया था। दूसरी स्त्री से कई बच्चे हैं। परंतु स्त्री धार्मिक कामों में उनका साथ नहीं देती; वैदिक संस्कार कराने में बाधा डालती है। जब लालाजी कहते हैं कि घूँघट मत निकालो, तो वह और डेढ़ गज़ लंबा निकाल लेती है। आर्य-समाज की प्रथा चाहती है कि यज्ञ में पति-पत्नी, दोनों सम्मिलित हों, और पत्नी ने परदा न किया हो। परंतु लालाजी की देवीजी बिलकुल नहीं मानतीं। कुछ महीनों की बात है, आर्य-समाज-मंदिर में कोई यज्ञ था। समाज के सभासदों ने यह नियम बना रक्खा है कि यज्ञ में सभी लोग सपत्नीक शामिल हों। विना स्त्री के कोई पुरुष उसमें नहीं बैठ सकता। लालाजी से भी उसमें सपत्नीक पधारने के लिये कहा गया। उन्होंने यह कहकर साफ़ इनकार कर दिया

कि मेरी स्त्री न तो घूँघट छोड़ सकती है, और न यज्ञ में ही शामिल होगी। समाज के मंत्री एक बड़े चतुर सज्जन थे। उन्होंने लालाजी से कहा—यज्ञ में आने के लिये मैं आपकी धर्म-पत्नी को मना लूँगा, केवल आपकी आज्ञा होनी चाहिए। लालाजी ने कहा, मेरी ओर से तो आज्ञा है, पर देखना, कहीं उलटी-सीधी बातें करके मेरे घर में लड़ाई-झगड़ा न करा देना। मंत्रीजी ने कहा—विश्वास रखिए, कोई झगड़ा न होगा।

मंत्री महाशय लालाजी के घर गए। वहाँ जाकर उन्होंने बड़े आदर से गृह-पत्नी को 'नमस्ते' किया। फिर कहा—आप मेरी माता के तुल्य हैं, मैं आपके पुत्र के समान हूँ। देखिए, जब तक आप न पधारेंगी, यज्ञ कभी पूर्ण नहीं हो सकता। आपके विना लालाजी भी सम्मिलित नहीं हो सकते। और भी कई स्त्रियाँ और पुरुष आवेंगे। आप यज्ञ में सम्मिलित होने की अवश्य कृपा कीजिए। देवीजी उनके शब्दों से बड़ी प्रसन्न हुईं, और बोलीं—मेरे अहोभाग्य हैं, मैं अवश्य यज्ञ में आऊँगी। तब मंत्रीजी ने कहा—हमारे यहाँ यज्ञ में घूँघट निकालने की रीति नहीं है। वहाँ कोई भी स्त्री घूँघट नहीं निकालेगी। इस पर देवीजी बोलीं—घूँघट की भी कोई बात नहीं, मैं नहीं निकालूँगी। मंत्रीजी देवी की स्वीकृति लेकर चले आए। जब उन्होंने इस स्वीकृति की सूचना लालाजी को दी, तो वह प्रसन्नता

प्रकट करते हुए बोले—आपने सचमुच जादू कर दिया। कहना न होगा, दूसरे दिन पति-पत्नी, दोनों विधि-पूर्वक उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। जो स्त्री प्रत्येक बात में पति का विरोध करती थी, वही एक युक्ति से सब बातें करने पर उद्यत हो गई।

और सुनिए, अमृतसर के एक सिक्ख महाशय की बात है। वह कचहरी में नौकर थे। घर में अच्छी रूपवती भार्या थी, परंतु कचहरी से आकर वह अपना सारा समय बाज़ार ही में बिताया करते थे। केवल आधे घंटे के लिये भोजन करने घर जाते थे। इस प्रकार आवारा रहने से उन्हें मदिरा-पान की भी बान पड़ गई। कुछ दिन बाद उनकी स्त्री का देहांत हो गया। उन्होंने दूसरा विवाह किया। दैवयोग से स्त्री काली मिली। परंतु वह थी बड़ी चतुर। उसके आते ही सिक्ख महाशय के जीवन ने पलटा खाया। स्त्री ने उनको अपने क़ाबू में कर लिया। अब वह कचहरी के बाद प्रायः सारा समय घर ही पर बिताते हैं। आप उन्हें पूर्ववत् बाज़ार में लोगों की दूकानों पर समय नष्ट करते नहीं पावेंगे। मदिरा-पान की लत भी जाती रही है। गृहस्थी में लीन हैं। कहते हैं, बड़ा प्रसन्न हूँ।

अब एक और वृत्तांत देकर हम इस लेख को समाप्त करना चाहते हैं। एक मारवाड़ी सेठ के तीन लड़के हैं। कलकत्ता, रंगून और चोरन में उनकी तीन दूकानें हैं।

पिता ने तीनों को अलग-अलग काम दे रक्खा है। सेठजी लड़कों और बहुओं को खान-पान से खूब संतुष्ट रखते हैं। उनको खाने और पहनने को बढ़िया चीज़ें देते हैं, आप घटिया चीज़ों पर ही निर्वाह कर लेते हैं। लड़के फ़िटन और मोटर की सवारी करेंगे, तो सेठजी पैदल घूमेंगे। बहुओं को नाना प्रकार के स्वादिष्ट फल और मिष्टान्न दिए जावेंगे, तो सेठजी खुद रूखी-सूखी रोटी खाकर ही गुज़र कर लेंगे। लड़के भी पिता का बहुत सम्मान करते हैं। घर में खूब शांति है। जब कोई बहू घर में किसी प्रकार का कलह करती है, तो सेठजी दंड-स्वरूप तुरंत उसके पति को आठ-दस दिन या महीने भर के लिये पत्नी से अलग होकर दूकान पर रहने की आज्ञा दे देते हैं। इस दंड से बहू एकदम काँप उठती है, और यथासंभव कलह करने से बचती है। सेठजी को घर में शांति रखने का बहुत अच्छा मंत्र मिल गया है। कलह का यह अमोघ अस्त्र है।

गृहस्थों के प्रति



हस्थ बनना एक बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है। खेद है, अधिकांश स्त्री-पुरुष, इस ज़िम्मेदारी का कुछ भी ज्ञान न रखने पर भी, गृहस्थी का बोझ उठा लेते हैं। इसका परिणाम क्या होता है? वे अनेक प्रकार की ऐसी भद्दी भूलें करते हैं, जिनके कारण उनका गार्हस्थ्य जीवन दुःखमय हो जाता है। शास्त्रकारों ने लिखा है कि पुरुष को पहले 'धी' (बुद्धि और विद्या) प्राप्त करनी चाहिए। उसके बाद 'श्री' अर्थात् धन-दौलत, और फिर 'स्त्री'। इस क्रम में गड़बड़ हो जाने से ही गृहस्थी नरक बन जाती है। आजकल भारत में यह हाल है कि लड़का अभी स्कूल की किसी छोटी कक्षा में ही

पढ़ता रहता है, और उसका विवाह हो जाता है। तब उसे विद्याध्ययन छोड़कर धन कमाने की आवश्यकता होती है। परंतु शारीरिक तथा बौद्धिक अपरिपक्वता तथा अयोग्यता के कारण वह किसी भी काम में सफल नहीं होता।

किंतु आज हम जिस बात पर विचार करना चाहते हैं, वह माता-पिता का सदाचार-रक्षा-संबंधी उत्तरदायित्व है। हम अपने इर्द-गिर्द इस संसार में ऐसे सैकड़ों लोगों को देखते हैं, जो धन कमाने की तो मानो मैशीन हैं, वे बात-चीत में बड़े चतुर हैं, सरकार में बड़ी मान-प्रतिष्ठा रखते हैं, और बड़े-बड़े उच्च पदों को सुशोभित करते हैं। परंतु अपने बालबच्चों और संबंधियों के आचार की रक्षा का उन्हें कुछ ध्यान ही नहीं। उनके लड़के और लड़कियाँ दुराचार में लिप्त हो रही हैं, परंतु उन्हें मालूम तक नहीं। युवक और युवतियों की चेष्टाओं को समझने की उनमें बुद्धि ही नहीं। दिन-दहाड़े इन लोगों के घरों में आचार की चोरी होती है, परंतु इनकी दृष्टि ही उधर नहीं जाती। फिर जब एकदम भंडा फूटता है, तो इनके दुःख और शोक की सीमा नहीं रहती। इनके लड़के और लड़कियाँ चरित्र-भ्रष्ट होकर घर से भाग जाती हैं, और इनसे हाथ मलने के सिवा और कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता। इनकी संतान को अनेक तरह की बुरी आदतें पड़ जाती हैं, और इनको पता तक नहीं लगता। यदि पता लगता भी

है, तो उस समय जब कि रोग असाध्य हो चुकता है और संतान आयु-भर के लिये रोगी हो जाती है। इसलिये माता-पिता की आँखें सदैव खुली रहने की आवश्यकता है। परंतु जब तक उन्होंने बच्चों—लड़कों तथा लड़कियों—और स्त्रियों के मनोविज्ञान का अध्ययन न किया हो, जब तक वे कामशास्त्र के सिद्धांतों को न जानते हों, तब तक वे यथोचित रूप से अपने परिवार की रक्षा नहीं कर सकते। हम अपनी बात को दो-एक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

साधारणतः यह समझा जाता है कि लड़कों को ही हस्त-मैथुन आदि अस्वाभाविक क्रियाओं द्वारा वीर्य-नाश की बुरी लत पड़ जाती है, और इसलिये दो लड़कों का एक खाट पर सोना या एक ही कोठरी में रहना बुरा है। स्कूलों के छात्रावासों में भी केवल दो लड़के एक कमरे में नहीं रक्खे जाते। परंतु लड़कियों के विषय में इस लत के होने का किसी को खयाल तक नहीं होता। लड़कियों को लड़कों से न मिलने देना ही उनकी रक्षा के लिये पर्याप्त समझा जाता है। दो युवतियों के एक ही खाट पर सोने पर किसी भी माता-पिता या छात्रावास की अधिष्ठात्री को आपत्ति नहीं होती। किंतु यह एक भारी अज्ञान है। लड़कियों में भी यह लत उतनी ही पाई जाती है, जितनी लड़कों में।

एक युवक ने एक बार अपने एक मित्र से शिकायत

को कि मेरा विवाह हुए दो वर्ष हो गए हैं। मेरी स्त्री का मेरी विधवा बहिन पर बड़ा प्यार है। वह उसी के साथ उठती-बैठती और रात को भी उसी के साथ सोती है। मेरे अनुरोध करने पर भी वह एकांत में मेरे पास नहीं आती, बलात्कार करूँ, तो चिल्लाने लगती है। मैं बहुत तंग आ गया हूँ, मुझे कोई उपाय बताइए।

मित्र ने कहा—तुम ननँद-भौजाई की चेष्टाओं पर तनिक दृष्टि रखना; गुप्तरूप से देखना कि वे एकांत में क्या करती हैं। उस युवक ने जो चौकसी से काम लिया, तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे आपस में पुरुषायत करती हैं। ननँद ने अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिये युवती भावज को अपना साधन बना रक्खा था। जब उसने इस बात की सूचना अपने मित्र को दी, तो उसने कहा—ननँद को उसके ससुराल भेज दो। इनको अलग-अलग कर देना ही इस रोग की दवा है। उसने अपनी बहिन को कोई बहाना करके, बड़ी मुश्किल से, उसकी ससुराल भिजवा दिया, यद्यपि वह इसके लिये तैयार नहीं थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी स्त्री का अपने पति में अनुराग हो गया, और पुरुष के सहवास का जो उसके मन में त्रास बैठा दिया गया था, वह दूर हो गया। काम-वासना के उत्तेजित होने से लड़के और लड़कियों को एक विशेष प्रकार की मादकता का अनुभव होता है।

और अज्ञानतावश उन्हें बुरी लत पड़ जाती है। इसलिये माताओं और अध्यापिकाओं को चाहिए कि वे लड़कियों की गति-मति को ध्यानपूर्वक देखती रहें और उनमें किसी बुरी लत का तनिक भी संदेह होने पर उन्हें एकांत में ले जाकर प्यार से समझाने और उस लत को छुड़ाने का प्रयत्न करें। मनुष्य-शरीर में काम-वासना के अनेक केंद्र हैं। उदाहरणार्थ स्तन, मूत्रेंद्रिय, जाँघ, ठुड्डी इत्यादि ऐसे अंग हैं, जिनका मदन के साथ विशेष संबंध है। इसीलिये ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों के लिये इनका अनावश्यक स्पर्श वर्जित है। बाइसिकल और घोड़े की सवारी से भी कुछ लोगों में उत्तेजना पैदा हो जाती है। अंगूठा या उंगली चूसने से कई छोटे बच्चों में मस्ती-सी पैदा हो जाती है। सयानी माताएँ देख सकती हैं कि हमारी संतान अज्ञानतः किसी ढंग से ब्रह्मचर्य का नाश तो नहीं कर रही है।

कामकला के योरपीय आचार्य श्री० हेवेलाक एलिस ने अपनी पुस्तक में एक दृष्टांत दिया है—एक स्कूल में बीस-पच्चीस लड़कियाँ सीने की मशीनें चला रही थीं, जब श्री० एलिस उनके कमरे में गए, तो उन्होंने क्या देखा कि बाक़ी मशीनें तो ठीक गति से चल रही हैं; परंतु एक लड़की बे-तहाशा चला रही है। उसमें से ठिक्...ठिक्...ठि...ठि...ठिक का लंबा शब्द निकल रहा है। उन्होंने उस लड़की को ध्यान से देखा, तो उसके दाँत मीचे हुए, शरीर ऐंठा

हुआ, गालों पर लाली और माथे पर पसीने की बूँदें देख पड़ीं। वह उन्माद की-सी दशा में बेसुध थी। उसे पता तक न था कि कोई मुझे ताड़ रहा है। दो-चार मिनट के बाद उसकी मशीन ठहरकर स्वाभाविक गति से चलने लगी। उसके शरीर की ऐंठन और गालों की गुलाबी रंगत भी दूर हो गई। श्री० एलिस ने स्कूल की अधिष्ठात्री से कहा—ज़रा इस लड़की का अंदर का कपड़ा तो देखिए। अधिष्ठात्री ने देखा, तो वह सचमुच स्मर-जल से भीगा हुआ था।

अधिष्ठात्री को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने इसका ध्यान रक्खा। थोड़ी देर बाद एक दूसरी लड़की की मशीन से भी वैसा ही लंबा एवं अनर्गल शब्द सुन पड़ा। वह झट उसके पास पहुँची। उसे भी उसने उसी दशा में पाया। ऐंठन के उपरांत शरीर ढीला पड़ जाने—चरम धातु के क्षरित हो जाने—के बाद जब उसका भी निचला वस्त्र देखा गया, तो वह भी भीगा हुआ मिला। श्री० एलिस ने अध्यापिका को बताया कि एक जाँघ को दूसरी जाँघ पर रखकर ये लड़कियाँ अपनी गुह्येंद्रियों को मलती हैं, इससे इन्हें उत्तेजना उत्पन्न होती है। परिणामतः चरम धातु क्षरित हो जाती है। यह भी एक प्रकार का मैथुन है।

उन्होंने एक और स्त्री का भी उदाहरण दिया है। वह

रेल पर सवार होने के लिये स्टेशन आई थी। गाड़ी आने में अभी कुछ देर थी। वह एक अकेली पड़ी हुई बेंच पर बैठ-गई। स्त्री ने अपने पेड़ू को जल्दी-जल्दी घुमाकर अपनी जननेंद्रिय को बेंच के सख़्त किनारे के साथ रगड़ना शुरू किया। थोड़ी देर में उसे मदनोन्माद उत्पन्न हो गया। उसके गालों पर लाली झलकने लगी। उसने आँख बंद कर लीं, और दाँत कसकर मीच लिए। थोड़ी देर बाद जब स्मर-जल के पतन से उसके गुप्त अंग भीग गए, तो उसका जोश उतर गया और वह उठकर दूसरी मुसाफ़िर-स्त्रियों में जा बैठी।

अमृतसर में एक बूढ़ा रहा करता था। लोग उसे 'भक्तजी' कहते थे। वह छोटी-छोटी लड़कियों को चिवड़े-रेवड़ियाँ बाँटकर अपने घर ले जाता। वहाँ उन्हें कहता कि पति-पत्नी का खेल खेलो। फिर कहता, तुम्हें खेलना नहीं आता। आओ, मैं तुम्हें सिखाऊँ। वह इतना बूढ़ा था कि उससे किसी प्रकार का व्यभिचार हो सकना संभव न था। परंतु वह अपनी बुरी आदत कैसे छोड़ता। किंतु इससे छोटी लड़कियों में, छोटी आयु में ही, काम-वासना के जागृत होने का भय अवश्य था, जिससे भयंकर परिणाम पैदा हो सकते थे। माताएँ लड़कियों को रोज़ चिवड़े-रेवड़ियाँ लाते देखतीं और प्रसन्न होतीं। परंतु किसी को भी यह ध्यान न आता कि देखें तो सही, यह

बुड्ढा रोज़ इतने पैसे क्यों खर्च करता है ? अंत में एक दिन एक बड़ी लड़की भी उसके जाल में फँस गई। उसने उसके घर में जो लीला देखी, वह सब अपने घरवालों को आकर सुना दी। तब तो सारी गली में शोर मच गया और सभी उस बुड्ढे को बुरा-भला कहने लगे।

हो सकता है कि कुछ अति सभ्य मनुष्य हमारी उपर्युक्त बातों को अश्लील समझकर उनका यहाँ लिखा जाना अनुचित समझें। परंतु उनसे मत-भेद रखते हुए हम इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष के अंगों में, उनके नामों या उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में कुछ भी अश्लीलता नहीं है; अश्लीलता है उनके दुरुपयोग में। ये इन्द्रियाँ सब पवित्र हैं। इनकी उपयोगिता का यथार्थ ज्ञान न होने से ही मनुष्य भयंकर भूलें करते और हानि उठाते हैं। हमारा विश्वास है कि जो बातें ऊपर लिखी गई हैं, यदि उनका ज्ञान माता-पिता तथा अध्यापिकाओं को हो, तो वे बहू-बेटियों और लड़कियों को अनेक प्रकार की हानियों से बचा सकती हैं। हमें मालूम है, स्कूलों और कन्या-पाठशालाओं में सौ पीछे दस से भी अधिक कन्याएँ इस लत में फँसी हुई हैं। इन विद्यालयों में युवती अध्यापिकाएँ और बड़ी कक्षाओं की लड़कियाँ छोटी लड़कियों को खराब करती हैं। परंतु अज्ञान के कारण किसी को उन पर संदेह नहीं होता। यदि उनकी

अध्यापिकाओं और अधिष्ठात्रियों को इस विषय की कुछ समझ हो, तो वे उनकी यह लत छुड़ा सकती हैं।

एक दूसरी बुराई की ओर भी हम गृहस्थ-स्त्री-पुरुषों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि पति-पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर व्यर्थ शंका करने लगते हैं। शंकाशीलता का यह स्वभाव अकसर बहुत बुरे परिणाम उत्पन्न करता है। हम यह नहीं कहते कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के चरित्र की निगरानी न करें, या दुराचार से आँख मीच लें। परंतु निर्मूल संदेह से सिवा दुःख के और कुछ नहीं हाथ आता।

एक सज्जन ने अपने पुत्र का विवाह किया। सौभाग्य से बहू बड़ी सुशीला और बुद्धिमती मिली। ससुर बहू की सुशीलता से बहुत प्रसन्न था। प्रसन्न होकर वह अपनी स्त्री से कहता कि देखो, बहू कैसी अच्छी है, कैसा प्रबंध करती है, कैसी बुद्धिमती है, कैसी रसोई बनाती है; तू कुछ भी नहीं जानती। पति के मुख से दो-चार बार बहू की प्रशंसा सुनकर स्त्री को संदेह हो गया। वह रुष्ट होकर पति से बोली कि बस, इस घर में या तो मैं रहूँगी, या बहू ही रहेगी। यह मेरी सौत बनकर यहाँ नहीं रह सकती। यह सुनकर बेचारी बहू बहुत रोई-पीटी; परंतु सास ने एक न सुनी। ससुर महाशय बड़े शुद्धाचारी थे। जब स्त्री के लड़ाई-झगड़े से बहुत तंग आ गए, तो

उन्होंने गली में खड़े होकर कहा लोगो, मैं सबके सामने कहता हूँ कि यह वहू मेरी बेटी है। मैं वहू और बेटे को नहीं छोड़ सकता। मेरी स्त्री यदि नहीं रहना चाहती, तो वेशक चली जाय। तब वह स्त्री छाती पीटने लगी, और मायके दौड़ गई। परंतु कुछ दिन बाद आप ही लौट आई।

कुछ माता-पिता बच्चों को ऐसी बातें करने का उपदेश करते हैं, जिन पर वे स्वयं आचरण नहीं कर सकते। इससे वे अपनी स्थिति को उपहास-जनक बना लेते हैं।

रमणी-हृदय

"स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को दैव भी नहीं जानता, मनुष्य का तो कहना ही क्या है।" यह लोकोक्ति न-मालूम कितनी पुरानी है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह स्त्री के संबंध में पुरुष के भारी अविश्वास की द्योतक है। स्त्रियों के चरित्र के विषय में पुरुषों ने ऐसी ही बहुत-सी कहावतें गढ़ रक्खी हैं। स्त्री चंचल, अस्थिर-बुद्धि और चपल होती है, उसकी प्रकृति की थाह लेना असंभव है—ऐसी-ऐसी अनेक सम्मतियाँ उनके विषय में सुनने में आती हैं। परंतु सच पूछिए, तो स्त्री की प्रकृति और उन गुप्त नियमों को, जिनके अनुसार उसके गुप्त वेग उठा करते हैं, पुरुष ने कभी



स्त्री की प्रकृति की थाह लेना असंभव है।

पृष्ठ-संख्या १२६

समझने का प्रयत्न ही नहीं किया। उन्होंने स्त्री की बाह्य चेष्टाओं को देखकर ही उसके चरित्र के संबंध में अपनी मनमानी व्यवस्था दे दी है। इस लेख द्वारा हम पाठकों को रमणी-हृदय की एक झलक दिखाने का प्रयत्न करते हैं।

लाहौर में 'जात-पाँत-तोड़क-मंडल' नाम की एक संस्था है। उसका उद्देश्य जात-पाँत के भेद को दूर कर, हिंदू-मात्र में गुण-कर्मानुसार विवाह की प्रथा को प्रचलित करना है। उस संस्था के मंत्री-पद का काम मेरे ही सिपुर्द है। इस कारण नाना प्रकृतियों के लोग मुझसे विवाह-संबंधी परामर्श लेने आया करते हैं। पिछले थोड़े दिनों में मुझे कतिपय ऐसी घटनाओं का पता लगा है, जिनको ऊपर से देखने पर, मानने का जी नहीं चाहता; परंतु हैं वे वास्तव में सत्य।

स्त्री स्वभाव से ही पति की एक-मात्र स्वामिनी होना चाहती है। वह यह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि कोई सौत उसके पति को उससे छीन ले। परंतु जो उदाहरण हम आगे लिखने जा रहे हैं, उसमें अवस्था इसके सर्वथा विपरीत बताई जाती है।

१—श्रीयुत क० की आयु ३९ वर्ष की है। आप एक दफ़्तर में काम करते हैं, बड़े धार्मिक विचार के हैं। कोई एक वर्ष हुआ, उनकी धर्मपत्नी बीमार हुई। डाक्टर ने आपरेशन करके उसका गर्भाशय निकाल डाला। इसलिये

अब संतान होना असंभव है। पहले भी कोई संतान नहीं थी। उन्हीं के शब्दों में वह अपना तो दूसरा विवाह करने के इच्छुक नहीं, परंतु उनकी धर्मपत्नी स्वयं ही उनके विवाह पर ज़ोर ही नहीं दे रही हैं, वरन् सगाई का भी प्रबंध कर रही हैं। और, मना करने पर वह रोने लगती हैं।

२—श्रीयुत ज० भी एक दफ़्तर में क्लर्क हैं, आयु ४० वर्ष की है। पाँच-छः बच्चे उनके मर चुके हैं; अब और कोई संतान होने की आशा नहीं है। धर्मपत्नी दूसरा विवाह करने पर ज़ोर दे रही हैं। कहती हैं, मुझे १५) मासिक निर्वाह के लिये देते रहना। मैं अलग मकान में रहूँगी। तुम दोनों अलग रहना। पति कहता है, मुझे संतान की इच्छा नहीं, मैं तुम्हारे साथ रहकर ही सुखी हूँ। परंतु वह एक नहीं सुनतीं।

३—श्रीयुत ब० एम्० ए० पास हैं, खद्दरधारी तथा कांग्रेस के कार्यकर्ता रह चुके हैं। दो लड़कों के बाप हैं। धर्मपत्नी को कुमारीजी कहकर संबोधन करते हैं। कुमारीजी की विद्वत्ता की प्रशंसा करते नहीं थकते। आपकी एक अविवाहिता साली है। वह दसवीं कक्षा में पढ़ती है। अब आप उसके साथ विवाह करने पर उतारू हो गए हैं, विधवा सास के विरोध और रोने-पीटने की कुछ परवाह नहीं करते। उनकी 'कुमारीजी' भी छोटी बहन को अपनी सौत बनाने के लिये भरसक प्रयत्न कर रही हैं।

उनकी प्रेरणा से 'लीला' माता और संबंधियों की मान-प्रतिष्ठा को भंग करके बड़ी बहन की सपत्नी बनने के लिये उद्यत हो गई है। आश्चर्य है, कुमारीजी यह दुःख-दायक संबंध कराने में क्यों सहायता दे रही हैं!

४—श्रीयुत मो० ला-कालिज में पढ़ते हैं। घर में स्त्री और बच्चा है; परंतु आपका एक कुमारी से प्रेम हो गया है। लड़की एफ़्० ए० में पढ़ती है, और माता-पिता के डाँट-डपट और मार-पीट करने पर भी यही कहती है कि मैं मो० के साथ ही विवाह करूँगी। वह मो० की पहली स्त्री की दासी बनकर रहना और उसके जूठे बर्तन साफ़ करना स्वीकार करती है। श्री० मो० के दो मित्र मेरे पास उस विषय में सम्मति पूछने आए। उन्होंने प्रेमिक और प्रेमिका के परस्पर आलिंगन का फोटू मुझे दिखाकर उनके अटूट प्रेम के नाम पर अपील की।

मैं एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री का रखना घोर अन्याय समझता हूँ। मैंने उन युवकों को बहुत फटकारा, और परामर्श दिया कि वे उस कुमार्गगामी मो० को पाप-पंक में पतित होने से रोकें, और कहें कि वह अपनी पहली स्त्री की दशा पर दया करके यह निंदनीय कर्म न करे। उन्होंने उत्तर दिया—"महाशय, उसकी स्त्री तो स्वयं चाहती है कि वह उस कुमारी से विवाह कर लें। उसने सहर्ष इसकी अनुमति दे दी है।" मैं यह सुनकर चकित रह गया।

वात्स्यायन मुनि ने अपने काम-सूत्र में लिखा है कि निम्नलिखित अवस्थाओं में पहली स्त्री के जीते-जी दूसरी स्त्री ग्रहण की जाती है—

"जब पहली स्त्री को कोई असाध्य रोग हो, वह दुराचारिणी हो, पत्नी और पति में सच्चा प्रेम न हो, वह बाँझ हो, उसके लड़कियाँ-ही-लड़कियाँ उत्पन्न होती हों, या पति अस्थिर-चित्त होने के कारण एक से अधिक स्त्रियों का आनंद लेना चाहता हो।"

इसलिये पत्नी को आरंभ से ही इन संयोगों के विषय में सावधान रहना चाहिए और पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, सच्चरित्रता और चतुराई से ऐसा संयोग ही न आने देना चाहिए।

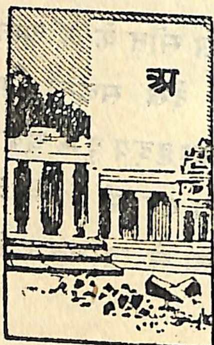
यदि संतान न हो, तो उसे स्वयं ही पति को दूसरा विवाह कर लेने के लिये अनुरोध करना चाहिए।

ऊपर कही हुई अवस्थाएँ उपस्थित होने पर उसे बनाव-चुनाव और शृंगार आदि द्वारा अपने शरीर को अधिक सुंदर एवं चित्ताकर्षक बनाना चाहिए। किंतु यदि उसके ऐसे प्रयत्न करने पर भी सौत सचमुच आ ही जाय, तो उसे उसको अपनी छोटी बहन के समान समझना चाहिए *।

* मेरी अप्रकाशित पुस्तक 'रति-विज्ञान' के 'बड़ी और छोटी पत्नी के कर्तव्य' नामक प्रकरण से उद्धृत।—लेखक।

यदि उपर्युक्त चारों स्त्रियों की दशाओं पर वात्स्यायन मुनि के अनुभव के प्रकाश में देखा जाय, तो पता लगता है कि स्त्री का हृदय सौत के विचार से ही जलने लगता है। परंतु जब वह देखती है कि पति सौत लाए बिना न रहेगा और उसकी मानसिक वेदना सीमा का उल्लंघन कर जाती है, तब वह सहज ज्ञान से जान जाती है कि अब पति की इच्छा के सामने सिर झुकाने ही में कल्याण है। अतएव वह पति को प्रसन्न करने के उद्देश्य से दूसरी स्त्री के लाने में उसे सहायता देने लगती है। पति समझता है कि वह सहर्ष और स्वेच्छा-पूर्वक उसे सौत के ले आने पर ज़ोर दे रही है। वह यह नहीं देख सकता कि सिंहासनच्युत सम्राज्ञी के सदृश स्त्री का हृदय बुझ चुका है। नारी-हृदय की एक बड़ी विशेषता यह भी देखने में आई है कि वह भीतर से मर्मांतक वेदना से व्यथित होने पर भी बाहर से हँसती रहती है।

स्त्रियों की मौन-भाषा



पने मनोभावों को प्रकट करने के लिये मनुष्य के पास जिह्वा ही एकमात्र साधन नहीं है। नेत्र, नाक और मुख-मंडल, सभी अंतर्गत भावों को प्रकट कर सकते हैं। एक नागरिक युवती पति पर अगाध प्रेम प्रकट करने के अभिप्राय से कहती है—"प्राणनाथ ! जीवनधन ! आपका विरहाग्नि में दासी दग्ध होती जा रही है। यदि आपके मुखारविंद के शीघ्र ही दर्शन न हुए, तो यह अभागिनी जीवित न रह सकेगी।" पति इन शब्दों को सुनकर फड़क उठता है। उसका हृदय प्रियतमा के प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत एक भोली-भाली ग्रामीण बाला—जिसे शिक्षा

प्राप्त करने का कभी सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ—पति के विदेश-गमन पर मुँह से शब्द तक नहीं निकालती, परंतु वियोग-व्यथा से उसका मुख-मंडल एकदम मलिन हो जाता है। उसका फूल-सा चेहरा कुम्हला जाता है, शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। कौन कह सकता है, इस देवी की मौन-भाषा में उस सुपठित नारी के शब्दों की अपेक्षा कम प्रभाव है ? हाँ, मौन-भाषा को समझने के लिये पुरुष में बुद्धि होनी चाहिए, नहीं तो अंधे के सामने रोने की-सी बात होगी। बूचड़खाने में एक पशु का वध होते दूसरे पशु देखते हैं, तब वह समझने लगते हैं, हम भी इस संसार में कुछ ही देर के मेहमान हैं। उस समय उनकी दशा देखने योग्य होती है। वे मुँह से कुछ नहीं कह सकते, उनकी आकृति ही उनकी अंतर्वेदना को व्यक्त करती रहती है। किंतु वधिक पर उनके दुःख का कुछ भी असर नहीं होता। हाँ, साधु पुरुष का हृदय अवश्य दयार्द्र हो जाता है।

स्त्रियाँ प्रायः अपने आंतरिक भावों को पुरुषों के सामने स्पष्ट शब्दों में नहीं प्रकट करतीं। भीतर-ही-भीतर दुःख से घुलकर वे भले ही प्राण दे दें, परंतु अपनी व्यथा पुरुषों पर आसानी से नहीं प्रकट करतीं। इसका एक विशेष कारण है। स्त्री पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक सामाजिक प्राणी है। समाज की जटिलताओं में रहते हुए उसकी प्रकृति भी बहुत कुछ जटिल बन गई है। पुरुष की

अपेक्षा उसे सांसारिकता का कहीं अधिक ध्यान रखना पड़ता है। इसीलिये उसे अपने वास्तविक भावों को छिपाने की ज़रूरत पड़ती है। घर में दस मेहमान आए हुए हैं, उनकी टहल-सेवा से गृहिणी तंग आ गई है, जी से यही चाहती है कि ये जितनी जल्दी चले जायँ, उतना ही अच्छा। परंतु ऊपर से वह बार-बार उन्हें ठहराने पर ही ज़ोर देगी। पुरुष इन विषयों में कभी-कभी अपने मन का भाव स्पष्ट कह भी देता है, किंतु स्त्री कभी नहीं कहती।

एक बहुत बड़े रईस के घर की बात है। वह बड़े सुशिक्षित थे, और उनके अनेक मित्र थे। बड़े भारी ज़मींदार और लक्ष्मीपति होने पर भी उनमें अभिमान का लेश न था। उनके मित्रों में एक मास्टर साहब भी थे। वह बड़े सीधे-सादे थे। परंतु उनकी एक बड़ी गंदी आदत यह थी कि जहाँ बैठते, वहीं थूक देते थे। सरदार साहब अपने मित्रों के साथ अपने सजे हुए कमरे में जहाँ ताश और शतरंज आदि प्रायः खेला करते थे, वहीं उक्त मास्टर साहब फ़र्श पर थूक देते थे। सरदार साहब की भार्या सुशिक्षित और बड़े ऊँचे घराने की थी। उसने किसी योरपियन विद्यालय में शिक्षा पाई थी। उसे घर की स्वच्छता का बड़ा ध्यान रहता था। मास्टर साहब की इस गंदी आदत से वह बहुत तंग आ गई। शिष्टाचार के कारण वह उनसे तो कुछ न कह सकी; परंतु एक दिन

अपने पति से कह दिया कि आप लोग सारा फ़र्श गंदा कर देते हैं, मुझे सफ़ाई करने में बड़ी दिक़्क़त होती है। या तो आप कमरे के भीतर न बैठा करें, या फिर वहाँ थूका न करें। सरदार साहब ने दूसरे दिन मास्टर साहब से कहा—यार, तेरे कारण आज मुझे डाँट सुननी पड़ी। तू भई, भीतर न थूका कर। वह तुझे तो कुछ कहतीं नहीं, परंतु मुझ पर बहुत नाराज़ होती हैं। मास्टर साहब को यह बहुत बुरा लगा। उन्होंने सरदार साहब के मकान पर जाना ही बंद कर दिया। एक दिन किसी कारण से वह उनकी कोठी पर गए, तो सरदारनीजी ने आव-भगत के ढंग पर पूछा—कहिए, मास्टर साहब, अब तो आपके दर्शन ही नहीं होते। क्या आप हमसे रुष्ट हैं? मास्टर साहब ने रुखाई से मुँह बनाकर कहा—जी, हमारी आदतें गंदी हैं। हमारे आने से आपको दुःख होता है। इसलिये हम लोग आप-जैसे बड़े आदमियों से कैसे मिल सकते हैं।

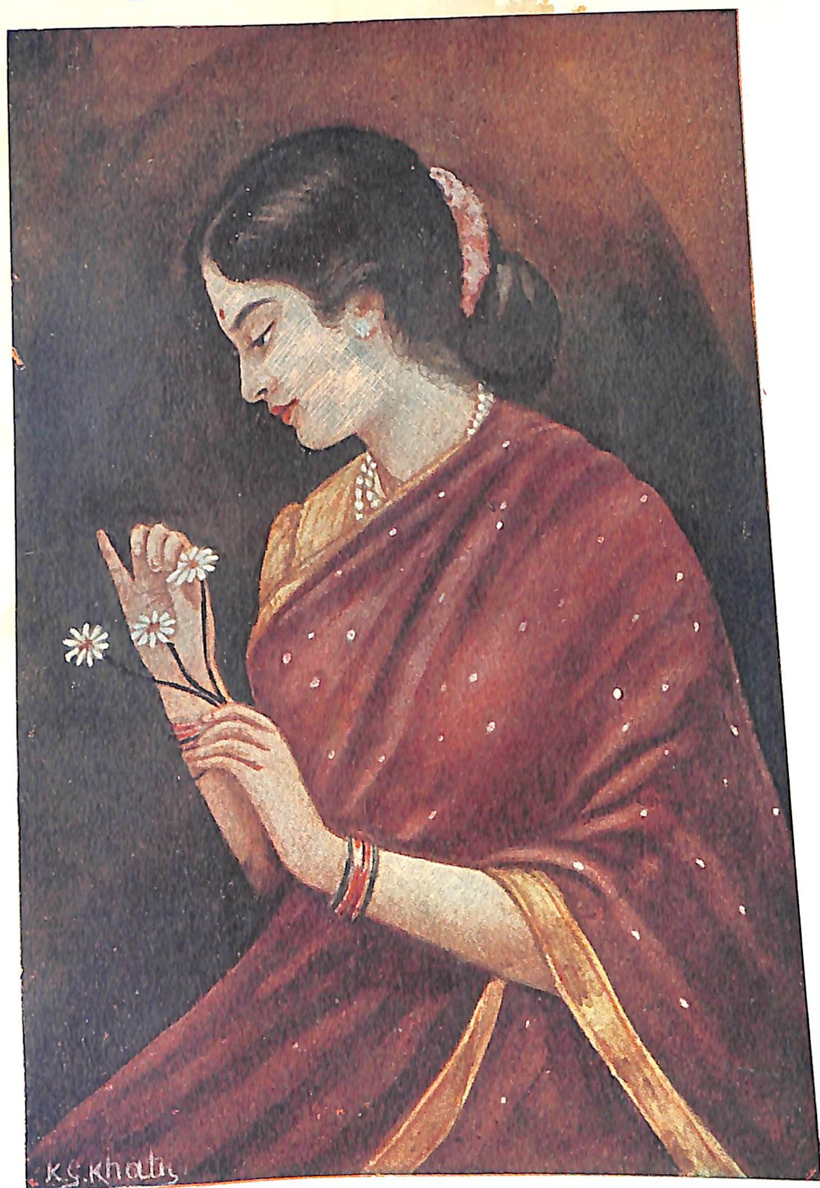
सरदारनी समझ गई कि मेरे पति ने इनसे कह दिया होगा। उस समय तो वह ग़ुस्से को पी गई, परंतु पीछे उसने पति की ख़ूब गत बनाई। उसने कहा—You wretch, husband of mine! you are fetching good name for yourself and bad one for others.

अर्थात् "ऐ मेरे निगोड़े पति, तुम अपने लिये तो यश और दूसरों के लिये अपयश ले रहे हो।"

सरदार साहब चुपचाप वह कोड़े की मार सह गए। दूसरे दिन उन्होंने मास्टर साहब को उपालंभ दिया कि भलेमानस, मैंने तो तुझे सावधान करने के लिये कहा था। तूने वह बात सरदारनी से ही जाकर कह दी।

इस घटना के लिखने का तात्पर्य यह दिखलाना है कि स्त्रियाँ बाह्याडंबर और दुनियादारी की कितनी पर्वाह करती हैं।

स्त्रियाँ प्रायः लज्जा आदि के कारण अपने भावों को स्पष्ट शब्दों में न कहकर हाव-भाव तथा संकेत आदि के द्वारा प्रकट करती हैं। यह बात किसी देश-विशेष तक ही परिमित नहीं, संसार के सभी देशों की स्त्रियों में पाई जाती है। काम-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों ने इसीलिये संकेत-शास्त्र की सृष्टि की थी। बौद्ध-भिक्षु, पद्मश्री लिखते हैं—"जो पति संकेत को नहीं पहचानता—चाहे वह चौंसठ कलाओं और संपूर्ण गुणों से क्यों न संपन्न हो—उसे नगर में रहनेवाली समझदार, गुणवती युवतियाँ मुरझाई हुई माला की तरह फेंक देती हैं। इसलिये पति को चाहिए कि और सब चिंताओं को छोड़कर संकेत-शास्त्र के जानने का पर्याप्त प्रयत्न करे। क्योंकि और सहस्रों प्रकार का सम्मान मिलने पर भी पति का पत्नी की ओर से धिक्कारा जाना मृत्यु के समान है। ये संकेत व्यंग्य और अंगों द्वारा किए जाते हैं।"



स्त्रियाँ प्रायः लज्जा आदि के कारण अपने भावों को स्पष्ट शब्दों में न कहकर हाव-भाव तथा संकेत आदि के द्वारा प्रकट करती हैं।

पृष्ठ-संख्या १२६

नारी के शरीर में, सागर में ज्वार-भाटे के सदृश, मदन का प्रवाह प्रति मास उमड़ता और उतरता है। शरीर-विज्ञान और सुप्रजा-जनन-विद्या की दृष्टि से संतानोत्पत्ति की क्रिया केवल उस समय होनी चाहिए, जब यह प्रवाह उमड़ रहा हो। मदन-तरंग के उतार के समय स्त्री-पुरुष का संयोग स्त्री के लिये अरुचिकर और उसके स्वास्थ्य के लिये हानिकर होता है। किस समय मदन का उदय हो रहा है और किस समय नहीं, इसका पहचानना साधारण पुरुष के लिये कठिन है। परंतु जो पुरुष संकेत-शास्त्र को जानता है, उसे उसकी स्त्री सैकड़ों इशारों से बता देती है कि इस समय मदन-प्रवाह उमड़ रहा है। इसलिये स्त्रियों की मौन-भाषा को जानना और भी आवश्यक है। जो लोग इस शास्त्र को अश्लील समझकर इसकी उपेक्षा करते हैं, वे प्रायः हानि उठाते और अपनी स्त्रियों की रक्षा करने में असमर्थ रहते हैं। आगे लिखी घटना मेरे इस कथन की पुष्टि करेगी। यह मुझे मेरे एक मित्र ने सुनाई थी। इसलिये मैं उन्हीं के शब्दों में इसे यहाँ देता हूँ—

"अमृतसर में एक लड़की थी। बेचारी कोई पंद्रह वर्ष की छोटी आयु में विधवा हो गई। विधवा हो जाने के बाद उस पर नवीन वेदांत का रंग चढ़ा, और वह दिन-पर दिन चोखा होता गया। उसकी बातचीत के ढंग और गति-मति में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन हो गया। इस शरीर को भूख

लगी है, आज यह शरीर दूध पिएगा, ब्रह्म लेटना चाहता है—इसी ढंग से वह अपने संबंध में बातें किया करती। जिन दिनों की यह बात है, उन दिनों मैं मैट्रिक्युलेशन-परीक्षा की तैयारी कर रहा था। एक दिन वह विधवा हमारे घर आई, और रात को देर तक मेरी भावज के साथ बातें करती रही। मैं भी पास ही बैठा पढ़ रहा था। कुछ देर के बाद मेरी भावज की आँखें झपक गईं। तब वह मेरे साथ बातें करने लगी। वह बहुत तीक्ष्णबुद्धि थी। हिंदी भी अच्छी पढ़ी-लिखी थी। ब्रह्म-ज्ञान की बातें करते-करते वह इस बात पर आ गई कि स्वामी दयानंद ने जो विधवा-विवाह का निषेध और नियोग का विधान किया है, यह अच्छा नहीं। नियोग से विधवा-विवाह अच्छा है। मैं भी उन दिनों खूब जोशीला समाजी था। मैं चाहता था कि यह यदि किसी प्रकार नवीन वेदांत को छोड़कर आर्यसमाजी बन जाय, तो बहुत अच्छा हो। मैंने उसके साथ खूब वाद-विवाद किया। मेरा पक्ष यह था कि नहीं, नियोग विधवा-विवाह से बहुत उच्च आदर्श है। रात अधिक हो गई थी, इसलिये मैंने उससे कहा कि अब तुम जाओ, मुझे पढ़ना है। फिर किसी समय दिन में आना, बात-चीत करेंगे। दो-तीन दिन के बाद वह फिर आ गई, और उसी विषय पर वार्तालाप करने लगी। अंत को मैंने उससे कहा—वर्तमान अवस्था में तो जैसा

तुम कहती हो, विधवा-विवाह ही ठीक है; क्योंकि समाज की ऐसी पतित अवस्था में नियोग-जैसे उच्च आदर्श पर आचरण करना कठिन है। परंतु वैदिक आदर्श नियोग ही है। अस्तु, बात समाप्त हो गई। वह चली गई।

परंतु उसके रंग-ढंग से मुझे उस पर संदेह होने लगा। मैंने सोचा, दुनिया में तो यह ब्रह्मज्ञानिन प्रसिद्ध है, फिर इसके विधवा-विवाह पर ज़ोर देने, सादा वस्त्र पहरने पर भी शरीर की सजावट का ध्यान रखने और सत्यार्थ-प्रकाश में वर्णित गर्भाधान-विधि पर टीका-टिप्पणी करने का क्या मतलब ? ज़रूर इसकी मनोवृत्ति डाँवाडोल हो रही है। मैंने उसके भाई से मिलकर कह दिया कि लड़की के लक्षण अच्छे नहीं देख पड़ते, तनिक सावधानी रखना। उसने पूछा, क्या तुमने कोई बात देखी या सुनी है ? मैंने कहा, देखा-सुना कुछ नहीं ; मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि इसका चित्त चंचल हो रहा है।

भाई स्वयं विलासी प्रकृति का मनुष्य था। उसने तनिक चौकसी से काम लिया, और आँखें खोलकर लड़की की गति-विधि का अवलोकन किया, तो क्या देखा कि जब वह अपने ज्ञान-ध्यान से उठकर, कमरे के भीतर किवाड़ बंद करके, योगाभ्यास करने बैठती है, तो पिछली कोठरी की खिड़की से एक दूर कोठे पर खड़े हुए युवक के साथ संकेतों द्वारा बातें होती हैं। तब तो उसे मेरी

बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। अब उसने बनव पर कुछ कड़ाई करके उसकी गति-विधि पर बंदिशें लगा दीं। परंतु उसकी अवस्था बिगड़ती ही गई। एक दिन उसकी तलाशी ली गई, तो उस युवक का फोटू भी उसके पास निकल आया।

अब तो घर भर में कुहराम मच गया। भाई ने मेरी सम्मति से उसका कहीं विवाह करने का निश्चय किया। परंतु माता-पिता और ससुरालवालों ने न माना। इधर उसकी यह दशा थी, उधर वेदांत का भूत ज़ोरों पर सवार था। लड़की को किसी प्रकार पता लग गया कि मैंने ही उसके घरवालों को सब बात बताई है। तब तो वह मुझसे रुष्ट हो गई। मैंने उसे गुप्त संदेश भेजा कि यदि तू कहीं विवाह करना चाहती है, तो मैं अपने ऊपर बदनामी लेकर भी तेरी हर तरह से सहायता करने को तैयार हूँ। परंतु उसने बदला लेने के भाव से यह बात अपने माता-पिता को बता दी। इतना ही नहीं, मेरी स्त्री पर भी आचार-दोष लगा दिया।

अंत को उस विधवा का बड़ा भयंकर पतन हुआ। जब उसका वह प्रेमी युवक चार दिन के बाद उसे छोड़ गया, तब उसे बड़ा धक्का लगा। इसका उसके स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, और वह एक नीच जाति के मनुष्य के यहाँ जा बसी।"

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना है। हमारे जात-पाँत-तोड़क मंडल ने सन् १९२३ में एक शुद्ध हुई यवन-सुंदरी का विवाह एक हिंदू के साथ कर दिया। वह पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत का निवासी था। कुछ दिनों के बाद कई कारणों से मुसलमानों ने उस मनुष्य को मार डाला। अतः उस युवती के भरण-पोषण का भार मंडल पर पड़ा। लाहौर में आर्य-समाज के सदस्यों ने उसकी अच्छी आव-भगत की। जब उससे पुनर्विवाह का प्रस्ताव किया जाता, तो वह स्पष्ट कहती कि अब तो मैं इस बंधन में नहीं पड़ूँगी, विद्या पढ़कर धर्म की सेवा करूँगी। श्रद्धालु आर्यसमाजी उसकी इन बातों से बहुत प्रसन्न होते। कइयों ने तो अपने व्याख्यानों में उसे सीता और सावित्री तक कह डाला। परंतु मुझे उसके लक्षण ऐसे नहीं देख पड़ते थे, जिन्हें देखकर कहा जा सके कि जो कुछ यह कह रही है, वही इसका आंतरिक भाव है। वह मेरे यहाँ ठहरी हुई थी। एक दिन मैंने उससे एकांत में कहा कि तेरा इस प्रकार विवाह से इनकार करना ठीक नहीं, पीछे पछतायगी। उसने झट कह दिया कि विधवा-सहायक सभा के उपदेशक की स्त्री मुझसे एक दूकानदार के साथ विवाह कर लेने को कहती थी। मैं उसके साथ विवाह नहीं करना चाहती। आप मेरे लिये कोई उपयुक्त पुरुष ढूँढ़ दीजिए, मुझे कोई इनकार

नहीं। परंतु यह बात अभी प्रकट न होनी चाहिए। मैंने कहा, बहुत अच्छा।

उन दिनों उसके पति के मारनेवालों पर मुक़द्दमा चल रहा था। मुक़द्दमे के फ़ैसले के पहले विवाह करना मैं उचित भी नहीं समझता था। इसलिये उसे एक विद्यालय में रख दिया, ताकि वह कुछ पढ़-लिख भी जाय और उस पर आर्य-संस्कार भी पड़ते रहें। इन्हीं दिनों मेरी धर्मपत्नी बहुत अधिक बीमार हो गईं। उनकी इच्छा के अनुसार मैं उन्हें कनखल ले गया, और चिकित्सा कराने लगा। वहाँ मुझे कोई ढाई महीने ठहरना पड़ा। एक दिन शाम को हरद्वार में, हर की पैड़ी के पास, गंगा-तट पर टहल रहा था कि वही स्त्री मुझे मिल गई। मैंने पूछा, तुम यहाँ कैसे? उसने कहा—मेरी सास मुझे यहाँ गंगा-स्नान के लिये ले आई हैं। कल मैं बहनजी (मेरी धर्मपत्नी) को देखने आऊँगी। गंगा-तट पर कुछ बंगाली विधवाएँ सिर मुड़ा रही थीं। उनकी ओर संकेत करके बोली—मैं भी इनकी तरह सिर मुड़ा लूँ? मुझे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने मन में कहा—अब यह मुझे भी धोखा देना चाहती है। मैंने उससे कहा, मैंने तुम्हारे लिये क्या इतना धन और परिश्रम इसलिये व्यय किया है कि तुम सिर मुड़ा लो? मैं तो तुम्हारे द्वारा आर्य-जगत् की वृद्धि चाहता हूँ। तब वह मुसकिराती हुई चुप हो गई। परंतु

बाद को लाहौर पहुँचने पर मुझे मालूम हुआ कि जिस समय वह मेरे साथ सिर मुड़ाकर धर्म की सेवा में शेष जीवन व्यतीत करने की बातें कर रही थी, ठीक उसी समय अपना हृदय एक पेशावरी हिंदू-युवक को दे चुकी थी। उसने स्वयं उस युवक के साथ विवाह कर लिया, किसी को ख़बर भी नहीं हुई।

अब मैं नारी-प्रकृति के संबंध में एक घटना का उल्लेख करके इस लेख को समाप्त करता हूँ। लाहौर में एक पुस्तक-विक्रेता हैं। उनकी आयु पच्चीस-छब्बीस वर्ष ही की थी कि उनकी धर्मपत्नी को राजयक्ष्मा हो गया। जब उसकी अवस्था बहुत बिगड़ी, तो वह अपने पति से कहने लगी—अब मेरा बचना कठिन है, मेरी मृत्यु अवश्यंभावी है। मेरे मरने के बाद आप विवाह अवश्य कर लें, नहीं तो आपको बड़ा कष्ट होगा। आपके विवाह करने से जहाँ आपको सुख होगा, वहाँ मेरा यह डेढ़ वर्ष का लड़का भी पल जायगा। पति ने कहा—मैं विवाह नहीं करने का। परमेश्वर करे, तुम्हीं आराम हो जाओ। कुछ दिन बाद स्त्री ने फिर विवाह कर लेने के लिये ताकीद की, और इसी में अपनी प्रसन्नता प्रकट की। परंतु पति ने फिर उसी प्रकार इनकार कर दिया। पति और पत्नी में यह प्रस्ताव और इनकार इसी प्रकार कई बार हुआ।

एक दिन पति महाशय दवा आदि के लिये घर से बाहर निकले। वह अभी सीढ़ियाँ ही उतर रहे थे कि उनकी रुग्ण स्त्री खाट से उठी और अपने नन्हें-से पुत्र को खटोले पर से उठाकर, अपनी छाती से लगा, ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। रोने का शब्द सुनकर पति महाशय सीढ़ियों पर ही ठहर गए। उन्होंने सुना, स्त्री पुत्र को गले से लगाकर रोती हुई कह रही है—बेटा! मुझे मर जाना है। पीछे तेरा पिता दूसरी स्त्री ले आवेगा! हा, उस समय तुझे कौन प्यार करेगा? वह तुझे झिड़की देगी, डाँट-डपट करेगी। तुझे कौन लाड़-प्यार से खिलावे-ओढ़ावेगा?

इन मर्मस्पर्शी करुणाजनक शब्दों को सुनकर पति चट पत्नी के पास लौट आया, और उसे सांत्वना देने लगा कि तेरे बार-बार कहने पर भी मैंने विवाह करना स्वीकार नहीं किया था। परंतु आज मैं भगवान् को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे बाद कभी विवाह न करूँगा। तू व्याकुल मत हो, अपनी आत्मा को शांत कर। कहना न होगा, पति ने सचमुच अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और भगवान् ने उन्हें आज्ञाकारी पुत्र तथा सुशीला पुत्र-वधू के रूप में उसका उत्तम फल दिया।

संकेत



जब किसी देश में सुख और शांति होती है, लोगों को खाने-पीने की कमी नहीं होती, और बाहर के आक्रमणों का भी भय नहीं रहता, तब वहाँ ललित कलाओं का विकास होता है। लोग जीवन को सरस बनाने के लिये नए-नए उपाय सोचने लगते हैं। संगीत, कविता, चित्रकारी और शृंगार की ओर जनता को ध्यान देने का अवसर मिलता है; मनोभावों को प्रकट करने के लिये नए-नए शब्दों और संकेतों की सृष्टि होती है; युवक और युवतियाँ स्वच्छ, सुंदर वस्त्र-भूषणों से अलंकृत होकर प्रातः और सायंकाल सड़कों पर विहार करने निकलती हैं। रामायण में कहा है—जिस राजा का राज्य-प्रबंध अच्छा नहीं

होता, उसके राज्य में नगर की सुंदरियाँ अपने कांतों के साथ शाम को विहार करती हुई नहीं देख पड़तीं। सारांश यह कि ललित कलाओं की उन्नत अवस्था किसी देश के सुखी और समृद्धिशाली होने का परिचायक हो सकती है।

संकेत-शास्त्र भी ललित कलाओं के अंतर्गत ही है। इसका काम-शास्त्र के साथ गहरा संबंध है। इन दोनों की उन्नति भी तभी होती है, जब देश धन-धान्य से भरपूर और प्रजा सब प्रकार से सुखी हो। हमारे देश में किसी समय इन दोनों शास्त्रों की खूब उन्नति हुई थी। काम-शास्त्र की उन्नति का दिग्दर्शन तो मैं अपने "संस्कृत-साहित्य में काम-शास्त्र का स्थान"-शीर्षक लेख में, 'माधुरी' के किसी गतांक में, करा चुका हूँ। आज यहाँ संकेत-शास्त्र के संबंध में कुछ लिखता हूँ।

भारतीय संकेत-शास्त्र का वर्णन करने के पहले यह बता देना अनुचित न होगा कि संकेतों का प्रचार थोड़ा-बहुत प्रायः सभी जातियों में पाया जाता है। अँगरेज़ों में 'फ़ारगेट मी नाट' नाम का फूल प्रेमी और प्रेमिका की दृढ़ प्रीति का सूचक समझा जाता है; कपोत का चित्र स्नेह का परिचायक है। इसी प्रकार बलूत की शाखा और लिली का फूल भी अपना-अपना कुछ अर्थ रखते हैं। हमारे ज्योतिष में तो संकेतों से बहुत ही काम लिया गया है। उसमें ० के लिये वियत्, आकाश; १ लिये इंदु, रूप; २ के

लिये यम, रवि, चंद्र; ३ के लिये आग, त्रिकाल; ४ के लिये वेद, समुद्र; ५ के लिये इंद्रिय, भूत; ६ के लिये-रस, ऋतु; ७ के लिये मुनि, महीधर; ८ के लिये वसु, गज; ९ के लिये गो, नंद; और १० के लिये रावण के सिर, दिशा आदि संकेत हैं। इनके लिखने से इन संख्याओं का बोध होता है। इसी प्रकार फ़ारसी में भी अलिफ़, बे आदि अक्षरों के लिये संख्याएँ हैं।

अब हम काम-शास्त्र के एक प्राचीन ग्रंथ से लेकर कुछ संकेत यहाँ देते हैं।

यदि पुरुष-विषयक प्रश्न हो, तो फल का संकेत करना चाहिए। इसी प्रकार स्त्री के लिये फूल, कुल के लिये अंकुर, ब्राह्मण के लिये अनार, क्षत्रिय के लिये कटहल, वैश्य के लिये केला, शूद्र के लिये आम, राजपुत्र के लिये द्वितीया का चंद्रमा और राजा के लिये बादलों की छाया आदि संकेत कहे गए हैं। इसी प्रकार नीच कुल के लिये कोई काला फूल, सामंत-पुत्र के लिये सिर, युवा के लिये मध्याह्न, बालक के लिये कच्चा और बूढ़े के लिये पक्का फल आदि है। ब्राह्मणी के लिये कुंद का फूल, राजपुत्री के लिये मालती का फूल, वैश्य की लड़की के लिये मल्लिका (मोगरा), शूद्र की लड़की के लिये सफ़ेद कमल, मंत्री की लड़की के लिये कुमुदिनी, कामी पुरुष के लिये भ्रमर और कामिनी स्त्री के लिये आम की मंजरी आदि संकेत दिए

गए हैं। बुलाने के लिये अंकुश, छिपाने के लिये हाथी, न बुलाने या मना करने के लिये आकार (घेरा), रात के लिये ढका हुआ चाँद और दिन के लिये ढका हुआ सूर्य संकेत माना गया है।

पहले पहर के लिये शंख, दूसरे के लिये महाशंख, तीसरे के लिये पद्म और चौथे पहर के लिये महापद्म संकेत है। पाँचवें पहर के लिये राम, छठे के लिये विराम, सातवें के लिये प्रवर और आठवें के लिये प्रत्यूष संकेत किया गया है। तात्पर्य यह है कि जब इन समयों को बतलाना हो, तब ढंग से बातचीत में इन शब्दों को यथाभिमत कह देना चाहिए।

टेढ़ी बोलचाल से संकेतों का वर्णन ऊपर हो चुका है। अब हाथ आदि के इशारों के संकेत बताए जाते हैं। कुशल-क्षेम पूछने के लिये कान को, काम की दशा बताने के लिये केशों को, स्नेह के लिये छाती को और पूजा के लिये सिर को छूना चाहिए। यदि मौक़े का प्रश्न हो, तो तर्जनी (अँगूठे के पासवाली) उँगली को मध्यमा (बीच की अँगुली) के पीछे लगाकर इशारा करे। यदि रोकना हो, तो उँगलियों को सिकोड़ ले।

दिशाओं का संकेत इस प्रकार है—अँगूठा पूर्व, तर्जनी दक्षिण, मध्यमा पश्चिम और अनामिका उत्तर के लिये।

तिथियों का संकेत इस प्रकार है—सबसे छोटी उँगली को जड़ से लगाकर अँगूठे के ऊपर के भाग तक पाँवों में

मोटी-मोटी रेखाएँ हैं। यही यथा-क्रम प्रतिपदा से लेकर पंद्रह तिथियों के संकेत हैं।

यदि बाएँ हाथ को उँगलियों से इशारा किया जाय, तो शुक्ल-पक्ष और दाएँ हाथ की उँगलियों से इशारा किया जाय, तो कृष्ण-पक्ष समझना चाहिए। यदि अपना स्नेह प्रकट करना हो, तो प्रेमी प्रेमिका को और प्रेमिका प्रेमी को सुगंधित वस्तु दे, या भेजे। सुपारी और कत्था भी इस काम के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। यदि अत्यंत प्रेम प्रकट करना हो, तो छोटी इलायची, या जायफल, या लौंग दी या भिजवाई जाती है। उसी प्रकार स्नेह के टूटने के लिये एक टूटा हुआ मूँगा, चिरकाल में संयोग होने के लिये दो टूटे हुए मूँगे, काम-ज्वर के लिये कोई कड़वी चीज़ और आपस में संयोग की आशा दिखाने के लिये दाख को संकेत माना है। अपना शरीर समर्पण करने में कपास, जीवन समर्पण करने में जीरा, किसी प्रकार का भय प्रकट करने के लिये भिलावाँ और निर्भयता प्रकट करने में हरीत की संकेत है। मोम से बनाई हुई विशेष मुद्रा, जिसमें पाँचों उँगलियों के नाख़ूनों से चिह्न कर दिए गए हों, और उस पर लाल डोरा लपेट दिया गया हो, पोटली कहलाती है। इसमें मोम कामातुरता को, लाल डोरा अनुराग को और पाँचों उँगलियों के नख-चिह्न पंच-बाण (कामदेव) के प्रहार को बतलाते हैं। काम से देह

के अत्यंत पीड़ित होने पर झिझरा बुना हुआ कपड़ा, अनुराग में लाल और विराग में गेरुआ या पीला वस्त्र संकेत समझना चाहिए। वियोग में फटा कपड़ा, संगम में किनारीदार और गाँठ लगा हुआ, एक का स्नेह प्रकट करने में एक और दोनों के स्नेह में दो वस्त्र संकेत समझने चाहिए।

श्रेष्ठ पुरुषों ने पाँच प्रकार का बीड़ा बतलाया है—१-कौशल, २-अंकुश, ३-कंदर्प, ४-पर्यंक, और ५-चतुरस्त्र। स्नेह की अधिकता प्रकट करने के लिये कौशल-नामक पान-बीड़ा देना, भेजना, या दिखलाना चाहिए। अपने समीप बुलाने के लिये अंकुश, काम की आतुरता दिखाने के लिये कंदर्प और संगम का द्योतक पर्यंक संकेत है।

एक पान की पीठ पर दूसरा पान मिलाकर और काले सूत से लपेटकर देना वियोग का चिह्न है। ऐसे ही आमने-सामने से पानों को मिलाकर तथा लाल सूत से लपेटकर देना संयोग का संकेत पाया जाता है। बीच से कटा हुआ तथा काले सूत से लिपटा हुआ पान त्यागने का संकेत है। प्राणपन से संगम प्रकट करने के लिये लाल वस्त्र के सूत से सीकर पान देने का आदेश है। अत्यंत अनुराग प्रकट करने के लिये निम्नलिखित संकेत है—पान में कटी हुई सुपारी तथा केसर डालकर बाहर घिसा हुआ गीला चंदन लगाकर लपेटकर दे। अनुराग, विराग, राग और

अप्रीति, इनको बतलाने के लिये यथाक्रम, लाल, गेरुए, पीले तथा काले डोरे में माला गूँथकर दे। जिस ग्रंथ से उपर्युक्त बातें ली गई हैं, उसके रचना-काल से लेकर अब तक मानव-प्रकृति में कोई विशेष अंतर नहीं हुआ। वह अब भी वैसी ही है, जैसी तब थी। अब भी लोग आपस में संकेतों द्वारा बातचीत करते हैं, अब भी वे अंग-विकारों द्वारा अनुराग और विराग प्रकट करते हैं। पश्चिमी सभ्यता ने हमारे जीवन के सभी विभागों पर प्रकाश डाला है। हमारे खान-पान, रहन-सहन, राग-विराग और बोल-चाल, सभी पर उसका थोड़ा-बहुत रंग चढ़ा है। ऐसी दशा में इस गुप्त भाषा में भी कुछ-न-कुछ फेरफार अवश्य हुआ है। पर यह कोई नहीं कह सकता कि आजकल के युवक और युवतियाँ किसी गुप्त भाषा का व्यवहार नहीं करते। हमारा तो विश्वास है कि जब तक संसार में नर और नारी का जोड़ा है, जब तक उनमें एक दूसरे के लिये आकर्षण है, तब तक यह भाषा कभी लुप्त नहीं हो सकती; इसमें रूपांतर भले ही हो जाय।

अजेय-शक्ति



विकासवाद की दृष्टि से संसार में सबसे अधिक विकसित देहधारी स्त्री है। इन्द्रियाँ जितनी नारी के शरीर में विशेषत्व को प्राप्त हैं, उतनी नर-शरीर में नहीं। जिन सात रंगों से सूर्य का श्वेत प्रकाश बनता है, पुरुष उनमें से केवल पाँच ही को ठीक तौर पर देख सकता है। परंतु स्त्री सातों के सातों को पहचान सकती है। स्विङ्ग महाशय कहते हैं कि पुरुष का परमधाम स्त्री होना है (The ultimate destiny of man is to become a woman.)

फिर कूर्म-पुराण में लिखा है—

अग्निपुत्रा महात्मानस्तपसा स्त्रीत्वमापिरे :
भर्तारं च जगद्योनिं वसुदेवमजं विभुम्।

अर्थात् अग्निदेव के पुत्र ने तपस्या की और उसके फल से स्त्रीरूप होकर वसुदेव वर पाया। इन दोनों कथनों से भी नारी की पुरुष से श्रेष्ठता टपकती है। पौराणिक साहित्य में दुर्गा, जगदंबा, अंबालिका, महामाया, चण्डी, भवानी, सरस्वती, लक्ष्मी इत्यादि जितने भी नाम मिलते हैं, संभव है कुछ लोग उन्हें सचमुच के व्यक्ति समझते हों, परंतु मैं तो उन्हें आलंकारिक भाषा में नारी-शक्ति के ही अनेक नाम और रूप समझता हूँ।

शायद यह उपाख्यान किसी पुराण में है। जब भगवान् रामचंद्र रावण का वध करके भगवती सीता-सहित अयोध्या लौट रहे थे, तो मार्ग में रावण के मित्र, एक महा-बल राक्षस ने उन पर आक्रमण किया। रामचंद्र तथा लक्ष्मण सोच न सके कि क्या करें। उस राक्षस के रक्त के जितने बिंदु भूमि पर गिरते थे, उतने ही और राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। यह देखकर माता सीता ने पति और देवर से कहा—"आप पहले ही युद्ध से थके हुए हैं, अब मुझे युद्ध करने दीजिए।" पति की आज्ञा पाते ही उन्होंने चंडी का रूप धारण किया। उस समय उनके शरीर से ऐसा तेज निकल रहा था कि उसे सहन करने की सुरासुर किसी में भी शक्ति न थी। यहाँ तक कि राम और लक्ष्मण को भी एक ओट में छिपना पड़ा। जगन्माता ने अपनी माया से योगनियाँ रचकर उनके

हाथ में खप्पर दे दिए। अस्त्रों के लगने से जब उस राक्षस का रक्त पृथ्वी पर गिरने लगता था, तो योगनियाँ उसे पृथ्वी तक पहुँचने से पहले ही खप्पर में लेकर पी लेती थीं। इस प्रकार घोर संग्राम के बाद उस राक्षस का वध किया गया।

इस उपाख्यान का उद्देश्य स्पष्ट है। पुराणकर्ता नारी-शक्ति की पुरुष-शक्ति से श्रेष्ठता दिखलाना चाहता है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि जहाँ पुरुष का बल तथा बुद्धि हार खा जाती है, वहाँ नारी सफलता प्राप्त कर लेती है।

यह अजेय-शक्ति है। कोई भी इसे जीत नहीं सकता। बहुत समीप रहने के कारण पुरुष-समाज इसकी महत्ता को देख नहीं सकता। विधाता ने इसे राज्य करने के लिये ही बनाया है। जिस परिवार में, जिस जाति में और जिस देश में इस शक्ति का राज्य है, जहाँ इसका पूजन होता है, वहाँ सुख और शांति सदा निवास करती है। इसका राज्य प्रेम का राज्य है और प्रेम कभी किसी की हानि नहीं कर सकता। जिस पुरुष ने और जिस शक्ति ने इस शक्ति का निरादर किया है, इसके शासन के विरुद्ध विद्रोह किया है, उसका घोर अधःपतन बरन् सर्वनाश हो गया है।

पुरुष प्रायः स्त्री-दास कहलाने से घबराता है। वह इसमें अपना अपमान मानता है। मेरी स्त्री मेरी दासी है,

मैं जो चाहता हूँ, वह वही करती है, ऐसी डींग मारने में उसे प्रायः आनंद आता है। परंतु मैं तो देखता हूँ, समस्त संसार स्त्री-दास है, और ऐसी डींग मारनेवाला पुरुष दूसरों से दो रत्ती अधिक दास है, कम नहीं। स्त्री की दासता में आनंद है, जीवन की माधुरी है और ईश्वरीय नियम का पालन है। जैसे राजनैतिक जगत् में राजनियम को तोड़ने या उसका अपमान करनेवाले चोर, डाकू आदि कभी चैन और समृद्धि को प्राप्त नहीं होते, वैसे ही इस दिव्य शक्ति की छत्रछाया से बाहर रहनेवाले कभी सच्चे सुख तथा शांति का अनुभव नहीं कर सकते।

यह शक्ति कितनी महान् है, इसका पता आपको आगे लिखे दो-तीन उदाहरणों से लग जायगा।

लार्ड मार्लबरो इँगलैंड के एक बहुत बड़े सेनापति हो गए हैं। उनका अपनी सेना पर इतना दबदबा था कि उनकी सूरत देखते ही सिपाही के शरीर में कँपकँपी लग जाती थी, और उसके हाथ से, डर के मारे, शस्त्र गिर पड़ता था। एक वार लंदन के बाज़ार में उन्हें एक सिपाही हाथ में मटका उठाए जाता मिला। उनको देखते ही सिपाही के हाथ से मटका छूटकर गिर पड़ा और टूट गया। जिन लार्ड मार्लबरो का प्राणों को हथेली पर रखनेवाले सैनिकों पर इतना आतंक था, वही अपनी पत्नी के सामने बकरी के बच्चे के सदृश थर-थर काँपा करते थे।

सरकस में करतब दिखलाने के लिये सिंहों को सधाने का काम बड़ी जोखिम का है। इसमें मनुष्यों के प्राणों के जाने का हर वक्त डर रहता है। इसके लिये मनुष्य में विशेष साहस और पराक्रम की आवश्यकता है। परंतु अमरीका के एक सिंहों को पालनेवाले पुरुष (lion-tamer) के विषय में प्रसिद्ध है कि एक दिन किसी कारण रात को घर आने में उसे देर हो गई। उसकी घरवाली बहुत कड़ा शासन करती थी। ज्यों ही वह घर पहुँचा, वह झट उसे डाट-डपट करने के लिये झपटी। वह महाशय देवी का रुद्र रूप देखते ही भागकर एक सिंह के पिंजरे में जा छिपा। सिंह के पास तो वह जा नहीं सकती थी। दूर खड़ी होकर उसे ज़ोर से पुकारने लगी—"अरे कायर! बाहर निकल।" जो पुरुष सिंह से नहीं डरता था, उसी में स्त्री की डाट सहने का साहस न था।

मैंने एक बहुत बड़े अखिल भारतीय राजनैतिक नेता के पारिवारिक जीवन के विषय में सुना है कि वह जहाँ दूसरे लोगों पर अपना ख़ूब रोब रखते हैं, वहाँ गृहिणी के सामने उनकी दशा बिल्ली के सामने चूहे के सदृश होती है। वे कहा करते हैं कि मैं सरकार से तो क्या, ईश्वर से भी उतना नहीं डरता, जितना अपनी स्त्री से डरता हूँ। श्रीमतीजी के सामने उनकी सभी कल्पनाएँ विफल और होश गुम हो जाते हैं।

महारानी कैकेयी के रुद्र रूप को सहने की शक्ति दशरथ-जैसे चक्रवर्ती राजा में न थी।

बरमा में एक जज थे। वे बड़े कुलीन और ईमानदार थे। किसी की सिफ़ारिश न सुनते थे। एक बार उनकी अदालत में एक पंजाबी जाट का मुक़द्दमा आया। जाट पर एक साहूकार ने ऋण का दावा किया था। जाट बिलकुल झूठा था। जज साहब ने उसे बहुत डाट-डपट की। जाट बड़ा चतुर था। उसने अपनी स्त्री को वहाँ जज की स्त्री के पास भेजा। वह वहाँ जाकर फूट-फूटकर रोई और कहने लगी कि जज साहब ने मेरा सर्वनाश कर दिया। मेरे बच्चे भूखों मर जायँगे। मेरी रक्षा कीजिए। जज की स्त्री का हृदय पिघल गया। उसने उसके पति की सहायता करने का वचन दिया। सायंकाल जब जज महाशय घर आए, तो उसने उन्हें बड़े ही हृदय-विदारक शब्दों में जाटनी की करुण-कथा सुनाकर कहा कि आप उस बेचारे को अवश्य मुक्त कर दीजिए। वह निर्दोष है। मैंने आज तक आपसे अभी कोई सिफ़ारिश नहीं की। यदि आप उस जाट पर डिग्री करके उसे दंडित कर देंगे, तो मुझे भारी दुःख होगा। बस, जो जज हज़ारों रुपयों की घूस पर लात मारता था, जो बड़े-से-बड़े अफ़सर की भी सिफ़ारिश नहीं मानता था, पत्नी की इस अपील से प्रभावित हो गया। दूसरे दिन पेशी थी। जज

साहब का बदला हुआ मनोभाव देखकर सबको आश्चर्य हुआ।

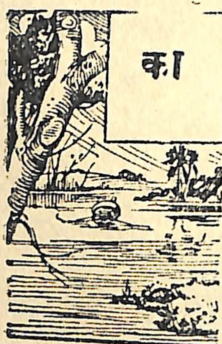
स्वामी दयानंद अमरता की खोज में भागे थे और सिद्ध-पुर के मेले में पिता द्वारा पकड़े जाने पर भी किसी प्रकार दुबारा वहाँ से छूट आए थे, परंतु हमारा विश्वास है कि यदि उनकी माता साथ होतीं, तो वह कभी भी सिद्धपुर से न भाग सकते।

इन घटनाओं के देने में हमारा उद्देश्य यह दिखलाता है कि स्त्री एक महान् शक्ति है। इसके सदुपयोग से कल्याण और दुरुपयोग से विनाश होता है। सत्ययुग में स्त्री को जितनी सामाजिक तथा आचार-विचार की स्वतंत्रता थी, उतनी त्रेता में न थी। विवाहादि के जैसे कड़े बंधन इस समय हैं, वैसे पहले न थे। इसलिये उस युग में अधिक शांति थी, और जनता अधिक चरित्रवान् थी। यह स्वतं-त्रता क्रमशः कम होती गई, यहाँ तक कि आज इसलाम ने इसका जनाज़ा ही निकाल दिया।

पत्थर की बनी देवियों के पूजन से ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है या नहीं, इस विषय में तो हम कुछ नहीं कह सकते। परंतु यह हमारी अनुभव-सिद्ध बात है कि इस महान् शक्ति की घर में पूजा करने से पुरुष को अवश्य सब कुछ प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार भक्तजन निर्जीव पिंडी को प्रसन्न करने का यत्न करते हैं, यदि वैसी ही

श्रद्धा और प्रेम से गृह-देवी को प्रतिदिन प्रसन्न रखने का यत्न प्रत्येक पुरुष करे, तो इस संसार की एकदम काया-पलट हो सकती है—इसके दुःख और क्लेश की मात्रा बहुत कुछ घट सकती है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस दिन संसार का शासन पुरुष के कठोर हाथों से निकल-कर प्रेममयी देवियों के हाथ में जायगा, उसी दिन संसार में स्थायी शांति हो सकेगी।

कामशास्त्र और स्त्रियाँ



कामशास्त्र आजकल बहुत बदनाम हो चुका है। इसका नाम सुनते ही अपनी सभ्यता का परिचय देने के लिये आजकल के मनुष्य को छिः-छिः करना आवश्यक हो गया है। कुलांगनाएँ तो इसका नाम सुनते ही लज्जा के मारे सिर नीचा कर लेती हैं। उनके सामने इसका नाम लेना भी शायद शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाने लगा हो। इस बात को जानते हुए भी मैं एक ऐसी पत्रिका में इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने का साहस करने लगा हूँ, जिसे स्त्रियाँ भी पढ़ती हैं। इसका कारण यही है कि मैं इस शास्त्र को अश्लील नहीं समझता। इसके विरुद्ध जो पक्षपात पाया जाता है, उसका

मुख्य कारण हम लोगों का अज्ञान है। जब से इस शास्त्र के आचार्यों का लोप हुआ, और इसे लोगों से छिपाकर एक रहस्य बना दिया गया, तभी से इस शास्त्र का ह्रास शुरू हुआ, और इसका सत्य ज्ञान न होने से लोग अशास्त्रीय और हानिकारक बातों को भी काम-शास्त्र के गले मढ़कर इसकी मिट्टी ख़राब करने लगे।

प्रत्येक हृदय अपने लिये जोड़ीदार चाहता है। परमेश्वर ने हमें ऐसा पैदा किया है कि हम अकेले अपूर्ण हैं। न तो पुरुष और न स्त्री अकेले तौर पर सभी मानवी व्यापारों को पूरा करने का आनंद जान सकते हैं, और न वे अकेले एक दूसरे प्राणी को जन्म दे सकते हैं। स्त्री और पुरुष की शारीरिक भिन्नता हमारे सारे जीवनों को प्रभावित करती है। संसार में और ऐसी कोई भी दूसरी चीज़ नहीं, जिसके लिये मनुष्य की अंतरात्मा इतनी लालायित रहती हो, जितनी कि वह एक दूसरी आत्मा के साथ मिलकर एक हो जाने के भाव के लिये रहती है। वह इस संयोग द्वारा अपने को पूर्ण करने का यत्न करती है। सभी युवक-युवतियों में, यदि उनकी मानसिक शक्तियों में किसी प्रकार का विकार या रोग न पैदा हो गया हो, यह इच्छा स्वाभाविक ही उत्पन्न हो जाती है।

युवावस्था के शुभागमन के साथ कुमारों और कुमारियों के शरीरों में विशेष प्रकार के परिवर्तन देख पड़ते हैं।

साथ ही मनुष्य-जाति के सहज ज्ञान के विचित्र और प्रबल आवेग उत्पन्न हो जाते हैं। दोनों के शारीरिक भेद अब उग्र रूप धारण कर लेते और रहस्यमय बनकर एक दूसरे को मोहित एवं आकर्षित करने लगते हैं। उनकी भिन्नताएँ आपस में मिलकर स्त्री और पुरुष को एकत्र कर देती हैं। उनके इस शारीरिक संयोग से संसार में सुख और शांति की लहरें फैलती हैं।

वैराग्य में, आत्म-निरूपण में, या दुनियादारी में कोई कितना ही क्यों न छिपावे, परंतु वास्तव में प्रत्येक युवक और युवती का हृदय एक जोड़ीदार के साथ आजन्म-संयोग के सुंदर स्वप्न को पूरा करने के लिये लालायित रहता है। प्रत्येक हृदय सहज ज्ञान से ही यह जानता है कि आत्मा के संभाव्य विस्तार और महत्त्व को एक जोड़ीदार ही पूर्णरूप से ग्रहण कर सकता है।

पति या पत्नी की तलाश एक ऐसे समझदार हृदय के लिये तलाश है, जो एक सुंदर परंतु हमसे असदृश शरीर में निवास करता है।

संसार में आजन्म ब्रह्मचारी रहनेवालों की संख्या बहुत ही कम है। इसलिये हमारी ये बातें उनके लिये नहीं। अधिकांश स्त्री-पुरुष विवाहित जीवन ही बिताते हैं।

युवती या युवक जितना अधिक सहृदय, रसिक और आदर्शप्रिय होता है, उतनी ही अधिक उसकी आत्मा

किसी दूसरी ऐसी समगुण आत्मा के लिये कामना करती है, जिसके साथ उसका सारा अस्तित्व संयुक्त हो सके। जिन लोगों को प्रत्येक प्रकार की सांसारिक सफलता प्राप्त हुई है, जो बड़े ही पक्के व्यवहार-कुशल हैं, उनमें भी अनेक लोग ऐसे देखे गए हैं, जिनका जन्म कोई सच्चा जीवन-संगी न मिलने से ऐसा नीरस और निरानंद बीतता है, मानो उनकी आत्मा के अंग ही किसी ने काट डाले हों। आत्मा की इस लालसा का वर्णन विलायत के महात्मा ऐडवर्ड कार्पेंटर ने बड़ी सुंदरता से किया है। वह कहते हैं—

"संसार में एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जिसके सामने मन खोलकर रक्खा जा सके; जिससे किसी प्रकार का भेद-भाव या दुराव न हो; जिसके शरीर का प्रत्येक अंग अपने ही शरीर के अंगों के सदृश प्रिय हो; जिसके साथ संपत्ति और अधिकार में मेरे और तेरे का कोई भाव न हो; जिसके मन में अपने विचार स्वभावतः ही बहकर पहुँचें, मानों वे वहाँ से नवीन प्रकाश प्राप्त करना चाहते हैं; जिसके और अपने जीवन के सभी हर्ष-शोक और अनुभवों में सहानुभूति की स्वतः गूँज उत्पन्न हो। कदाचित् आत्मा की सबसे प्यारी लालसा यही है।"

प्रत्येक व्यक्ति सुख की इच्छा से विवाह करता है। परंतु आज कितने गृहस्थ हैं, जिनको सुखी कहा जा सकता है?

काम-शास्त्र का उद्देश्य विवाह के आनंद को बढ़ाना और शोकों को दूर करने की विधि बताना है। देश भी तभी सुखी हो सकता है, जब उसमें रहनेवाले नर-नारी सुखी हों। जिनका पारिवारिक जीवन दुःखमय है, वे दूसरों पर आनंद की किरणें नहीं डाल सकते। हम विवाह करके दुःख में फँस गए, ऐसा अनेक लोग कहते हुए सुने जाते हैं। परंतु वे नहीं जानते कि अपने अज्ञान के कारण ही उन्होंने इस पवित्र संबंध को नरकमय बना लिया है। इस विषय में युवक और युवतियों को ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। परंतु उनको सत्य ज्ञान का मिलना कठिन है। वे इसे प्राप्त करें, तो कहाँ से करें? बड़ों से बात करते उन्हें लज्जा लगती है। इसलिये वे इधर-उधर अयोग्य व्यक्तियों से अयथार्थ बातें सीखते और दुःख उठाते हैं। यदि उनको इस शास्त्र का सच्चा ज्ञान कराने का कोई साधन हो, तो उन्हें कई वर्ष तक अज्ञानता के कारण जी जलाना और दुःख उठाना न पड़े। क्योंकि तब वे दूसरे लोगों के परंपरागत अनुभव से लाभ उठा सकेंगे।

कुछ लोग इस शास्त्र को अश्लील कहने का तो साहस नहीं करते, परंतु वे कहते हैं—इसकी शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि लड़के और लड़कियाँ अपने-आप उसे जान जाते हैं। वे पूछते हैं कि क्या मनुष्य का सहज ज्ञान पर्याप्त नहीं? हमारा उत्तर है—"नहीं!"

सहज ज्ञान काफ़ी नहीं। मनुष्य को प्रत्येक दूसरे व्यापार में सिखाने की आवश्यकता मानी जाती है।

बच्चे को खाना, पीना, चलना आदि क्रियाएँ मा-बाप सिखाते हैं, परंतु आश्चर्य है कि मनुष्य के इस सबसे उच्च शरीर-शास्त्र-संबंधी व्यापार की—संतानोत्पत्ति-क्रिया की—सच्ची शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती! यदि खाने-पीने की निर्दोष विधि सिखाने की बचपन में आवश्यकता है, तो काम-शास्त्र के ज्ञान की बड़ी आयु में उससे कुछ कम आवश्यकता नहीं।

बिल्ली सहज ज्ञान से अपने नवजात बच्चों का प्रबंध करना, उनको पालना तथा सिखाना जानती है; पर मनुष्य की माता को जब तक प्रत्यक्ष रूप से इस काम की शिक्षा न दी जाय या वह दूसरी स्त्रियों को देखकर उसकी विधि सीख न ले, तब तक उसे अपने बालक का प्रबंध करना नहीं आता। बिल्ली अपने सरल कर्तव्यों को केवल सहज ज्ञान से ही पूरा करती है; पर स्त्री को अपने अतीव जटिल कर्तव्यों को 'रा करना शिक्षा द्वारा सिखाया जाता है।

परमपिता परमात्मा ने अपनी संतानों के कल्याण के लिये आदि-सृष्टि में जो वेदरूपी ज्ञान दिया था, उसमें भी उन्होंने काम-शास्त्र की शिक्षा दी है। उदाहरण के लिये हम यहाँ एक मंत्र देते हैं—

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ;
या न ऊरू उशती विहर यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफम् ।
(अथर्व० १४ । २ । ३८)

काम-शास्त्र के नाम से चिढ़नेवाले लोगों की यह धारणा है कि उसके प्रचार से युवक और युवतियों के चरित्र बिगड़ जायँगे। परंतु उनकी यह आशंका निर्मूल है। युवकों और युवतियों को अज्ञानांधकार में रखकर आप उनके चरित्र की रक्षा नहीं कर सकते। बड़े-बड़े 'धर्मात्मा' लोग, जो अपने बच्चों के साथ इस विषय पर बात करना ही असभ्यता समझते हैं, ज़रा स्कूलों और कालेजों की भीतरी अवस्था देखने का यत्न करें, तब उन्हें मालूम होगा कि जिन लड़के और लड़कियों को वे सर्वथा भोले-भाले समझ रहे हैं, वे अपने साथियों से कैसी-कैसी हानिकारक और चरित्रनाशक बातें सीख चुके हैं। हमारा विश्वास है कि यदि उन्हें काम-शास्त्र की सच्ची पुस्तकें मिल सकें, तो वे झूठी बातें सीखकर हानि उठाने से बच रहें। काम-शास्त्र को न जानने से उनकी विषय-वासनाएँ शांत रहती हों, सो बात नहीं। उपन्यास, नाटक, सिनेमा बल्कि धर्म-ग्रंथों तक में कामोत्तेजक सामग्री पर्याप्त रूप से मौजूद है। वे अपने इर्द-गिर्द कुत्ते, बिल्ली, चिड़िया, कबूतर आदि पशु-पक्षियों को संभोग करते देखते हैं। क्या उनको कोई देखने से रोक सकता है ? हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि

संतानोत्पत्ति की क्रिया का उनको शास्त्रीय ज्ञान हो, तो ये प्राकृतिक बातें उन पर कभी बुरा प्रभाव न डाल सकेंगी। वे उनको देखकर भी अच्छे ही विचार ग्रहण करेंगे।

एक बात बड़े मज़े की है। जो कर्म स्वयं अश्लील या बुरा नहीं समझा जाता, उसके शास्त्रीय वर्णन को अश्लील ठहराया जाता है। आलिंगन, चुंबन और आसन मैथुन के लिये आवश्यक हैं। जो लोग विवाहित हैं, वे सब ये क्रियाएँ करते हैं, क्योंकि भगवान् ने मनुष्य की उत्पत्ति के लिये इसी 'अश्लील' विधि का विधान किया है। फिर क्यों नहीं विधाता पर भारतीय दंड-विधान की धारा २६२ तथा २६३ के अनुसार अभियोग चला दिया जाता ? न कोई ऐसी क्रिया करे और न संसार में अश्लीलता फैले। हमारा तो अपना अनुभव यही है कि जो लोग ऊपर से 'अश्लीलता' की अधिक दुहाई देते हैं, वे भीतर से दूसरों से कुछ अधिक पवित्र नहीं होते। काम-शास्त्र के ग्रंथ बेचने-वाले एक पुस्तक-विक्रेता ने मुझे बताया कि लेजिस्लेटिव असेंबली तथा कौंसिल के सदस्यों, जजों, वकीलों, पुलिस-अफ़सरों और कालेज के प्रोफ़ेसरों में से शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसने मेरा 'काम-सूत्र' का अँगरेज़ी-अनुवाद मँगा-कर न पढ़ा हो। जब यह अवस्था है, तो फिर दंभ क्यों ? मैंने स्वयं काम-शास्त्र के प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों का सारभूत, हिंदी में 'रति-विज्ञान' नाम की एक पुस्तक लिखी है। वह

अभी छपी नहीं। उसके विषय में मैंने 'माधुरी' में एक लेख भी लिखा था। उसमें मैंने यह भी लिख दिया था कि जो भाई काम-शास्त्र-संबंधी कोई बात पूछना चाहें, वे 'साहित्य-सदन, लाहौर' के पते से मुझे पत्र लिखें। मेरी इस सूचना से मेरे पास ढेरों पत्र आए हैं, और अभी आ रहे हैं। इनके लेखक सभी सदाचारी एवं उच्च शिक्षा-प्राप्त सज्जन हैं। उन पत्रों से पता लगता है कि काम-शास्त्र के शुद्ध ज्ञान का इस देश में कितना अभाव और कितनी आवश्यकता है।

काम-शास्त्र में स्त्री-पुरुष के स्वभावों, उनके नाश के कारणों, एक दूसरे को प्रसन्न रखने की विधियों और गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनाने के उपायों का वर्णन है। स्त्री किस प्रकार आचरण करे, जिससे उसका पति सदा उसके अनुकूल बना रहे, इसका भी विशेष रूप से उल्लेख है। इसलिये अच्छी भार्या और उत्तम गृहिणी बनने के लिये स्त्री को इस शास्त्र के ज्ञान की भारी आवश्यकता है। इसमें संदेह नहीं कि इस शास्त्र के ग्रंथों में बहुत-सी बातें प्रक्षिप्त हैं, परंतु उनको अलग करके प्राचीन आचार्यों के दीर्घ अनुभव से लाभ उठाना कुछ कठिन नहीं।

किंतु खेद है कि विज्ञान—सच्चाई—के मार्ग में सदा से भारी बाधाएँ पड़ती आई हैं। पुराने पक्षपातों, रूढ़ियों और धर्माडंबरों को दूर करने के लिये अनेक विज्ञान-भक्तों को कष्ट झेलने पड़े हैं। नीति के उपदेशकों और धर्म-

जीवियों की ओर से विज्ञान को 'भयानक' कहकर सदा दबाया जाता रहा है। सुक़रात को इसीलिये विष का प्याला पीना पड़ा था। इसी प्रकार 'काम-शास्त्र' के पुनरुद्धार के लिये भी कई विज्ञान-भक्तों को दुःख उठाने पड़ेंगे, तब कहीं उस पर से 'अश्लीलता' का धब्बा दूर हो सकेगा। भगवान् करें कि वह दिन शीघ्र आवे!

स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है

किसी ने ठीक कहा है, त्याग के विना प्रेम नहीं हो सकता। वास्तव में सेवा ही सच्चे प्रेम की कसौटी, प्रेम का सार और आनंद है। जो पुरुष अपनी स्त्री की भक्ति में अपने को भूल जाने के लिये तैयार नहीं, जो उसके सुख के लिये दुःख झेलने को उद्यत नहीं, जो उसका पेट भरने के लिये आप भूखा न रह सके, वह सच्चे प्रेम से अनभिज्ञ है। वह आत्म-समर्पण की उस ऊँचाई तक कभी नहीं पहुँच सकता, जिसमें सच्चा प्रेम करनेवाली स्त्री को उच्चतम सुख मिलता है।

किंतु स्त्री जिससे सच्चा प्रेम करती है, उसके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। प्रियतम के लिये प्राण

तक दे देना उसके लिये एक साधारण-सी बात है। स्त्री-जाति का यह स्वभाव है। इस देश में कितनी ही ललनाओं ने पति के लिये अपने प्राणों की आहुति दी है। वे सब सांसारिक सुखों का परित्याग करके, भरी जवानी में, मृतपति के शव के साथ हँसती-हँसती चिता में जलकर राख का ढेर हो गई हैं। इस लेख में हम कुछ ऐसी पाश्चात्य देवियों का वृत्तांत सुनाना चाहते हैं, जिन्होंने अपने प्राण-वल्लभ के लिये अपने सांसारिक सुख और संपत्ति पर लात मार दी है।

स्त्रियों के अधिकारों की प्रसिद्ध रक्षिका श्रीमती मेरी वूलस्टोनक्राफ़्ट ने कैप्टन इम्ले को लिखा था—"यदि मेरे मरने से आपको सुख हो, तो मैं बड़े हर्ष से मरने को तैयार हूँ। मेरा आपके प्रति ऐसा प्रेम है कि मैं इससे अधिक जीवन नहीं माँगती कि आपकी व्यथाओं को सहन करूँ, आपके सारे कष्टों को आपके ऊपर से हटाकर अपने ऊपर ले लूँ और जीवन के सभी आघातों से आपकी रक्षा करूँ। इसके बदले में मैं आपसे केवल इतना ही माँगती हूँ कि मुझ पर थोड़ी-सी दया रखिए, मेरे साथ कभी-कभी हँसकर बोलिए और मुझे बताइए कि यद्यपि आप मेरे प्रेम के बदले मुझे अपना प्रेम नहीं दे सकते, तथापि मेरे प्रेम को समझते और उसकी क़दर करते हैं।"

इस निपट आत्म-त्याग के भाव को वह टेम्स-नदी की

घातक लहरों के पास भी ले गई। यहाँ उसने अपनी जीवन-ज्योति को सहर्ष बुझा दिया, ताकि जिस प्रेम और जिस सुख से कैप्टन ने उसे वंचित रक्खा था, उसे वह किसी दूसरी स्त्री को दे सके।

इतिहास के पन्ने प्रेम के पवित्र नाम पर किए गए स्त्रियों के आत्म-त्याग से भरे पड़े हैं। प्रेम ही उनका अस्तित्व है। उसकी अपेक्षा वे किसी भी आत्म-संयम को बड़ा नहीं समझतीं।

गेरीबाल्डी के प्रेम के लिये उनकी स्त्री अनिटा ने अपने सुख और शांति पर लात मारकर अपने पति के साथ-साथ अनेक वर्षों तक युद्ध के कष्ट और त्रास सहर्ष सहन किए थे। वह उसके साथ मिलकर लड़ती, घायल हो जाने पर हर्ष से चहचहाती, भूख-प्यास तथा शत्रु द्वारा पीछा किए जाने पर सहस्रों विपत्तियों का सामना करती, निर्जन पहाड़ी दुर्गों में बच्चों का पालन-पोषण करती और मरते दम पति-प्रेम से मिलनेवाले सुख के लिये उसे धन्यवाद और आशीर्वाद देती गई। जैसे-जैसे वह शत्रुओं से छिपकर भागता फिरता रहा, वैसे-वैसे वह भी उसके साथ छिपती फिरती रही।

फ़्रांस की राज्य-क्रांति के समय सैकड़ों स्त्रियों ने प्रेम के वशीभूत होकर, अपने जीवन की कुछ भी परवा न कर हँसते-हँसते अभिमान-पूर्वक सिर कटवा दिए, इसलिये

कि वे भी अपने पति से स्वर्ग में जा मिलें। कोई दो वर्ष से अधिक नहीं हुए, श्रीमती विल्लट नाम की एक नवविवाहिता रूपवती युवती जीवन के समस्त सुख और भोगों से पराङ्मुख होकर अपने कोढ़ी पति के साथ पर्वत-माला के जंगलों में रहने के लिये चली गई है। वहाँ वह संसार से बिलकुल अलग है। वह देखती है कि भयंकर मृत्यु धीरे-धीरे हाथ बढ़ा रही है, तो भी कष्ट और एकांत का जीवन व्यतीत कर रही है। उसे इसी में प्रसन्नता है कि वह अपने प्रियतम के दुःख को हलका कर सकती है। वह कहती है—"वह प्रेम किस काम का, जो सुख और दुःख दोनों में समान भाग नहीं लेता, जो हर्ष में साथ रहता और शोक में छोड़ जाता है। जब तक अपने पति के जीवन को अधिक सह्य बना सकती हूँ, मैं पूर्ण रूप से सुखी हूँ, और जानती हूँ कि मैं उसे सह्य बना रही हूँ।"

प्रेम के बाज़ार में राजमुकुट तक का कुछ मूल्य नहीं। जब स्पेन की महारानी इज़ेबेला एक इटालियन याचक के पुत्र कार्लोस मार्क़ोरी को अपना हृदय दे बैठी, तब वह जानती थी कि इस प्रेम का मूल्य उसे राज-सिंहासन के रूप में देना पड़ेगा। यह त्याग उसने बिना किसी प्रकार का खेद प्रकट किए कर डाला। सन् १८६८ ई० के सितंबर-मास में एक दिन उसने अपना राज्याधिकार छोड़ दिया, और वह उसी पुरुष के साथ निर्वासन और विस्मरण में

अंतर्द्धान हो गई, जिसका प्रेम उसके लिये राजपद से अधिक मूल्यवान् था।

रूस की साम्राज्ञी एलिज़बेथ के संबंध में भी ऐसी ही बात है। वह एक गड़रिए के लड़के, अलेक्सिस रज़ूम पर मुग्ध हो गई। अलेक्सिस रज़ूम उसकी राजसभा में गायक था। वह जानती थी कि उसके साथ विवाह करने से सारी प्रजा उससे घृणा करने लगेगी और समस्त योरप उपहास करेगा, पर उसने इस बात की कुछ भी परवा न की। उसने पेरोवो नाम के एक छोटे-से गाँव में जाकर उसके साथ विवाह कर लिया, और मरण-पर्यंत, अनेक वर्षों तक, उसी किसान की पतिपरायणा पत्नी बनी रही। अपनी मृत्यु के समय वह पति के हाथ में हाथ देकर कहती है—"मैं भगवान् को धन्यवाद देती हूँ कि उसने आपके प्रेम का परम सुख मुझे प्रदान किया। यह मेरे लिये राजमुकुट से कहीं अधिक मूल्यवान् था। वास्तव में मेरे जीवन और सुख का यही सच्चा मुकुट रहा है।"

जब बड़ी कैथराइन पैटियोमकिन नाम के एक भूतपूर्व सारजेंट को अपना हृदय दे बैठी, तब इस समर्पण में उसने अपने जीवन का सबसे बड़ा सुख प्राप्त किया। उसके अंतिम दिन तक वह उसका स्वामी रहा और वह उसकी बाँदी होकर रहने में ही संतुष्ट रही। जब मृत्यु ने प्रियतम का वियोग करा दिया, तब उसके शोक का पारावार

न रहा। वह चिरकाल तक दिन-रात एकांत में बैठकर रोती और किसी से भी नहीं मिलती-जुलती थी। इस शोक में उसने ग्रिम्म को लिखा—"मुझ पर भयंकर वज्रपात हुआ है। मेरे प्रियतम, मेरे हृदय-मंदिर के देवता पैटियोमकिन, इस संसार से चल दिए। मेरे लिये जीवन निरानंद हो गया। मैं उनके पुनर्मिलन के लिये ही जीवन धारण करूँगी।"

सच्चा प्रेम करनेवाली स्त्रियों की सदा ऐसी ही दशा हुआ करती है। प्रेम के लिये वे किसी भी भोग-वस्तु का त्याग कर सकती हैं। ग्यूलेरंटी नाम के एक अप्रसिद्ध कवि के प्रति स्पेन के राजा एलफ़ोनसो की फूफी, इनफ़ेंटा जोजेफ़ाइन, का प्रेम हो गया था। वह हवाना में रिपोर्टर था। उस काम से जो थोड़ी-बहुत आय उसे होती थी, उसी से मुश्किल से वह अपना निर्वाह करता था। उन्हीं दिनों वह क्यूबा के एक धनाढ्य रोपक की रूपवती पुत्री पर आसक्त हो गया। उसने उसके पिता से भी धृष्टता-पूर्वक प्रार्थना कर दी।

रोपक ने तिरस्कार-पूर्वक उत्तर दिया—"तुम्हें ऐसी ढिठाई करने का साहस कैसे हुआ? मेरे आगे से दूर हो जाओ। जब मुझे अपनी पुत्री के लिये वर की आवश्यकता होगी, तब दिन-भर क़लम घिसकर बारह आने पानेवाले को मैं नहीं ढूँढ़ूँगा।"

इन अपमान-जनक शब्दों को सुनकर रंटी ने क्रोध से उत्तर दिया—"महाशय! मैं भी जब पत्नी ढूँढ़ूँगा, तो किसी अप्रसिद्ध रोपक के घर में नहीं, किसी राजप्रासाद में।"

रंटी स्पेन चला गया। चिरकाल तक दुर्भाग्य से घोर संग्राम करने के पश्चात् वह ग्रंथकर्ता और कवि के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उसने अपनी अत्यंत सुललित कविताओं में से अनेक को राजकुमारी जोजेफ़ाइन के कर-कमलों में समर्पित किया। राजकुमारी ने उनकी चारुता पर मुग्ध होकर कवि को अपने राज-भवन में बुलाया। कवि उसे कविताओं की अपेक्षा भी अधिक हृदयहारी जान पड़ा। उसके प्रति उसके हृदय में उज्ज्वल प्रेम उत्पन्न हो गया। एक दिन सारा स्पेन यह सुनकर चौंक उठा कि राजकुमारी इनफ़ेंटा और कवि, दोनों भाग गए, और उन्होंने वेलेडोलिड में गुप्त रूप से विवाह कर लिया है।

जिस कर्म ने इनफ़ेंटा को राजपद से वंचित कर दिया, उसके लिये उसे कभी खेद नहीं हुआ। उसके लिये तो योरप के सभी राजकुलों के द्वार बंद हो गए थे। उसे खेद न होने का कारण यह था कि कवि की प्यारी और पति-परायणा पत्नी के रूप में उसे झोपड़ी में वह सुख और आनंद मिलता रहा, जो उसे राजप्रासाद में कभी न मिला था।

बहुत वर्ष नहीं बीते, जब बवेरिया की राजकुमारी इलिज़बेथ के फ़ौज के एक प्यादे लेफ़्टनंट, हरसीफ़ीड, के

साथ भाग जाने से योरप के समस्त राजपरिवारों को भारी क्षोभ हुआ था। वह युवक वियना-सरकार के प्रधान जल्लाद का चचेरा भाई था। दो वर्ष तक इस युवक अफ़-सर के प्रति राजकुमारी का सम्मोह त्रास उत्पन्न करता रहा; परंतु उसे रोकने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं। एक दिन वह अपने प्राणवल्लभ के साथ म्यूनिच से अंत-र्द्धान हो गई और थोड़ी देर बाद यह समाचार मिला कि इटालियन आल्प्स में एक ग्राम्य पादरी ने उनका विवाह करा दिया है।

यह संयोग उतना ही सुखमय था, जितना कि अद्भुत। यह बात हमें राजकुमारी की, सन् १९२२ में, अपनी सखी के नाम निम्नलिखित लिखी हुई एक चिट्ठी से विदित होती है—"एक मिनिट के लिये भी यह कल्पना मत करो कि इस लोकाचार-विरुद्ध कर्म के लिये मुझे कभी खेद हुआ है; क्योंकि इससे मुझे परम आनंद मिला है। राजमुकुट के बदले में उस पुरुष के साथ रहने के अपने एक दिन को भी देने के लिये तैयार नहीं, जिसे मैं प्यार करती हूँ और सदा करती रहूँगी।"

राजपरिवार की उन अनेक स्त्रियों में से कुछ ही का यह वर्णन है, जिन्होंने अपने प्रियतम के लिये प्रेम के सिवा और सब कुछ त्याग दिया था। बवेरिया की राजकुमारी एलवीरा ने व्रोना नाम के राजभृत्य के साथ दौड़कर ऐसा ही त्याग

दिखाया था। स्पेन की एक दूसरी राजकुमारी एलवीरा ने, बहुत दिन नहीं हुए, एक बिलकुल अज्ञात शिल्पी से विवाह कर लिया था। जिनोवा की विधवा डचेज़ एक अप्रसिद्ध तोपची की भार्या बन गई थी। सेक्सनी की जेठी राजकुमारी लूईसा ने एनरिको टोसेली नाम के एक नवयुवक गायक की पत्नी बनने के लिये अपना राजपद छोड़ दिया था।

हाल में हमने ऐसी जो स्त्रियाँ सुनी हैं, उनमें से दो डचेज़ भी हैं, जिन्होंने अपेक्षाकृत नीच स्थिति के पुरुषों के साथ विवाह करने के लिये अपने किरीट सहर्ष उतारकर फेंक दिए हैं!

जेनलेडी एलनबरो ने ऊँट चरानेवाले एक अरब के साथ विवाह करके—जिसे लेडी बर्टन एक मैला काला आदमी कहा करती थी—संसार को क्षुब्ध कर दिया था। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि उसे अपने उस साँवले सहधर्मचारी से ही सुख मिलता था। लिखा ऐसा है कि वह उसकी प्रत्येक कामना को बाँदी की तरह पूरा करती थी। मरुस्थली में रहकर वह उसके ऊँटों का दूध दुहती, उसके लिये भोजन तैयार करती और जब वह खाने बैठता, तो उसकी सेवा में उपस्थित रहती थी। वह उस पुरुष के लिये उन घरेलू नौकरों के काम करके प्रसन्न होती थी, जो उसकी जूती का तसमा बाँधने के भी अयोग्य थे।

स्टूथमोर के छठे अर्ल को विधवा ने, जो स्काटलैंड की परम सुंदरियों में से एक थी, अपने उच्च पद से पतित हो जाज फ़ोर्ब्स नाम के अपने एक साईस के साथ विवाह कर लिया ; क्योंकि उसके सुंदर मुख और भक्ति-पूर्ण सेवा ने सुंदरी का मन मोह लिया था। कहानी इस प्रकार है कि एक दिन काऊंटेस ने साईस को अपने पास बुलाया, और कहा—"मैं चिरकाल से तुम्हारे प्रेम में तड़प रही हूँ। तुम्हारी पत्नी बनने से बढ़कर मेरे लिये जीवन में और कोई सुखद बात नहीं हो सकती।" यह सुनकर साईस को बड़ा आश्चर्य और व्याकुलता हुई।

आश्चर्य और घबराहट के वशीभूत होकर फ़ोर्ब्स ने इसका प्रतिवाद किया। उसने कहा—"श्रीमतीजी ! मेरे और अपने बीच अंतर तो देखिए। आप इस देश की सबसे बड़ी श्रीमती हैं, और मैं—जिस मिट्टी पर आप पैर रखकर चलती हैं, वह भी मुझसे अच्छी है।"

श्रीमती ने उत्तर में कहा—"आप ऐसा मत कहिए। आप मेरे लिये पद और संपत्ति से कहीं बढ़कर हैं। मैं इन दोनों चीज़ों को उस सुख के सामने, जिसे आप मुझे देने को समर्थ हैं, तुच्छ समझती हूँ।"

ऐसी सुंदरी और ऐसी सम्मानास्पद रमणी के मुख से ऐसा अभिभाषण सुनकर साईस सिवा स्वीकार करने के और कुछ न कर सका, यद्यपि वह ऐसे बेजोड़ संयोग के

दुष्परिणामों को सोचकर डरता था। इसी प्रकार ड्यूकों और राजों के वंश में उत्पन्न हुई स्ट्रथमोर की काउंटेस ने विचित्र और अद्भुत ढंग से एक साईस लड़के का पाणि-ग्रहण किया था। प्रेम के रंग ही न्यारे हैं!



स्त्री की सहिष्णुता



नारी-प्रकृति सब कहीं एक-सी है। पूर्व और पश्चिम कहीं भी चले जाइए, आपको स्त्री के मौलिक स्वभाव में बहुत कम अंतर देख पड़ेगा। यदि इँगलैंड की स्त्री सौत का नाम तक नहीं सुन सकती, तो भारतीय महिला भी उसकी कल्पना-मात्र से काँप उठती है। मुसलमानी देशों में अनेक पत्नियाँ रखने की प्रथा है ज़रूर, परंतु स्त्री का हृदय इस कुप्रथा से सदैव दुःखित रहता है। जिन लोगों को स्त्री की प्रकृति के अध्ययन करने का अवसर मिला है, वे जानते हैं कि दुराचारिणी स्त्री को पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक घृणा की दृष्टि से देखती है। वह उसे सहन तक

नहीं कर सकती। पुरुष इस विषय में उतना असहिष्णु नहीं।

स्त्री का यह स्वभाव आज का नहीं। ऐतिहासिक काल से भी बहुत पहले से हम उसे ऐसा ही देखते आ रहे हैं। परंतु अनुभव ने बताया है कि जिसे हम स्त्री की सहज प्रकृति समझते रहे हैं, वह वास्तव में उसका, विशेष प्रभावों और कारणों से प्राप्त किया हुआ, स्वभाव-मात्र था। इस औद्योगिक युग में उन पुराने प्रभावों और स्थितियों में उलट-फेर हो जाने के कारण स्त्री की सहज प्रकृति का वास्तविक स्वरूप थोड़ा-थोड़ा दृष्टिगोचर होने लगा।

यह सभी जानते हैं कि स्त्री को आज तक आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त नहीं हुई। वह अपने भरण-पोषण के लिये—रोटी के लिये—पुरुष के अधीन है। इसी पराधीनता के कारण उसे अपने अनेक आंतरिक भावों को दबाना और बदलना पड़ा है। चिरकालिक पराधीनता के कारण वे परिवर्तित भाव उसकी प्रकृति का अंग ही दीखने लगे हैं। परंतु अब समय ने पलटा खाया है। स्त्री आर्थिक पराधीनता से निकलकर स्वाधीनता लाभ करने लगी है। अध्यापिका, नर्स, डाक्टर, वकील और दर्ज़ी आदि का व्यवसाय करके अब वह अपने लिये धनोपार्जन कर सकती है। योरप और अमेरिका में तो करोड़ों स्त्रियाँ कल-कारख़ानों, दूकानों और दफ़्तरों में काम करके अपनी स्वतंत्र आजी-

विका चला रही हैं। अब वे भोजन के लिये विवाह करने और पुरुष का दबाव मानने पर विवश नहीं।

स्त्री के इस आर्थिक उद्धार से उसमें सहिष्णुता का एक नवीन भाव उत्पन्न हो गया है। उसमें उस आचार-संबंधी आदर्श के प्रति क्षमा का भाव जागृत हुआ है, जिसके प्रति उससे सदा असहिष्णुता की आशा की जाती रही है। हमारा तात्पर्य सदाचार से है। श्री० बर्टरंड रसल समाज-शास्त्र के एक बहुत बड़े पंडित हैं। उन्होंने तो अपनी एक नवीन पुस्तक में यहाँ तक लिख दिया है कि आर्थिक पराधीनता से मुक्त हुई आधुनिक स्त्री विवाह की संस्था को थामे रखने पर इतना कम ध्यान देती है कि यह संभव है कि इस संस्था का अंत में सर्वथा लोप हो जाय।

इस क्षमा-भाव के साथ-साथ दो बातें और प्रादुर्भूत हुई हैं—एक तो आर्थिक उद्धार और दूसरी विवाह में अशांति का भाव। आर्थिक रूप से स्वाधीन स्त्री विवाह को अपने लिये एक बंधन समझकर सदा अशांत रहती है।

पाठक कहेंगे कि यह अवस्था योरप और अमेरिका की हो सकती है। भारत में ऐसी सामाजिक अशांति की कोई आशंका या संभावना नहीं। परंतु यह उनका अज्ञान है। संसार-सागर के एक कोने में जो विचार-तरंग उठती है, वह वहाँ तक परिमित रहकर बंद नहीं हो जाती। वह

धीरे-धीरे सारे संसार को आंदोलित कर डालती है। इस विश्व-ब्रह्मांड में कोई भी स्थान ऐसा नहीं, जहाँ आकाश (ईथर) न हो। विचार की क्रिया से जब इस अनंत आकाश-मंडल में स्पंदन होता है, तब उसकी लहरें भूमंडल में फैल जाती हैं। कोई भी बाधा उनकी गति को रोक नहीं सकती। पश्चिम की आर्थिक स्वाधीनता का प्रभाव भारतीय स्त्री-समाज पर भी पड़ रहा है। उनके मन भी उसी भाव से आंदोलित हो रहे हैं। यद्यपि इस आंदोलन का वेग अभी बहुत मंद है, फिर भी सूक्ष्मदर्शी नेत्र इसको देख सकता है। मेरे हाथ में इस समय एक कन्या की चिट्ठी है। लेखिका पंजाब के एक प्रसिद्ध विद्यालय की शिक्षा-प्राप्त विदुषी है। अपनी माता को आर्थिक कष्ट से मुक्त करने के लिये वह अध्यापिका बनकर धनोपार्जन करना चाहती है। कुमारी कन्या का किसी दूसरे स्थान में एकाकी रहकर धन कमाना भारत की वर्तमान अवस्था में भय से रहित नहीं। मेरे इतना लिखने पर उसने जो कुछ लिखा उसे पाठक पढ़ें और विचारें कि हमारे स्त्री-समाज का हृदय-सागर किन-किन भावों से तरंगित हो रहा है। लिखा है—

"पूज्य चाचाजी!

सादर अभिवादन। बहुत दिनों से इच्छा थी कि पत्र लिखूँ, पर कई विचारों के आते ही उन्हें दबाना पड़ता

था। किंतु दुखी हृदय का करुण-क्रंदन मुझे बाधित कर रहा है कि पत्र लिखूँ। पत्र लिखने से पूर्व यह जता देना चाहती हूँ कि पुरुष-मात्र की सांत्वना कोरी सांत्वना है, जो कि बहुत कम फलवती होती है। उसको आप विचारने पर अनुभव कर सकेंगे। चाचाजी, यद्यपि हम इन सब बातों को अनुभव करती हैं, पर क्या करें, स्त्री-जाति बुरी तरह से पराधीन है। अगर वह अपने हाथ से धन कमाकर स्वतंत्र होना चाहती है, तो भी पराधीन है। क्योंकि कई एक साधन निष्ठुर पुरुष-जाति के अधीन हैं, जिनसे हमारी मुक्ति नहीं।......आपकी पुत्री"

आर्थिक स्वाधीनता से स्त्री को हाल में जो एक नई शक्ति प्राप्त हुई है, इसे वह विवाह-बंधन को दृढ़ करने और मर्यादा के आदर्श को ऊँचा करने में नहीं, परंतु उसके सर्वथा विपरीत उपयोग में ला रही है। पाश्चात्य जगत् में इससे 'तलाक़ों' की संख्या बढ़ रही है और सारा पश्चिमी समाज इस महामारी से भयभीत हो रहा है। भारत में भी पश्चिमी रंग में रँगी हुई रमणियों के वेष-भूषा, रहन-सहन, और उच्छृंखलता से धर्म-प्राण हिंदू सशंक हो रहे हैं। जो स्त्रियाँ परपुरुष के स्पर्शमात्र से अपने को पतित समझकर अपनी जान पर खेल जाया करती थीं, उन्हीं की बेटियाँ आज नाचघरों में परपुरुषों के साथ नाच करने में तनिक भी संकोच नहीं करतीं।

जो देश उन्नतिशील कहे जाते हैं, उनमें विशेष रूप से 'तलाक़' अर्थात् दांपत्य-विच्छेद घोर रूप से बढ़ रहा है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में इसकी संख्या सबसे अधिक है। स्त्री की स्थिति जितनी इन संयुक्त-राज्यों में उत्तम, स्वतंत्र और संभ्रांत है, उतनी संसार के और किसी भी देश में नहीं। इसलिये हम तलाक़ की वृद्धि और स्त्रियों के आर्थिक उद्धार में संबंध स्थापित करने से नहीं रुक सकते। संयुक्त-राज्य अमेरिका में सन् १९२२ में १,४८,८१५ तलाक़ हुए; सन् १९१६ में १,१२,०३६; सन् १९०६ में ७२,०६२ और सन् १८९६ में केवल ४२,९३७ अर्थात् छब्बीस वर्ष की छोटी-सी अवधि में सन् १८९६ की संख्या से १,०५,८७८ तलाक़ अधिक हुए। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वहाँ के प्रत्येक सात विवाहों में से एक विवाह की तलाक़ में समाप्ति हो जाती है। इँगलैंड में सन् १९२१ में ३,४६४ तलाक़ हुए और सन् १९१४ में केवल १,३४८। इस वृद्धि का एक बड़ा कारण महासमर में होनेवाले असाधारण विवाह थे। फ्रांस और जर्मनी में तलाक़ों की संख्या देखकर सिर चकराने लगता है। सन् १९२२ में फ्रांस में ३३,००० और जर्मनी में ३९,२१६ तलाक़ हुए।

अब इसके साथ स्त्रियों की आर्थिक मुक्ति पर भी ध्यान दीजिए। इस संबंध में केवल इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि सन् १८८० में अमेरिका में २६,४७,१५७ स्त्रियाँ

नौकरी करती थीं, और सन् १९२० में उनकी संख्या बढ़कर ८५,४६,५११ अर्थात् उस देश की संपूर्ण जन-संख्या के सोलहवें अंश तक पहुँच गई। सन् १९२० में काम करके धन कमानेवाली स्त्रियों की संख्या १६,२०,२८१ थी, परंतु सन् १८९० में उनकी संख्या ५,१५,२६० से अधिक न थी। केवल तीस वर्ष की छोटी-सी अवधि में कितनी क्षोभकारी वृद्धि हुई है। जाति, परिवार या पुरुष की दृष्टि को छोड़कर भी यदि हम केवल स्त्री की दृष्टि से ही विचार करें, तो भी कहना पड़ता है कि जितना अपनी रोटी आप कमा सकने की शक्ति ने स्त्रियों को मर्यादा, लोकाचार और रूढ़ि की अवज्ञा करने में समर्थ किया है, उतना कोई भी दूसरी चीज़ न कर सकती थी।

जहाँ भी और जब भी स्त्रियों का बस चला है, सामान्यतः वे अपने लिये रहन-सहन के नियम आप बना लेती रही हैं। यह सचाई आपको सारे इतिहास में देख पड़ेगी। गणिकाओं, नर्तिकाओं, नटियों और बड़ी धन-संपत्ति की अधिकारी स्त्रियों के लोकाचार के विरुद्ध कार्यों के प्रति जनता की ओर से जो क्षमा का भाव दिखलाया जाता रहा है, उसका स्पष्टीकरण इसी से होता है। पुरुषों से आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के कारण, वे अपनी इच्छा के सिवा किसी भी पुरुष का कहना मानने पर विवश नहीं हुईं। स्त्रियों को अपनी इच्छा के अनुसार

चलाने के लिये पुरुष के हाथ में जो अमोघ कोड़ा रहा है, वह स्त्रियों की आर्थिक परतंत्रता के सिवा और कुछ नहीं था।

जिस समय पश्चिम में स्त्रियों को मताधिकार देने का आंदोलन आरंभ हुआ था, हो सकता है, उस समय थोड़े-से मनुष्यों ने अनुभव किया हो कि जब स्त्रियों को एक बार भोजन, शरण और वस्त्र के लिये पिता, पति या दूसरे पुरुष-संबंधियों के आश्रय की आवश्यकता न रहेगी, तब फिर पुरुषों का उन पर कुछ भी अधिकार न रह जायगा। हाँ, जितना अधिकार वे स्वयं चाहेंगी कि पुरुष उन पर रक्खे, उतना बेशक रह जायगा। यदि किसी पुरुष को इसका विचार आया भी होता, तो भी वह यह कल्पना नहीं कर सकता था कि स्त्रियाँ इतनी स्वतंत्र हो जायँगी, जितनी वे इस समय हो रही हैं। अपने से अधिक कमाने-वाली स्त्री पर आधिपत्य जमाना वास्तव में पुरुष के लिये प्रायः असंभव है।

स्त्रियों के अधिकारों के पक्षपातियों ने संग्राम के जोश के दिनों में स्त्रियों के आर्थिक उद्धार से उत्पन्न होनेवाले इन परिणामों के इस रूप पर अधिक बल नहीं दिया। यह उनकी एक चालाकी थी। स्त्रियों की आथक स्वाधीनता विवाह में आक्रमण और रक्षा के अस्त्र का काम देगी, यदि वे स्पष्ट रूप से ऐसा कह देते, तो उनका काम बिगड़

जाता। उनकी युक्तियाँ वैसी ही अगंभीर और भावुकता-मयी थीं, जैसी कि स्त्रियों की पत्रिकाओं में छपनेवाली गल्पें होती हैं। वे कहते थे कि अब तक वास्तव में स्त्रियों के पास विवाह ही आजीविका का एक-मात्र साधन रहा है। स्त्रियाँ रोज़गार की ख़ातिर इसे ग्रहण करने के लिये वैसी ही विवश हैं, जैसे अपने रोज़गार के लिये पुरुषों को क़ानून, चिकित्सा या इंजीनियरी पढ़नी पड़ती है या व्यापार करना पड़ता है।

इस अन्याय-पूर्ण अवस्था का परिणाम यह हुआ है कि जहाँ पुरुष तो केवल विचित्र आनंद के लिये विवाह करते हैं, वहाँ स्त्रियाँ सदा इस भाव से नहीं करतीं। उनमें से बहुत-सी केवल आर्थिक प्रयोजनों से विवाह-बंधन में पड़ती हैं। स्त्रियों के अधिकारों के पक्षपोषक उसे घोर अन्याय बताकर स्त्रियों के लिये आजीविका का कोई दूसरा मार्ग भी खोल देने पर ज़ोर दे रहे हैं।

यहाँ तक तो यह तर्क बहुत प्रशंसनीय और अकाट्य है। परंतु वे इस तर्क को विवाह-संस्कार के आगे नहीं ले जाते। वे इस बात पर विचार नहीं करते कि जिस आर्थिक स्वाधीनता के कारण स्त्रियाँ पुरुष के साथ पेट भरने के लिये नहीं, वरन् प्रेम के लिये विवाह करने में समर्थ हो जायँगी, वही उन्हें, प्रेम न रहने पर या ज़रा-सी खटपट हो जाने पर, पति को छोड़कर चले जाने में भी

समर्थ कर देगी। दूसरे शब्दों में तीस-पैंतीस रुपया मासिक कमा लेने की योग्यता ने स्त्रियों के हाथ में एक घातक अस्त्र दे दिया है।

हम आप एक काम छोड़कर दूसरा काम करने में समर्थ हैं, स्त्रियों में इस बात के ज्ञान-मात्र का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि विवाहिता स्त्रियाँ संयम को कम सहन करती हैं, प्रभुता अधिक दिखाती हैं, अधिक दबाव डालती हैं, और उनमें कामाचारिता बढ़ गई है। इसी भाव की जागृति से पश्चिमी जगत् में दांपत्य-विच्छेद की वृद्धि हुई है। यह स्पष्ट है कि जो विवाहिता स्त्री आर्थिक रूप से अपने को सुरक्षित रखने में असमर्थ है, उसके लिये उन नाना परीक्षाओं को वहन करना आवश्यक है, जिनको अपनी रोटी आप कमा लेनेवाली स्त्री कभी सहन नहीं करेगी। इस बात की आशंका हो रही है कि तितिक्षा, आत्मत्याग और नारी-धर्म आदि जिन सद्गुणों का उपदेश पंडित लोग दुःखी दंपतियों को दिया करते हैं, उन पर वह स्त्री बहुत कम ध्यान देगी, जो अपने को विवाह की दुर्दांत अवस्थाओं का शिकार समझती है, और जो जानती है कि मैं आप अपने लिये पर्याप्त रोटी कमा सकती हूँ।

कहा जाता है कि आजकल की स्त्रियों और उनकी दादी-परदादियों में आकाश-पाताल का अंतर है। परंतु

जिन अवस्थाओं में आजकल की स्त्रियाँ रहती हैं, क्या वे उन अवस्थाओं से मूलतः भिन्न नहीं, जिनके अधीन कि उनकी माताएँ रहती थीं ? हो सकता है कि पिछली पीढ़ी की स्त्रियाँ अपनी पुत्रियों के साथ तुलना करने पर साक्षात् धर्म-मूर्तियाँ प्रतीत होती हों, परंतु जो लोग आधुनिक स्त्री की निंदा करके उनकी बड़ाई करते हैं, वे इस बात को भूल जाते हैं कि जिस नारी-धर्म के ह्रास पर वे इतना दुःख मान रहे हैं, वह इस बात का फल था कि स्त्रियाँ विवाह में आत्म-समर्पण करने के सिवा और कुछ न कर सकती थीं—उनके लिये आजीविका का कोई दूसरा मार्ग ही खुला न था। आधुनिक स्त्री में जो आज्ञानुवर्तिता की कमी है, उसका एक कारण है। उस पर इस बात का प्रकाश हो गया है कि जब मैं तीस-चालीस रुपए मासिक स्वयं कमा सकती हूँ, तब मुझे किसी पुरुष या किसी चीज़ के सामने सिर झुकाने की क्या आवश्यकता है।

स्त्रियों के उद्धार से जहाँ एक ओर विवाहित जीवन की शांति भंग हो गई है, वहाँ साथ ही अपनी जाति के आचार के प्रति स्त्रियों का भाव बहुत शीघ्रता से बदल गया है। मताधिकार चाहनेवाली (सफ़्रेजिस्ट) स्त्रियाँ स्त्री और पुरुष के लिये सदाचार की एक ही कसौटी बनाने पर ज़ोर दे रही हैं। परंतु इसके लिये पुरुष के आदर्श को

ऊँचा करके स्त्री स्त्री के आदर्श के साथ मिलाने का नहीं, बरन् स्त्रियों के आदर्श को नीचा करके पुरुष के आदर्श के निकट ले आने का यत्न किया जा रहा है। गत योरपीय महासमर में जो उतार-चढ़ाव हुए हैं, उनका परिणाम यह देखने में आ रहा है कि पुरातनी शुद्धाचारिणी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी स्त्री को जिस घृणा प्रत्युत शत्रु की दृष्टि से देखा करती थीं, उनकी वह घृणा और शत्रुता इतनी कम हो गई है कि कई अवस्थाओं में तो वह प्रायः लुप्त ही हो गई है। जो अनाचार कहा जाता है, उसके प्रति आधुनिक स्त्री के भाव में ऐसा घोर परिवर्तन वर्तमान जीवन का बड़ा ही आश्चर्य-जनक रूप है। इसका असर पतिपरित्यक्ता और कुलटा स्त्री की स्थिति पर भी पड़ा है, क्योंकि अब वह स्थायी रूप से समाज से बहिष्कृत नहीं समझी जाती। प्रेम न रहने पर भी पति के अधीन बनी रहने के लिये जो प्रबल उत्तेजन था, वह भी विवाह में की हुई पतिव्रता रहने की प्रतिज्ञा की अवज्ञा करने की इच्छा रखनेवाली स्त्री के लिये दूर हो गया।

अनाचार के प्रश्न के प्रति स्त्रियों के भाव में इतने भारी परिवर्तन का कारण क्या है? हमने ऊपर कहा है कि महासमर से होनेवाले उतार-चढ़ाव का इसके साथ कुछ संबंध है। परंतु लोक-प्रिय होने के लिये नवीन विचारों के अपने अंदर भी विशेष गुण का होना आवश्यक है। इसके

विना वे चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकते। इसी प्रकार स्त्रियों के प्रति स्त्रियों का नवीन क्षमा-भाव ठोस आर्थिक आधार पर अवलंबित है।

समाज-शास्त्रियों का कहना है कि मर्यादा का पालन न करनेवाली "बुरी" स्त्रियों के प्रति "अच्छी" स्त्रियों की शत्रुता का कारण यह है कि "बुरी" स्त्रियाँ "कमीनी" होती हैं। अर्थात् स्मरणातीत युग से स्त्रियाँ पुरुषों के साथ आयु-भर का ठेका—विवाह—करने पर हठ करती आई हैं। इसके सिवा वे कुछ कर भी नहीं सकती थीं, क्योंकि अपनी रोटी कमाने के लिये उनके पास और कोई साधन ही नहीं था। विशेष रूप-लावण्य रखनेवाली स्त्रियों की संख्या सदा बहुत ही कम हुआ करती है। अल्प कालव्यापी ठेकों से उनकी भी आर्थिक दशा अनिश्चित रहती है। स्त्री का रूप भी सदा नहीं रहता। इसलिये आर्थिक दासता में फँसी होने के कारण सामान्य स्त्री के लिये आयु-भर का ठेका करना ही आवश्यक है।

फलतः यह बात स्वाभाविक थी कि जो स्त्रियाँ मज़दूर-संघ बनाने की पक्षपातिनी थीं, वे उस स्त्री को "कमीनी" या "बुरी" ठहरातीं, जो संघ द्वारा नियत की हुई मज़दूरी से कम पर काम करना स्वीकार करती है। "अच्छी" स्त्रियाँ जो प्रकोप "बुरी" स्त्रियों के प्रति प्रकट करती थीं, वह ठीक उसी प्रकार का था, जो मज़दूरी को बढ़वाने की

इच्छा करनेवाला मज़दूर कम मज़दूरी स्वीकार करके उसे हानि पहुँचानेवाले दूसरे मज़दूर के प्रति अनुभव करता है। मज़दूर-जगत् का "कमीना" मज़दूर-संघ (व्यापार-संघ) के नियमों का पालन न करके साधारण मज़दूर के लिये जीवन को अधिक कठिन बना देता है ; इसी प्रकार स्त्री-जगत् की "कमीनी"—पुंश्चली थोड़े समय के लिये पुरुष के साथ संबंध जोड़कर साधारण स्त्री को—जिसके पास अब तक पेट भरने का एक-मात्र साधन विवाह ही था—हानि पहुँचाती रही है।

हम ऊपर बता चुके हैं कि अब स्त्रियों के लिये आजीविका का साधन एक-मात्र विवाह ही नहीं रह गया। वह अब और सैकड़ों रीतियों से रोटी कमा सकती हैं। फलतः पुंश्चली और उसके काम अब "अच्छी" स्त्री को उतनी हानि नहीं पहुँचा सकते। पुंश्चली आज चाहे कितना ही उपद्रव करे, चाहे वह अपनी कुचालों से "अच्छी" स्त्री को विवाह से भी वंचित क्यों न कर दे, परंतु ईश्वर को धन्यवाद है कि अब वह उसे रोटी से भूखी नहीं मार सकती। क्योंकि अब उसकी रोटी विवाह पर आश्रित नहीं रही। फलतः "अच्छी" स्त्री के पास "बुरी" स्त्री के प्रति शत्रुता का भाव रखने के लिये वही पहला कारण नहीं। "अच्छी" स्त्री को पुंश्चली से जो डर पहले लगा रहता था, आज उसका दशांश भी नहीं।

स्वभावत: ही स्त्रियाँ पुंश्चली के डर का शोर कोठे पर खड़ी होकर नहीं मचाती रहीं। ऐसा करने से वे पुरुष की प्रभुता के गढ़े में और भी गहरी गिर पड़तीं। क्योंकि दूसरों के डर का फ़ायदा उठाना मनुष्य के लिये स्वाभाविक है। इसके विपरीत उन्होंने सामाजिक बहिष्कार की पूर्ण पद्धति के द्वारा पुंश्चली से बदला लेने के लिये एक प्रबल संगठन तैयार किया। व्यक्तिरूप से गणिकाओं के हाथ में सदा बड़ी भारी शक्ति रही है, परंतु समष्टिरूप से वे उन सरल साधारण और सामान्य स्त्रियों की अनंत सेना की बराबरी करने में सर्वथा असमर्थ रही हैं, जिनका आदर्श वाक्य "आयु-भर के लिये विवाह" है।

सामाजिक बहिष्कार की इस पूर्ण रूप से संगठित और कृत्रिम पद्धति से उन स्त्रियों के प्रति धीरे-धीरे सच्ची शत्रुता और घृणा का भाव उत्पन्न हुआ, जो जीवन से कम अवधि के लिये ठेका लेने को तैयार थीं। स्त्रियों के इस घृणा-भाव में पुरुषों ने भाग नहीं लिया, परंतु घर की चहारदीवारी में शांति बनाए रखने के लिये वे उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते रहे।

अच्छा, तो अनाचार के प्रति स्त्रियों के इस नवीन क्षमा-भाव को रोकने के लिये क्या करना चाहिए? क्या उनकी आर्थिक स्वाधीनता को छीनकर उन्हें फिर उसी गर्त में ढकेल देना चाहिए, जिससे निकलने का उन्होंने

भूरि प्रयत्न किया है ? मान लीजिए कि किसी प्रकार ऐसा करना संभव भी हो जाय, तो फिर क्या होगा ? ये सब ऐसे प्रश्न हैं, जो पाश्चात्य जगत् को चिंतित कर रहे हैं और जिनकी चिंता भारत को भी शीघ्र ही करनी पड़ेगी।



सती-धर्म के पालन के कुछ उपाय



प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की पवित्रता पर बहुत अधिक ज़ोर दिया जाता रहा है। इसका एक कारण है। माता वह स्रोत है, जिससे संतान-सरिता विस्तृत होती है। स्रोत के गँदला होने से उससे निकलनेवाली नदी का जल स्वच्छ नहीं हो सकता। माता में दोष आ जाने से संतान भी बिगड़ने से नहीं बच सकती। यही कारण है कि समाज में शांति और पवित्रता को बनाए रखने के लिये शास्त्रकारों ने पतिव्रता ही को स्त्रियों के लिये परम धर्म ठहराया है।

आज हमें उन उपायों पर विचार करना है, जो सती-

धर्म के पालन में सहायता दे सकते हैं। स्त्रियाँ चिरकाल से अज्ञानांधकार में पड़ी हैं और अज्ञानी मनुष्य को सन्मार्ग पर चलाने के लिये दो ही चीज़ें काम देती हैं— एक भय, दूसरा लालच। यही कारण है, जो पुराने ग्रंथों में पतिव्रता स्त्री को स्वर्ग में अनंत सुख और व्यभिचारिणी को नरक में महाकष्ट मिलने की बात लिखी मिलती है। परंतु वास्तव में देखा जाय, तो मनुष्य को जितना यथार्थ ज्ञान गिरने से बचाता है, उतना भय और लालच नहीं। हमारा विचार है कि यदि युवक और युवतियों को जननेंद्रियों की पवित्रता, वीर्य की महत्ता और व्यभिचार से होनेवाली हानियों का भली भाँति ज्ञान माता-पिता करा दिया करें, तो वर्तमान की अपेक्षा उनका चरित्र बहुत मज़बूत हो सकता है।

स्त्री के सतीत्व की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व स्त्री पर डालना ठीक नहीं। समाज का भी इस विषय में बहुत कुछ कर्तव्य है। पंजाब में एक कहावत है—"राँडें तो रहती हैं, यदि मुसटंडे रहने दें।" इसका अभिप्राय यही है कि सतीत्व की रक्षा बहुत कुछ अवस्थाओं पर निर्भर है। अवस्थाओं को ऐसा बनाना, जिनमें सतीत्व का पालन सुगम हो, समाज का परम कर्तव्य है। तभी वह स्त्री से सती रहने की आशा कर सकता है।

यह एक प्रमाणित सत्य है कि स्त्री का पतन उतनी

जल्दी नहीं होता, जितनी जल्दी कि पुरुष का होता है। पुरुष की कामवासना एक ऐसे मनुष्य के सदृश है, जो ऊँघ रहा है और जो ज़रा-सी आवाज़ देने पर जाग उठता है। इसके विपरीत स्त्री की कामवासना बहुत गहरी दबी पड़ी होती है। उसे जागृत करने के लिये बहुत देर लगती है। परंतु एक बार उत्तेजित हो जाने पर फिर वह बहुत प्रचंड रूप धारण कर सकती है। ऐसी अवस्था में पुरुष तो अपने को सँभाल भी सकता है, परंतु स्त्री के लिये सँभालना कठिन हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि सतीत्व के नाश का भाव पहले स्त्री में उत्पन्न नहीं होता। पुरुष ही उसकी गिरावट का आदि कारण बनता है।

एक बात और भी है। स्त्री के चरित्र का नाश जितना अधिक छोटी आयु में होता है, उतना प्रौढ़ अवस्था में नहीं होता। प्रायः देखा गया है कि जितनी स्त्रियाँ वेश्या-वृत्ति धारण करती हैं, उनका चरित्र प्रायः बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में ही नष्ट हो चुका होता है। इसलिये इस बाल्य-काल में माता-पिता तथा संरक्षकों को कन्या के चरित्र की विशेष प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। फिर बड़ी होकर उसके गिरने की संभावना बहुत कम हो जाती है।

यह युग भारतवासियों के लिये अभाव का युग है। दूध और घी आदि पौष्टिक पदार्थ, जो हम लोगों के जीवन के आधार थे, उनका अब अभाव-सा हो गया है। इससे

हमारे शरीर दुर्बल हो गए हैं और रोगों के रोकने की शक्ति भी नष्टप्राय हो गई है। इस शारीरिक दुर्बलता का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ है कि हमारे समाज में इंद्रिय-संयम का सर्वथा ह्रास हो रहा है। मांस, मदिरा और मैथुन का प्रचार दिन-पर-दिन बढ़ रहा है। जो आनंद एक बलिष्ठ और संयमी मनुष्य को अपने भीतर से प्राप्त होता है, उसकी प्राप्ति के लिये आधुनिक स्त्री-पुरुष कृत्रिम उपायों का आश्रय लेते हैं। आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं, आमदनियाँ कम हो गई हैं और इंद्रियों का संयम नष्ट हो चुका है। इसका कुफल यह हुआ है कि शहर में रहनेवाली दरिद्र स्त्रियाँ, जो भोग-विलास से मन को नहीं रोक सकतीं, व्यभिचार द्वारा अपनी आय को बढ़ाने पर विवश होती हैं। थोड़े वेतनवाले क्लर्कों, बाबुओं और मज़दूरों की स्त्रियों के आचार भ्रष्ट होने का प्रधान कारण यही होता है। यदि लड़कियों के हृदय पर पहले ही से धार्मिक शिक्षा द्वारा भोग की अपेक्षा त्याग और सादा जीवन का माहात्म्य अंकित करने का यत्न किया जाय, तो सतीत्व की रक्षा में उन्हें बड़ी सहायता मिल सकती है। अपने प्राचीन इतिहास में हम देखते हैं कि राजपुत्रियाँ तक निर्धन ऋषियों के साथ भी विवाह करके अपने को सुखी रख सकती थीं। परंतु आजकल की युवती में यह बात नहीं मिलती। वह ऊपर से स्वतंत्रता और अधिकार का डींग मारती

हुई भी भोग-विलास की सामग्री के लालच से डबल रंडवे के साथ विवाह करने में लज्जा का अनुभव नहीं करतीं। यह धन की ग़ुलामी उसके पतन का कारण है। इँगलैंड की कोमलांगी किशोरियाँ इसी इंद्रिय-संयम के अभाव से आफ़्रिका और आस्ट्रेलिया के आचारहीन गोरों की पैशाचिक विषय-वासना को तृप्त करने का साधन बनना स्वीकार करती हैं।

इस समय प्रकृति-प्रेम दिखाई नहीं देता। काम-वासना की तृप्ति को ही दुर्बलेंद्रिय नर-नारी भूल से प्रेम का नाम दे रहे हैं। मनुष्य की आवश्यकताएँ जितनी बढ़ती हैं, उतना ही अधिक वह इंद्रियों का दास बन जाता है। प्राचीन काल में युवतियाँ धन के पीछे न भागकर सच्चे प्रेम और शौर्य की क़दर करती थीं। इसलिये उनमें गिरावट बहुत कम आती थी।

ऊपर की बातों से यह न समझा जाय कि इस समय सती-धर्म का पालन नहीं हो सकता। इस समय भी भारत में सतियों की संख्या सब देशों से अधिक है। फ़ारस, अफ़ग़ानिस्थान, मिसर इत्यादि देशों के इतनी जल्दी मुसलमान हो जाने का कारण उन देशों की स्त्रियों के चरित्र की दुर्बलता थी। वे मुसलमान-विजेताओं के धन-दौलत के लोभ में आकर उनसे लिप्त हो जाती थीं। परंतु भारत की सतियाँ सांसारिक सुख-संपत्ति को तुच्छ समझकर

पारलौकिक सुख की आशा में कष्ट सहती हुई भी सती-धर्म का पालन करती थीं। उन्हीं की कृपा से आज तक आर्य-जाति और आर्य-सभ्यता का अस्तित्व है।

हम ऊपर कह आए हैं कि अज्ञान में रहकर या परदे में छिपकर सतीत्व की रक्षा नहीं हो सकती। इसके लिये यथार्थ ज्ञान द्वारा अपने चरित्र-बल को बढ़ाने की आवश्यकता है। जिस देवी का चरित्र दृढ़ है, उसका कोई भी दुष्ट कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हमारे देखने की बात है। दिल्ली रेलवे-स्टेशन के मुसाफ़िरख़ाने में एक स्त्री बैठी थी। उसके निकट ही एक पुरुष-मुसाफ़िर बैठा था। वह स्त्री टिकट लेने के लिये जाने लगी, तो उस पुरुष से कहने लगी कि मेरे बिस्तरे का ज़रा ख़याल रखना। उस पुरुष ने उससे कोई अश्लील मख़ौल कर दिया। बस, फिर क्या था? उस स्त्री ने अपना स्लीपर उतारकर उसके सिर पर तड़ातड़ ठोंकना शुरू कर दिया। यह देख बहुत-से लोग वहाँ इकट्ठे हो गए और उस पुरुष को ही फटकारने लगे।

इसी प्रकार एक मरतबा की बात है, कराची-मेल के इंटर के डिब्बे में एक महाराष्ट्र देवी अकेली बैठी थी। वह युवती और रूपवती भी थी। एक दुष्ट योरपियन गार्ड बार-बार आकर उस डिब्बे में झाँकने लगा। एक-दो बार तो वह देवी चुप रही, परंतु तीसरी बार आकर ज्यों ही उसने खिड़की के निकट मुँह किया, देवी ने इतने ज़ोर

से उसके मुँह पर थप्पड़ मारा कि वह सी-सी करता वहाँ से भाग गया। स्टेशन पर कोलाहल मच गया कि यह स्त्री कोई ईसाई है, उसने गार्ड को मारा है। परंतु उसने अँगरेज़ी में कहा कि मैं आस्तिक हिंदू हूँ, और उस दुष्ट की ख़बर लेने के लिये समर्थ हूँ।

कई बरस की बात है, मैं होशियारपुर से इक्के में जालंधर आ रहा था। उसी इक्के में एक युवती स्त्री भी बैठी थी। बातचीत से मालूम हुआ कि उसके पति काशी में दूकान करते हैं, और वह काशी से अकेले मायके आई है। मैंने पूछा—आप अकेली इतनी लंबी यात्रा करने का साहस कैसे करती हैं, क्या मार्ग में कोई दुर्घटना होने का भय नहीं रहता है? उसने कहा—एक मरतबा की बात है, मैंने स्टेशन पर एक मिठाईवाले को मिठाई देने के लिये पुकारा, तो एक दुष्ट बोला—'हुक्म हो, तो मैं ला दूँ?' तब मैंने वहीं उस दुष्ट को फटकारना शुरू कर दिया। दूसरे लोगों ने भी उसे डाँट-डपट की। यदि मैं उसकी बात को चुपचाप सहार जाती, तो वह अवश्य कुछ-न-कुछ कुचेष्टा करता। ऐसे दुष्टों को तत्काल डाँट देना चाहिए। झूठी लज्जा ऐसे समय पर हानिकारक होती है।

उसने एक बात और भी कही कि मैं पुरुष और कुपुरुष को पहचान लेती हूँ। इसलिये मैं दुष्टों के फंदे में नहीं फँस सकती।

जालंधर पहुँचकर हम इक्के से उतर बैठे। मैं उससे अलग हो गया। इतने में एक युवक आकर मुझसे परामर्श लेने लगा कि मैं एक लड़का को भगा लाया था। अब मैं उसे वापस भेजना चाहता हूँ। मैं कैसे भेजूँ? मेरे पकड़े जाने का डर है। मैं उसे कुछ बता ही रहा था कि उस स्त्री ने मुझे अपने पास बुलाकर कहा—इस दुष्ट के साथ बातें मत करो और मेरे पास आकर बैठ जाओ। मैं हैरान था कि उस स्त्री का मेरे साथ कोई संबंध नहीं, परंतु यह मुझ पर ऐसे शासन कर रही है, जैसे मेरी भाभी हो। अस्तु, मैं उसके पास बैठ तो गया, परंतु मैंने उससे पूछा कि तुम मुझे कैसे जानती हो कि मैं अच्छा आदमी हूँ, और मेरे मन में मैल नहीं है। मैं तुम्हारे पास कैसे बैठ सकता हूं। वह बोली—मुझमें इतना भी विवेक न हो, तो मैं काशी से घर कैसे पहुँचूँ। पति को साथ लाने से तो व्यर्थ में साठ रुपया का किराया और कार-बार की हानि हो। मैंने देखा कि वह वस्तुतः बड़ी अनु-भवी थी। अनुभव-शून्य स्त्री दुष्टों के हथकंडों में बड़ी सुगमता से फँसकर दुःख पाती है।

यह विषय बहुत व्यापक है। लिखने को बहुत-सी बातें हैं। परंतु लेख पहले ही लंबा हो गया है। इसलिये अब हम दो-चार सूत्र लिखकर इसे समाप्त करते हैं।



नित्य किसी धार्मिक ग्रंथ का पाठ किया करे, जिससे ईश्वर का भय उसके मन में सदा बना रहे।

पृष्ठ-संख्या २०५

१—विवाहित स्त्री को अपने मायके में बहुत दिन नहीं रहना चाहिए।

२—जहाँ तक संभव हो, पति-पत्नी एक दूसरे से अलग न रहें।

३—एकांत में परपुरुष से वार्तालाप न करे।

४—भोग के जीवन को त्याग के जीवन के सामने तुच्छ समझे।

५—संतान और पति के साथ अनुराग को बहुत बढ़ावे।

६—मेरे बनाए "रति-विज्ञान"-नामक ग्रंथ के "स्वदार-रक्षा" नाम के प्रकरण को ध्यान-पूर्वक पढ़े, क्योंकि उसमें बताया गया है कि दुष्ट पुरुष किस प्रकार स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करने का यत्न करते हैं, और किन-किन लक्षणोंवाली स्त्रियों और पुरुषों में जल्दी गिरावट आती है। इसको जान लेने से वह दुष्टों की चालों को समझने लगेगी, और अपने सतीत्व की रक्षा कर सकेगी।

७—नित्य किसी धार्मिक ग्रंथ का पाठ किया करे, जिससे ईश्वर का भय उसके मन में सदा बना रहे। इसके लिये "सत्यार्थ-प्रकाश" बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

वेश्या-वृत्ति



परंपरा-गत धर्मानुष्ठान, आचरण और प्रतिष्ठित रूढ़ियाँ सब मिलकर परले दरजे का कठिन संयम ही नहीं, वरन् परले दरजे का अनवहित मर्यादातिक्रम भी उत्पन्न करती हैं। ये एक पराकोटि का प्रचार करतीं और उसे आदर्श ठहराती हैं। जो लोग उस पराकोटि को आदर्श नहीं स्वीकार कर सकते, उन्हें वे भगाकर विपरीत सीमा पर भेज देती हैं। धर्म के बड़े-बड़े युगों में ऐसा भी होता है कि संयम के नियम की कठोरता को नैमित्तिक मर्यादातिक्रम की, जान-बूझकर दी हुई अनुमति, कोमल बना देती है। भैरवीचक्रों और नैशोत्सवों की उत्पत्ति इसी से

हुई है। इन भैरवीचक्रों का मध्य-काल में ख़ूब ज़ोर रहा है। ये किसी एक ही देश-विशेष में नहीं, वरन् सभी देशों में पाए जाते हैं। ये प्रत्येक विनीत और परिश्रमी सभ्यता में एक विशेष काम को पूरा करते हैं। क्योंकि यह सभ्यता न्यूनाधिक अपरिहार्य प्रतिरोधों से बँधी हुई नैसर्गिक शक्तियों पर बनी होती है। इन भैरवीचक्रों से प्रचलित प्रतिरोधों और रूढ़ियों का तनाव अस्थायी रूप से ढीला हो जाता है। नाच, खेल, होली, जल-क्रीड़ा, वन-विहार आदि सब भैरवीचक्रों के ही रूप हैं। ये यूनान, रोम, इँगलैंड, रूस, जापान सभी देशों में पाए जाते हैं। जर्मन-दार्शनिक नीट्शे ठीक कहता है कि प्राचीन यूनानी लोग सभी स्वाभाविक आवेगों को स्वीकार करते थे, और उनको अनिष्ट करने से रोकने के लिये ऐसी नालियाँ तैयार करते थे, जिनके द्वारा विशेष दिनों और विधियों में फ़ालतू पाशविक शक्ति निरुपद्रव रूप से बाहर निकल जाय। प्रसिद्ध रोमन नीत्युपदेशक सेनेका कभी-कभी सुरापान तक की सिफ़ारिश करता है। वह कहता है—सुरापान हमारी चिंताओं को धो डालता और हमारी आत्मा को निचली-से-निचली गहराइयों से ऊपर उठाता है। यह उसे चिंता की अधीनता से मुक्त करता, दासता से छुड़ाता और सब कामों के लिये अधिक साहसी बनाता है।

वेश्या-वृत्ति की उत्पत्ति और विकास

अधिक सूक्ष्म प्रकार का भैरवीचक्र प्रत्येक सभ्यता में प्रचलित रहता है। पर इसके मुख्यतः मस्तिष्क-विषयक होने के कारण यह अधिक लाभदायक और उपयुक्त नहीं होता। भैरवीचक्र से अधिक प्राथमिक और मांसल रूपों को, सभ्यता के प्रभाव से, लोग बुरी दृष्टि से देखने लगते हैं, और वे यथासंभव सर्वथा दबा दिए जाते हैं। सभ्यता इस रीति से वेश्या-वृत्ति को प्रोत्साहित करती है। जब भैरवीचक्र को अपने प्राथमिक रूप में, प्रकट और आदरणीय रूप से, अपने-आपको दिखलाने का निषेध हो जाता है, तब यह अंधकार की शरण लेता है और सभ्य जीवन के ठीक केंद्र में अपना मज़बूत मोरचा बाँधकर बैठ जाता है। जिससे अतीव कठिनता और महत्त्व की समस्या उत्पन्न हो जाती है। साधारणतया यह कहा जाता है कि वेश्या-वृत्ति सदा और सब कहीं रही है। पर यह कथन सचाई से बहुत दूर है। एक प्रकार की अपरिपक्व वेश्या-वृत्ति नैमित्तिक रूप से जंगली लोगों में पाई जाती है। परंतु पूर्ण रूप से विकसित वेश्या-वृत्ति प्रायः उसी समय मिलती है, जब कि वर्बरता-पूर्ण विकास को प्राप्त होने के पश्चात् सभ्यता की अवस्था को पहुँचनेवाली होती है। यह प्रत्येक सभ्यता में एक सुव्यवस्थित रूप में पाई जाती है।

अच्छा, अब वेश्या का लक्षण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर अनेक लोगों ने देने की चेष्टा की है । कोई कहता है—वेश्या वह स्त्री है, जो धन के लिये अपना शरीर अनेक लोगों के हाथ, विना किसी चुनाव के समर्पित कर देती है । कोई कहते हैं—वेश्या वह व्यक्ति है, जिसके लिये स्त्री-पुरुष-धर्म-विषयक संबंध आर्थिक लाभ के अधीन है । एक कहता है—वेश्या वह स्त्री है, जो अपनी काम-संबंधी इच्छा को अस्थायी रूप से विविध लोगों के पास बेच देती है । ऐसे ही एक दूसरा कहता है—वेश्या वह स्त्री है, जो भाड़ा लेकर निर्विशेष रूप से पुरुषों के साथ संभोग करती है । परंतु कई स्थानों में सखी-भावयुक्त पुरुष वेश्याएँ भी पाई जाती हैं, इसलिये स्त्री और पुरुष दोनों पर चरितार्थ होनेवाला लक्षण यह है कि वेश्या वह व्यक्ति है, जिसने अपने से विपरीत लिंग के या उसी लिंग के विविध व्यक्तियों की कामुकता को तृप्त करना अपना व्यवसाय बना रक्खा हो ।

वेश्या कहलाने के लिये नाना लोगों के साथ संभोग का पुनः-पुनः होना आवश्यक है, जो स्त्री किसी एक पुरुष की उपपत्नी बनकर अपनी गुज़र करती है, और उस एक को छोड़कर और किसी के पास नहीं जाती, वह उस समय वेश्या नहीं, चाहे बाद को वह बन जाय, या पहले भी हो । शर्ट्ज़ (Schurtz)-नामक एक विद्वान् कहता

है—प्रत्येक समाज में जहाँ छोटी आयु का विवाह कठिन होता है और पर-स्त्री-गमन को बुरा समझा जाता है, वहाँ वेश्या-वृत्ति का आविर्भाव अवश्य हो जाता है। धार्मिक वेश्या-वृत्ति सभी प्राचीन जातियों में पाई जाती रही है। ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दी में बाबल के लोगों की देवी, माई लिट्टा, के मंदिर में प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन में एक बार आकर अपने-आपको उस परदेशी पुरुष को देना होता था, जो देवी की भेंट-स्वरूप सबसे पहले उसकी गोद में पैसा फेंकता था। धार्मिक वेश्या-वृत्ति का आधार इस विश्वास पर था कि मानवों की उत्पादक शक्ति प्रकृति की उर्वरता को बढ़ाने में एक रहस्यमय और पवित्र प्रभाव रखती है। कालांतर में यह भी समझा जाने लगा कि देवी या देवता के पुजारियों के साथ संभोग करने से स्त्री के बाँझपन की संभावना नहीं रहती। फिर धार्मिक वेश्या-वृत्ति के ह्रास से सार्वजनिक गणिका-गृहों का आविर्भाव हुआ। ये बिलकुल सांसारिक संस्थाएँ थीं और इनकी स्थापना सांसारिक उद्देश्य से ही हुई। अब भगवत्-पूजा में संभोग की पवित्रता का भाव बिलकुल लुप्त हो गया।

जे० स्टैंले गार्डीनर (Journal Anthropological Institute) में लिखता है कि रोटुमा के दक्षिण समुद्र द्वीप के जंगली लोगों में "रुपए या उपहार के लिये वेश्या-वृत्ति

बिलकुल अज्ञात थी।" परंतु विवाह से पूर्व स्त्री-पुरुष-धर्म-विषयक संबंधों के बनाने की बड़ी स्वतंत्रता थी। ब्रह्म-देश में अँगरेज़ों के प्रवेश से पूर्व वेश्या-वृत्ति को कोई जानता भी न था। जूलस बाइस (Jules Bois) "Visions de I' Inde" में पृष्ठ ५५ पर लिखता है कि भारत में वेश्या-वृत्ति अँगरेज़ लाए थे। एक ब्राह्मण ने उसे कहा था कि "यह विशेष रूप से अँगरेज़ों का दोष नहीं था। यह तुम्हारी सभ्यता का अपराध है। हममें कभी वेश्याएँ नहीं थीं। इस भयंकर शब्द से मेरा तात्पर्य पास से गुज़रनेवाले लोगों की अशिष्ट काम-वासना की पशु-तुल्य दासियों से है। हमारे यहाँ गानेवालियों और नाचनेवालों की जातियाँ थीं और हैं, जो पेड़ों के साथ हाँ, पेड़ों के साथ—मर्मस्पर्शी विधियों से ब्याही हुई हैं; हमारे पुरोहित उनको आशीर्वाद देते और उनसे बहुत-सा धन प्राप्त करते हैं। जो उन पर प्रेम करते और उन्हें प्रसन्न करते हैं, वे उन्हें इनकार नहीं करतीं। राजाओं ने उनको धनाढ्य बना दिया है। वे सभी कलाओं की प्रतिनिधि हैं, वे विश्व-ब्रह्मांड का दृश्य सौंदर्य हैं।" धार्मिक वेश्याएँ "देवता की दासियाँ" होती हैं। दक्षिण-भारत में ये देव-मंदिरों के साथ संबद्ध हैं। इनका मुख्य कर्म देवता की मूर्ति के सामने नाचना होता है। वे उस देवता के साथ ब्याही हुई होती हैं। वे उस मंदिर में देवता के दर्शन के लिये आए हुए उपासकों

की कामवासनाओं का उत्तेजित और शांत करना सीखी हुई होती हैं।

वेश्या-वृत्ति को रोकने के लिये अनेक यत्न किए गए। मुहम्मद साहब भी वेश्या-वृत्ति के घोर विरोधी थे। यद्यपि गुलाम स्त्रियों में वे इसे सहन कर लेते थे। वेनिस-नगर में भी, जिसे वेश्याओं का स्वर्ग कहा जाता है, इसके विरुद्ध अनेक कड़े नियम बनाए गए थे। इसके लिये दंड, कारावास और बेंत आदि का दंड दिया जाता था। फिर कालांतर में अब मध्यम श्रेणी के लोगों को अपनी पुत्रियों और पत्नियों का रक्षा की चिंता हुई। तब उन्होंने कामासक्ति को एक अलग मार्ग पर चलाने के लिये सार्वजनिक रूप से यत्न करना और क़ानून बनवाना आरंभ किया, और वेश्या-वृत्ति एक स्वतंत्र रूप में प्रकट हो गई।

वेश्या-वृत्ति के कारण

वेश्या-वृत्ति के जन्म और विकास के इतिहास से पता लगता है कि यह हमारी विवाह-पद्धति का अहार्य धर्म या दुर्घटना नहीं, वरन् एक आवश्यक अंग है, जो दूसरे अंगों के साथ प्रकट हाता है। जब एक-एक परिवार का अलग-अलग कुलपति हा गया और एकपत्नीक विवाह की प्रथा ने ज़ोर पकड़ा, तो स्त्री के लिये अपने शरीर को बेचना और भी कठिन होता गया। पहले तो लड़की पर पिता का अधिकार होता है। पिता का इसी में हित है कि वह

उसकी सावधानता-पूर्वक रक्षा करे। फिर पति प्रकट होता है, जो उसे ले जाता है। स्त्री के मूल्य को बढ़ाने में कौमार्य के बाज़ार मूल्य का नया भाव क्रमशः विकसित हुआ। पहले "कुमारी" उसे कहा जाता था, जो अपने शरीर के साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार करने में स्वतंत्र थी, परंतु अब उसका वह अर्थ उलटकर स्त्री हो गया, जिसके लिये पुरुषों के साथ संभोग की मनाही हो। जब वह पिता से पति के पास चली गई, तब भी उसका वैसे ही सावधानता से पहरा रक्खा जाता रहा, पति और पिता ने अविवाहित पुरुषों से अपनी स्त्रियों की रक्षा करने में ही अपना हित समझा। ऐसी स्थिति के उत्पन्न हो जाने का यह परिणाम हुआ कि ऐसे युवकों की एक बड़ी संख्या प्रकट हो गई, जो इतने धनाढ्य न थे कि विवाह कर सकें। इसी प्रकार ऐसी युवतियों की भी एक भारी संख्या हो गई, जिनको किसी पुरुष ने अपनी पत्नी बनाना पसंद नहीं किया था, और जिन्हें कभी पत्नी बन सकने की आशा भी नहीं रही थी। सामाजिक विकास की ऐसी अवस्था में वेश्या-वृत्ति का प्रादुर्भाव अवश्यंभावी है। यह विवाह का उतना अपरिवर्जनीय आनुषंगिक अंग नहीं, जितना कि उसका आवश्यक भाग है। कई फ़ालतू या उपेक्षित स्त्रियों ने रुपए के रूप में अपने मूल्य का उपयोग करते हुए या कदाचित् साथ ही पूर्व काल की स्वतंत्रता के

ऐतिह्यों को पुनर्जीवित करने के भाव से, अपना यहां सामाजिक व्यापार देखा कि जो पुरुष अभी तक पत्नियाँ नहीं प्राप्त कर सके थे, उनकी अस्थायी कामवासना को तृप्त करने के लिये अपने शरीर को बेचें। इस प्रकार विवाह-प्रणाली की ज़ंजीर में प्रत्येक कड़ी दृढ़ता-पूर्वक जुड़ गई और पूरा चक्र तैयार हो गया।

वर्तमान प्रणाली में वेश्या-वृत्ति का स्थान समझने के लिये इसके प्रधान घटकों का विश्लेषण करना आवश्यक है। इनको चार भागों में बाँटा जा सकता है—(१) आर्थिक आवश्यकता; (२) जीव-विद्या-संबंधी प्रवणता; (३) नैतिक लाभ और (४) इस सभ्यता का परिणाम। परिस्थितियाँ और सूचनाएँ मिलकर किस प्रकार लड़की को वेश्या-वृत्ति के मार्ग पर ले जाती हैं, यह एक अनुभवी संवाददाता के आगे दिए विवरण से पता लग जायगा। वह लिखता है—

"मुझे इन आचारहीन स्त्रियों का विविध प्रकार का अनुभव है, और मैं निःसंकोच होकर कह सकता हूँ कि इन स्त्रियों में सौ में से एक भी पढ़ी-लिखी नहीं। इससे प्रकट होता है कि यह प्रायः सब-की-सब ग़रीब और नीच कुलों की होती हैं। जन-संख्या की वृद्धि से जो भयंकर भीड़ हो रही है, इससे बहुत छोटी अवस्था में इन लड़कियों में लज्जा का भाव बिलकुल नष्ट हो जाता है, और

युवा होने के बहुत पहले उन्हें मैथुन-संबंधी बातों का ज्ञान हो जाता है। ज्यों ही ये लड़कियाँ पर्याप्त रूप से बड़ी हो जाती हैं, इनके प्रेमी इन्हें बहकाकर भगा ले जाते हैं। मैथुन-संबंधी बातों का पहले से ही परिचय होने के कारण उनके मार्ग में वे रुकावटें नहीं रहतीं, जो शुद्ध और निर्दोष परिस्थितियों में पली हुई लड़कियों को होती हैं। फिर वे कारखानों और दूकानों में काम करने जाती हैं। यदि वे रूपवती और चित्ताकर्षक हुईं, तो मैनेजर और फ़ोरमैनों के साथ उनका अनुचित संबंध हो जाता है। फिर बनाव-चुनाव और शृंगार का प्रेम, जो एक प्रधान स्त्रीसुलभ गुण है, लड़कियों को किसी पैसेवाले पुरुष की "रखेली" बनने का प्रलोभन देता है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि अपने इन संरक्षकों के साथ संभोग से इन लड़कियों में क्वचित् ही कामोद्दीपन होता है। वे जीवन में अपने जैसे ही सामाजिक स्थितिवाले लोगों के आलिंगनों में आनंद का अधिक अनुभव करती हैं। मैंने ऐसी वेश्याएँ बहुत कम देखी हैं, जिनको कोई बहकाकर घर से निकाल लाया हो और फिर छोड़कर भाग गया हो। वेश्याएँ ऐसी बातें झूठ-मूठ ही बनाकर कहा करती हैं। अधिकतर वेश्याएँ शराबख़ानों में नौकरी करनेवाली लड़कियों में से बनती हैं, क्योंकि इनको सुरा-पान की बान पड़ जाती है, और सुरा-पान

से स्त्रियों के आचार में शिथिलता अवश्य आ जाती है। वेश्या-वृत्ति के लिये दूसरा प्रलोभन यह है कि एक स्त्री तो दिन-रात परिश्रम करके बड़ी कठिनता से अपनी गुज़र कर पाती है। परंतु उसकी सहेली, जो वेश्या बन चुकी है, सुंदर वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर उसके घर आती है। उसको देखकर उसके मुँह में भी पानी भर आता है। वह अपनी सखी से पूछताछ करती है। सखी उसे झट वही मार्ग बता देती है, जिससे होकर वह स्वयं जा रही है। बस, वेश्याओं की संख्या में एक और की वृद्धि हो जाती है।"

किन-किन कारणों से लड़कियाँ वेश्या बनती हैं, इस पर आगे दिए अंकों से कुछ प्रकाश पड़ेगा।

ब्रसल्स में बीस वर्ष के अंदर ३,५०५ स्त्रियों ने अपने आप को वेश्या बताया। इनमें १,५२३ ने अपने पतन का कारण नितांत निर्धनता बताया। १,११८ ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया कि कामवासना ही हमारा कारण था। ४२० ने कुसंगति; ३३६ ने काम का कठोर और मज़दूरी का थोड़ा होना; १०१ ने उनके प्रेमियों का छोड़कर भाग जाना; १० ने माता-पिता के साथ झगड़ा; ७ ने पति द्वारा परित्यक्त होना; ४ ने अपने संरक्षकों के साथ बिगाड़; ३ ने गृह-कलह। २ ने पतियों द्वारा वेश्या बनने और १ ने माता-पिता द्वारा वेश्या-वृत्ति स्वीकार करने पर विवश किया

जाना अपने वेश्या बनने का कारण बताया। (Lancet, June 24, 1829) श्रीयुत मेरिक अपनी पुस्तक, Work among the fallen में लिखते हैं कि लंदन के मिल-बैंक-जेल में एक वर्ष में १६,०२२ वेश्याएँ आईं। उनमें से ५,०६१ ने 'भोग का जीवन' व्यतीत करने के लिये स्वेच्छा-पूर्वक घर छोड़ा था ; ३,२६३ ने निर्धनता कारण बताया ; ३,१५४ बहकाकर लाई गई थीं ; १,६३६ को विवाह का वचन देकर धोखा दिया गया था और उनके प्रेमी उनको छोड़कर भाग गए थे। सर्वतोभावेन ४,७९० अथवा कुल संख्या के एक तिहाई भाग के पतन का प्रत्यक्ष कारण पुरुष थे। और ११,२३२ के वेश्या-वृत्ति स्वीकार करने के अन्य हेतु थे। लोगन-नामक एक अँगरेज़ पादरी, जिसे वेश्याओं के साथ बड़ा विस्तृत परिचय है, इनको इन समूहों में बाँटता है—(१) एक चौथाई लड़कियाँ नौकर-श्रेणी में से आती हैं ; (२) एक चौथाई कारख़ानों में से ; (३) लगभग एक चौथाई कुटनियों द्वारा देहातों, नगरों और मंडियों में से लाई जाती हैं ; (४) अंतिम समूह में एक ओर तो वे लड़कियाँ हैं जो निर्धनता या आलस्य या बुरी प्रकृति से विवश होकर वेश्या बनी हैं, क्योंकि वे और कोई साधारण व्यवसाय नहीं कर सकतीं ; और दूसरी ओर वे हैं जिन्हें विवाह का झूठा वचन देकर बहकाया गया है।

अमेरिका में श्रीमती सेंगर ने न्यूयार्क-नगर की दो हज़ार वेश्याओं के पतन के कारण खोजकर इस प्रकार लिखे हैं—

आर्थिक अभाव	५२५
शारीरिक प्रवणता	५१३
बहकाना और छोड़ा जाना	२५८
सुरा-पान और सुरा-पान की कामना ...	१८१
माता-पिता और संबंधियों का दुर्व्यवहार ...	१६४
विलास का जीवन	१२४
कुसंगति	८४
वेश्याओं द्वारा फुसलाई जाना	७१
आलस्य के कारण काम न करना	२६
सतीत्व-भंग	२७
विदेश जानेवाले जहाज़ पर बहकाई गई ...	१६
विदेश-यात्रा के लिये बने आश्रम में बहकाई गई	८
	२,०००

(सगर-कृत "वेश्या-वृत्ति का इतिहास", पृ० ४४८)

इटली में, सन् १८८१ में, सत्रह वर्ष की आयु के ऊपर की १०,४२२ प्रमाणित वेश्याओं की वेश्या-वृत्ति के कारण इस प्रकार हैं—

भ्रष्टता और दुराचार	२,७५२
माता-पिता, पति आदि की मृत्यु	२,१३६

प्रेमी द्वारा बहकाया जाना	...	...	१,६५३
कारखाने के स्वामी द्वारा बहकाया जाना		...	१२७
माता-पिता, पति इत्यादि द्वारा त्यक्त होना		...	७१४
भोग-विलास पर प्रेम	...	...	६१८
परिवार के बाहर के प्रेमी आदि लोगों द्वारा प्रोत्साहन			६६६
माता-पिता या पति द्वारा प्रोत्साहन		...	४००
माता-पिता या बच्चों के पालन-पोषण के लिये			३१३

(Ferriani Minorenni Delinquenti, p. 193)

रूसी वेश्याओं के इस व्यवसाय को ग्रहण करने के कारण—

अपर्याप्त वेतन	प्रतिशतक	३८·५
विनोद-कामना	,,	२१
स्थान का छिन जाना	,,	१३
सहेलियों द्वारा फुसलाहट	,,	९·५
काम करने का स्वभाव न रहना	,,	६·५
संताप और प्रेमी को दंड देना	,,	५·५
सुरा-पान	,,	५

(Archives d' Anthropologic Criminelle, Nov. 15, 1901)

इसमें कोई संदेह नहीं कि निर्धनता वेश्या-वृत्ति का एक बड़ा कारण है, और व्यापार के मंद पड़ जाने पर वेश्याओं की संख्या सदा बढ़ जाया करती है, परंतु फिर भी अनेक प्रमाण इसके विरुद्ध भी मिलते हैं। इस प्रकार स्टोहमवर्ग

ने ४६२ वेश्याओं से मिलकर पता लगाया, तो केवल एक ने ही अपने वेश्या होने का कारण अभाव बताया। मेहर को ६० जर्मन-वेश्याओं में एक भी ऐसी न मिली, जो धनाभाव से वेश्या हुई हो, वरन् कई तो धन होते हुए बाज़ार जा बैठी थीं और पुरस्कार भी नहीं चाहती थीं। जर्मनी में किसी लड़की को वेश्या बनने की अनुमति मिलने से पूर्व उसे किसी सदन में प्रवेश करने और काम पाने का अवसर दिया जाता है। बर्लिन में हज़ारों वेश्याओं में से केवल दो काम करने को उद्यत हुईं।

योरपीय देशों में जो लड़कियाँ दूकानों में काम करती हैं, वे कभी वेश्या-वृत्ति से फालतू आय कर लेती हैं। वे कुछ दिन यह वृत्ति करने के बाद इसे छोड़ भी देती हैं। आगे हैवेलाक एलिस की Studies in the Psychology of Sex पृ० २६२ से एक उदाहरण दिया जाता है। इससे जान पड़ेगा कि वेश्या-वृत्ति में निर्धनता का कितना हाथ है।

तीस वर्ष की विधवा, उसके साथ उसके दो बच्चे लंदन के पूर्वी छोर में छतरियों के कारख़ाने में काम करती है। घोर परिश्रम के पश्चात् अठारह शिलिंग प्रति सप्ताह प्राप्त करती है। कभी-कभी सायंकाल गलियों में जाकर अपनी आय को बढ़ाती है। वह बहुधा एक पार्श्ववर्ती शांत गली में जाती है। उधर से नगर की रेल के एक बड़े टार्मिनस (अंत) को मार्ग जाता है। वह एक सुखी और प्रायः

वयस्था-सी दीखनेवाली स्त्री है। यदि उससे पूछा जाय, तो वह कह देती है कि मैं एक सहेली की प्रतीक्षा कर रही हूँ। वह एक बनावटी ढंग से मौसम के विषय में बातें करती है और आनुषंगिक रीति से अपना निवेदन कहती है। वह या तो पुरुष को पड़ोस के किसी नीरव कूचे में ले जाती है या अपने घर। पुरुष उसे जो कुछ दे, वह ले लेती है, कभी-कभी तो यह एक पौंड होता है और कभी-कभी छः पेंस। औसतन वह केवल कुछ शिलिंग ही प्रतिदिन कमाती है। वह केवल १० मास से ही लंदन में आई है। इसके पहले वह न्यूकासिल में रहती थी। वहाँ वह 'बाज़ार नहीं जाया करती थी।' परंतु अवस्थाओं के बदल जाने से उसे ऐसा करना पड़ता है। वह यद्यपि पुलिस को अच्छा नहीं कहती, पर वह कहती है कि दूसरी लड़कियों की तरह वे उसके काम में हस्तक्षेप नहीं करते। वह उनको कभी रिश्वत नहीं देती; परंतु वह संकेत से कहती है कि उनको अनुकूल बनाए रखने के लिये कभी-कभी उनकी कामवासना को तृप्त करना आवश्यक होता है।

जीव-शास्त्र-संबंधी कारण

लंबरोसो का मत है कि वेश्या-वृत्ति अपराधिता का प्रतिनिधि-स्वरूप पर्याय है। यह अपराधिता का केवल स्त्री-सुलभ पक्ष है। वेश्याओं और अपराधियों में अन-उपजाऊ-पन का गुण सामान्य है, फलतः वे दोनों सामाजिक होने के

विरोधी हैं। इस प्रकार वेश्या-वृत्ति अपराधिता का ही एक रूप है। इस बात की सचाई में कुछ भी संदेह नहीं कि गंभीर वृत्तिवाली स्त्री के लिये वेश्या-वृत्ति के क्षणिक और बाह्य संबंध कुछ भी प्रलोभन नहीं दे सकते। स्मरण रहे कि वेश्याओं की अधिक संख्या बहुत छोटी अवस्थाओं में ही जब अभी काम-वासना के प्रबल होने के दिन भी नहीं होते, आचारहीन हो चुकी होती हैं। वेश्याएँ प्रायः बड़े मज़बूत और दृढ़ स्वास्थ्य की स्त्रियाँ होती हैं। इनमें आत्मदूषण (Masturbation) सब कहीं बहुत अधिक पाया जाता है। इनमें सब बुरे ही नहीं, कई अच्छे भी गुण होते हैं। श्रीयुत डस्पाइन, फ्रांस में उनके दुर्गुण इस प्रकार गिनाते हैं—(१) लोभ और सुरा-पान, पर-प्रेम ; (२) मिथ्या भाषण ; (३) क्रोध ; (४) व्यवस्था का अभाव और मैला-कुचैलापन ; (५) चरित्र की चंचलता ; (६) गति का अभाव और (७) दूसरी वेश्याओं के साथ मैथुन की प्रवृत्ति। उनके उत्तम गुण ये हैं—उनकी मातृक और संतानोचित ममता ; उनकी एक दूसरे के प्रति भूतानुकंपा और उनका एक दूसरे को धिक्कारने से इनकार करना ; बहुधा वे धार्मिका, कभी-कभी विनीत और प्रायः बहुत ईमानदार होती हैं। जो भूतानुकंपा वे विपत्ति के समय दिखलाती हैं, वह प्रायः उनमें पाए जानेवाले व्यावसायिक संदेह और पारस्परिक स्पर्द्धा की प्रवृत्ति से निष्फल हो जाती है।

हचिनसन, जिसे लंदन, पेरिस, वायना, न्यूयार्क, फ़िलाडेल्फ़िया और शिकागो का बड़ा विस्तृत अनुभव है, कहता है—रूपवती वरन् चित्ताकर्षक आकृतिवाली वेश्या भी बहुत बिरली पाई जाती है। औसतन् जितना सौंदर्य दूसरी स्त्रियों में पाया जाता है, वेश्याओं में प्रायः उससे कम होता है। रूस में डाक्टरनी नोलाइन टोपास्की ने सेंटपीटसवर्ग की पचास वेश्याओं के शरीरों की जाँच करके ये परिणाम निकाले हैं—(१) वेश्याओं में कपाल के अगले, पिछले और आड़े व्यास छोटे होते हैं ; (२) कोई चौरासी प्रतिशतक के लगभग अनुपात में शारीरिक अधोगति के अनेक चिह्न देख पड़ते थे (जैसे कि कुडौल कपाल मुखमंडल में सौष्ठव का अभाव, तालु, दाँतों और कानों आदि का कड़ा होना)। इसका कारण यह पाया गया है कि उनमें से $\frac{4}{5}$ भाग के माता-पिता मद्यप थे। $\frac{1}{5}$ बड़े-बड़े परिवारों की एक-मात्र बची हुई अंतिम संतानें थीं। ये परिवार प्रायः पतित माता-पिता की संतान थे। इटली में फ़ोरनासरी (Fornasri) ने आठ वेश्याओं की परीक्षा करके ये परिणाम निकाले हैं—एक वेश्या और एक साधारण स्त्री यदि एक-सी ऊँची हों, तो वेश्या का वज़न अधिक होगा; समान आयु में दूसरी स्त्री से उसका क़द छोटा होगा ; मुख-मंडल की उँचाई ठोड़ी से कान तक का व्यास और जबड़ों का

आकार ये सब चीज़ें वेश्या की बड़ी होंगी। वेश्याओं के हाथ साधारण स्त्रियों की अपेक्षा हथेली की तुलना में लंबे चौड़े थे। पैर भी लंबा था, और पिंडली की तुलना में जंघा बड़ी थी। इन और ऐसी ही अन्य बातों से यह परिणाम निकलता है कि वेश्याएँ स्त्री-जाति की सर्वथा स्वाभाविक प्रतिनिधि नहीं हैं।

वेश्या-वृत्ति का नैतिक समर्थन

एक लेखक वेश्याओं का लक्षण करता हुआ लिखता है—"वे सार्वजनिक सदाचार की दुराचारिणी संरक्षिका हैं।" दूसरा कहता है—"वेश्या एक सामाजिक उद्देश को पूरा करती है। वह कुमारियों की विनय की रक्षिका, व्यभिचारियों की काम-वासना को बाहर निकालने की नाली और परिवार की ढाल है।" बालज़क अपनी Physiologie du Marriage में कहता है—"वेश्याएँ प्रजातंत्र पर अपना बलिदान कर देती हैं, और प्रतिष्ठित परिवारों की रक्षा के लिये अपने शरीर को दीवाल बना देती हैं।" इसी प्रकार शोपनहार वेश्याओं को "एक पत्नीव्रत की वेदी पर मानवीय बलिदान" कहता है। लेकी ने अपने लक्षण में वेश्या के काम के उच्च और नीच दोनों उद्देशों को मिला दिया है। वह कहता है कि यद्यपि "वह उच्च प्रकार का दुराचार है, पर वह अंततः सदाचार की अतीव समर्थ रक्षिका है। यदि वह न हो,

तो असंख्य सुखी घरानों की शुद्धता भ्रष्ट हो जाय, और आज जो लोग अपनी शुद्धता पर इतराते हुए उस पर घृणा से छिः-छिः करते हैं, उनमें से अनेक को अनुताप और विषाद का दारुण दुःख सहन करना पड़े। उस एक पतित और नीच रूप पर वह काम-वासना केंद्रीभूत है, जो कदाचित् संसार को लज्जा से प्लावित कर देती। मत-मतांतरों और सभ्यताओं का उत्थान और पतन होता रहता है, परंतु वेश्या जनता के पापों के लिये झोंकी हुई, मनुष्य-समाज की शाश्वत पुजारिन है।" एक्यूनास कहता है—"नगर में वेश्या राज-भवन में गंदी नाली के समान है। नाली को बंद कर दो, सारा राजप्रासाद गंदगी के सड़ने से अपवित्र हो जायगा।" डाक्टर एफ़० अहीड के मत में "वेश्या-वृत्ति केवल उन्हीं पुरुषों को बिगाड़ती है, जो पहले ही बहुत कुछ बिगड़ चुके होते हैं। यदि इससे विवाह की इच्छा नहीं रहती, तो अच्छा ही है। अभी न उत्पन्न हुई ऐसे पुरुषों की संतान को उनका तहेदिल से शुक्रिया अदा करना चाहिए।"

वर्तमान सभ्यता का फल वेश्या-वृत्ति

प्रजा के आचार की रक्षिका होने के अतिरिक्त एक और कारण भी है, जिससे वेश्या-वृत्ति का होना आवश्यक ठहरता है। वर्तमान जीवन इतना जटिल और इतना

एकरस है कि इसकी सदा एक ही तरह चलती रहने-वाली चक्की की नीरसता को बदलने के लिये इसमें किसी प्रकार के उल्लास और वैचित्र्य का समावेश करना आवश्यक है। वेश्याओं का जो विशेष उद्देश फालतू शक्ति का निकास बताया गया है, उससे यह भिन्न है। इससे वे लोग भी लाभान्वित हो सकते हैं, जिनका वेश्याओं के साथ कोई बुरा संबंध नहीं।

बहुत-से देशों के बहुत-से विचारकों का मत है कि जो लड़कियाँ अंतत: (सामान्यत: १५ और २० वर्ष की आयु के बीच) वेश्या बन जाती हैं, वे छोटी अवस्था में ही अपना कौमार्य खो चुकी होती हैं। कुछ नराधम राक्षस छोटी बालिकाओं के कौमार्य को नष्ट कर देते हैं। एक बार इसके नष्ट हो जाने पर मानसिक चंचलता और स्वाभाविक हिचक का ह्रास हो जाता है। लज्जा का अभाव उन्हें उच्छृंखल बना देता है। मेरा कहना है कि कौमार्य का नष्ट हो जाना वेश्या बनने का चाहे प्रत्यक्ष कारण न हो, परंतु इसका परिणाम प्राय: होता वेश्या-वृत्ति ही है।

भोग-विलास और उत्तेजन और शिष्टता साधारण लड़की को उसी प्रकार आकर्षित करती है, जैसे दीपक का लौ पतंग को आकृष्ट करती है। यही कारण है कि ग्रामवासिनी लड़कियाँ ही मुख्यत: इसके मोह-जाल में

फँसती हैं। नगर की लड़की नगर में जन्म लेने और पलने के कारण, पहले से ही नागरिक जीवन की उत्तेजना से परिचित होती है। उसे वेश्याओं की शौक़ीनी, उनका आमोद-प्रमोद कुछ भी आकर्षित नहीं करता। वह तभी गिर सकती है, जब पहले से ही वह गिरानेवाली परिस्थितियों में पाली गई हो। लंदन के मुक्ति-संघ के रजिस्टरों से पता लगता है कि सौ पीछे साठ वेश्याएँ ग्रामों से आती हैं।



स्त्री का स्वभाव

पश्चिम की स्त्री-लेखिकाएँ अपने लेखों में प्रायः बड़े उग्र विस्मय के साथ पुरुष की संगति को "अनूठी" कहा करती हैं। वे कहती हैं—हम इसे समझ नहीं सकतीं। उन्हें आश्चर्य होता है कि पुरुषरूपी जंतु पुरुषों की ही संगति में कैसे प्रसन्न रहता है। स्त्रियाँ एक दूसरी की संगति में उतनी प्रसन्न नहीं होतीं, चाहे वे ऊपर से प्रसन्न देख पड़ें और सुखी होने का दिखलावा भी करें। जहाँ केवल स्त्रियाँ-ही-स्त्रियाँ इकट्ठी हों, उस उत्सव में उनको कभी सच्चा आनंद नहीं आता। वे बहुधा इसकी शिकायत भी किया करती हैं।

परंतु पुरुषों की बात इसके विपरीत है। वे सेना में,

स्कूलों में, जहाज़ों में, बैरिकों में इकट्ठे रहते हैं और उनको कभी शिकायत करते नहीं सुना। किसी सहभोज में, किसी फुटबाल या क्रिकट के मैच में पुरुषों को देखिए। वे बड़े ही प्रसन्न देख पड़ेंगे। पुरुषों को पुरुषों की संगति में बड़ा आनंद आता है। स्त्रियाँ स्त्रियों की संगति में प्रसन्नता का अनुभव नहीं करतीं। यह बात निर्विवाद है कि स्त्रियाँ पुरुषों की संगति को अच्छा समझती हैं। पुरुष स्त्रियों की संगति को पुरुष की संगति से अच्छा नहीं समझते। यह बड़े अचंभे की बात है कि स्त्रियाँ इसका कारण नहीं समझ सकतीं; यद्यपि कारण बहुत स्पष्ट है। निस्संदेह लिंग-भेद ही इसका मुख्य कारण है—लेकिन यहाँ यह प्रश्न होता है कि लिंग-भेद का मर्दों ही पर क्यों इतना असर पड़ता है?

इस शारीरिक अंतर का संबंध जीव-शास्त्र के साथ है। परंतु उसके अतिरिक्त एक बिलकुल निश्चित भेद और भी है। उसको मानसिक या बौद्धिक या मनोविज्ञान-संबंधी कारण कहा जा सकता है। पुरुष चुप रह सकता है; परंतु स्त्रियाँ अवश्य बातें करेंगी।

दो प्रकार की बात-चीत

पुरुष की संगति की कसौटी मौन है। उसकी चुप्पी में ही उसकी गंभीरता समझी जाती है। बिलकुल चुप रहने-वाले पुरुष का संसार में मिलना कदाचित् असंभव हो,

परंतु पुरुष की चुप्पी प्रसिद्ध है। यह उसका दुर्लभ गुण है। जब वह बात करता है, तो किसी प्रयोजन से करता है। स्त्रियाँ केवल संगति के लिये ही बातें करती हैं। एक दूसरी से मिलते ही वे बातें करने लगती हैं। पुरुष प्रायः चुप रहने के लिये ही दूसरे पुरुष की तलाश करता है।

दोनों भावों में भारी अंतर है। स्त्री संलापप्रिय है, उसे बातें करना अच्छा लगता है। पुरुष मित्रता के कारण बात करता है। मित्रता की महान् कला का आविष्कार पुरुष की कोई कम बड़ाई नहीं।

स्त्री की मित्रता भिन्न है। यह एक सामाजिक मेल-जोल है। स्त्री अपनी सखी के साथ प्रसन्नता-पूर्वक दिन व्यतीत करती है। वे सारे दिन बातें करती रहती हैं। किस विषय पर बातें हुई हैं ? दिन की समाप्ति पर उनमें से कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता सकती।

अब पुरुषों की बात लीजिए। उनमें बहुत बातें करने-वाला पुरुष सदा संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। यदि वह रसिक और मखौली न हो, तो लोग उसे लबाड़िया समझने लगते हैं। पुरुष जब बातें करते हैं, तो वे किसी विशेष विषय पर करते हैं। वार्तालाप विशेष रूप से एक पुरुष-कला है। वे नक्षत्रमंडल-जैसे सूक्ष्म विषयों पर विचार करते हैं। वे आपस में इसलिये बातचीत करते हैं, क्योंकि उनका इसमें हित होता है। या फिर वे ध्यान-

पूर्वक सुनते हैं। यह दूसरा गुण है। स्त्रियाँ सुनती बिलकुल नहीं।

अच्छा, जब तक विषय अव्यक्ति-गत या ध्यान देने योग्य न हो, तुम कभी उसे सुन नहीं सकते। और यह पुरुष-संगति का बल है। यह अव्यक्ति-गत है। स्त्री की संगति व्यक्ति-गत है। वह अमूर्त (Abstract) विषय पर विचार नहीं करती। वह संसार और उसके झंझटों की ही बातें करती है।

कहें तो कह सकते हैं कि वह अपने ही झगड़ों में लीन रहती है। किसी दूसरे विषय पर वह ध्यान नहीं देती। वह अपनी सखियों के साथ इसलिये बातें करने की परवाह करती है, क्योंकि उसे पहले से पता होता है कि किस विषय पर वार्तालाप होगा।

जैसा कि बहुत-से पति कहते हैं, स्त्री वस्तुतः पुरुष की बात नहीं सुनती। संक्षेप में, वह भाषणरूपी द्रव्य के तीन गुणों—लंबाई, चौड़ाई और मोटाई—की परवा नहीं करती। वह बड़े अद्भुत ढंग से बातें कर सकती है। परंतु उसका विषय अव्यवस्थित—बे-सिर-पैर का—होता है। पुरुष की अच्छी बातचीत किसी विषय-विशेष पर ही होती है।

इसलिये जिन अर्थों में पुरुष उत्तम संगति के लिये पुरुषों के पास जाते हैं, उन अर्थों में स्त्री दूसरी स्त्री को

पसंद नहीं करती। संगति का आधार दोनों का एक नहीं। पुरुष ढूँढ़ता है, स्त्री को आवश्यकता है। उनकी प्रकृतियाँ अभिन्न नहीं हैं। यही कारण है कि २० पुरुष प्रसन्नता-पूर्वक इकट्ठे रह सकते हैं, और स्त्रियों की अपेक्षा वे अपनी संगति में अधिक मुदित देख पड़ते हैं। यह अवस्था बदल सकती है, कुछ बदल भी रही है। संभव है, संयोग से ही स्त्री की प्रकृति ऐसी हो गई हो। अब स्त्री स्वतंत्रता लाभ कर रही है। इसलिये बहुत अधिक संभव है कि वह भी पुरुष की तरह गंभीरता-पूर्वक चुप रहने, दूसरे की बातों को ध्यान-पूर्वक सुनने और अपने व्यक्तिगत झगड़ों को छोड़कर दूसरे लोकोपकारी विषयों पर भी विचार करने का गुण ग्रहण कर लेगी।

पश्चिम की आधुनिक स्त्री



इस परिवर्तनशील संसार में किसी वस्तु की स्थिरता नहीं। प्रत्येक जड़-जंगम पदार्थ में परिवर्तन का चक्र चल रहा है। कहें तो कह सकते हैं कि इस परिवर्तनशीलता में ही संसार का अस्तित्व है। यह परिवर्तन मनुष्य को उत्कर्ष की ओर लिये जा रहा है या अपकर्ष की ओर, यह कहना कठिन है। हाँ, इतना अवश्य है कि लाख एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाने पर भी कोई इस परिवर्तन को रोक नहीं सकता। यह अनादि काल से चला आया है और अनंत काल तक चलता रहेगा। जड़-जगत् को छोड़कर यदि हम अपने ऊपर ही दृष्टि डालते हैं, तो हमें भारी परिवर्तन देख पड़ता

है। त्रेता-युग के स्त्री-पुरुषों के रंग-रूप, आकार-प्रकार, रहन-सहन, खान-पान, वस्त्राभूषण, ज्ञान तथा कर्मेंद्रियों की शक्ति और जीवन की आवश्यकताओं की वर्तमान काल के साथ तुलना कीजिए, आपको भारी अंतर देख पड़ेगा। पुरुष की अपेक्षा स्त्री नए फ़ैशन और नए रीति-रिवाज को शीघ्र ग्रहण करती है। इसलिये उससे संबंध रखनेवाली बातों में परिवर्तन का प्रभाव शीघ्र देखा जा सकता है। गत एक सौ वर्ष के भीतर ही स्त्री कुछ-की-कुछ बन गई है। उसके रंग-रूप, चाल-ढाल, शरीर-संगठन और सामाजिक स्थिति में भारी परिवर्तन हो गया है। इस बात को दार्शनिक लोग ही नहीं, निरक्षर बूढ़ी स्त्रियाँ तक अनुभव कर रही हैं। लाहौर, बंबई और कलकत्ता आदि महानगरों की फ़ैशन की पुतलियों को देखकर "सभ्यता" से दूर देहात में रहनेवाली अस्सी वर्ष की बुढ़िया त्राहि-त्राहि किए विना नहीं रह सकती। उस दिन हम सबेरे वायु-सेवन के लिये रावी-नदी को जा रहे थे, रास्ते में दो वृद्धा स्त्रियाँ बातचीत करती हुई मिलीं। उनमें से एक कह रही थी—

"बहन, मेरा रामलाल पाँच बरस का हो गया था, परंतु तेरे जीजा ने उसे एक दिन भी नहीं बुलाया था। वह उसे अपने पास तक नहीं आने देता था। एक दिन बच्चा उससे जाकर लिपट गया। वह झट उसे फेंककर बाहर दौड़ गया। बहन, आजकल की पति-पत्नियों की तो कुछ न पूछो,

बच्चा अभी एक मास का भी नहीं होने पाता कि बाबू गोद में लेकर खिलाने लगता है। किसी की शर्म ही नहीं रही।

"दूसरी बोली—बहन, यदि बहू के हाथ मेंहदी से रंगे हुए हों, तो मेरा ससुर अपने सामने उसे चौके में नहीं आने देता था; परंतु आजकल की युवतियाँ सोलहो सिंगार किए ससुर और जेठ के सामने छुन-छुन करती हुई इधर से उधर नाचती फिरती हैं। कोई शर्म ही नहीं रही। बुरा समय आ गया है।"

काल-चक्र के इस तीव्र वेग से भारत ही नहीं, सारा पाश्चात्य जगत् भी आश्चर्य-चकित हो रहा है। वह इसके परिणाम के संबंध में भयभीत है; परंतु डरने की कोई बात नहीं। विधाता की सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, सबका अंतिम परिणाम अच्छा ही है। हमारी अदूरदर्शी आँखें चाहे उससे होनेवाले लाभ को न देख सकें, परंतु सर्व-नियंता का कोई कार्य उसके पुत्रों के लिये अनिष्टकर नहीं हो सकता।

कल्पना कीजिए कि आप सन् २००० में बैठे हैं। अब यदि आप प्रश्न करें कि बीसवीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश में मानुषी घटनाओं में प्रधान घटना कौन-सी थी, तो आपको उत्तर मिलेगा कि विश्व-व्यापी युद्ध या रूस की राज्य-क्रांति नहीं, वरन् स्त्री की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन ही उस काल की प्रधान घटना थी। इतने थोड़े काल में इतना

चौंका देनेवाला परिवर्तन इतिहास में और दूसरा नहीं देख पड़ता। जब से खेती को छोड़कर लोग फ़ैक्टरियों और पुतलीघरों में दौड़े आ रहे हैं और बड़े-बड़े नगरों ने देहात की स्वाभाविक और मानुषी आय को सोख लिया है, तब से घर की पवित्रता जो सामाजिक पद्धति की आधार थी; विवाह की प्रणाली जो मानुषी मनोविकार और अस्थिरता के विरुद्ध एक ऊँची ललकार थी और जटिल नीति-शास्त्र जिसने हमें बर्बरता से निकालकर सभ्यता और शिष्टता में पहुँचाया था, सबके-सब इस दुर्दांत परिवर्तन के चंगुल में फँसे हुए दीख रहे हैं। यह घोर विकार हमारी सभी संस्थाओं, जीवन और विचार की सभी रीतियों में प्रकट हुआ है। इसलिये इस युग में मनुष्यों के मनों का डावाँडोल होना अकारण नहीं।

दूसरी शताब्दियों में भी कुछ लोग ऐसे थे, जिनका विचार था कि स्त्री कोई घरेलू दासी या सामाजिक अलंकार या विषय-भोग की सामग्री नहीं होनी चाहिए; परंतु उनका यह विचार एक विचार-मात्र ही था। यह संसार को अनोखा और आश्चर्य-जनक भी मालूम होता था। महात्मा अफ़लातूँ बड़े बल-पूर्वक कहता था कि पुरुषों के सदृश स्त्रियों को भी सभी व्यवसाय करने का अधिकार है। उन्हें भी बराबर अवसर मिलने चाहिए; परंतु अरस्तू अपने समय के पक्षपातों में अधिक फँसा हुआ था। उसका

मत था कि स्त्री एक ऐसी रचना है जो अधूरी रह गई है ; पुरुष बनाने में प्रकृति को जहाँ विफलता हुई वहीं स्त्री बन गई। उसकी यह भी सम्मति थी कि दासों के सदृश वह भी स्वभावत: अधीन और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के सर्वथा अयोग्य है।

यहूदियों के परमदेव जेहोवा का भी यही मत था। उसने पत्नियों और माताओं को पशुधन और भूधन मानकर एक ही श्रेणी में रक्खा था। यह बात उसकी मूसा को दी हुई दस आज्ञाओं में से अंतिम में पाई जाती है। जेहोवा यहूदियों की प्रतिमूर्ति बनाया गया था। यहूदी लोग सभी युद्धप्रिय जातियों के सदृश स्त्री को एक विपत्ति और एक आवश्यक बुराई समझते थे। वे इसे सैनिक देनेवाला यंत्र समझकर ही सहन करते थे। जब किसी यहूदी के यहाँ पुत्री उत्पन्न होती थी, तो रात को दीपक नहीं जलाया जाता था। लड़की की माता को दोहरी शुद्धि करानी होती थी। लड़का सदा यही प्रार्थना करता था—"भगवान् आपको धन्यवाद है, जो आपने मुझे स्त्री नहीं बनाया।" एक यहूदियों की ही यह बात नहीं, दूसरी जातियों में भी स्त्री से तब तक बराबर घृणा की जाती थी, जब तक वह पुत्र की माता न हो जाय और तब तक उसका पूरा सम्मान नहीं होता था, जब तक कि उसके पुत्र किसी युद्ध-क्षेत्र में वीर-गति को न प्राप्त हो जायँ।

उस दिन से लेकर हमारे समय तक स्त्रियों की स्थिति तथा व्यवहार में सहस्रों परिवर्तन और उतार-चढ़ाव हुए हैं। उनको गिनाने की आवश्यकता नहीं। प्राचीन एथंस-निवासियों के जीवन को सुरम्य बनानेवाला हेटीरी-नामक वीरांगनाएँ और राज-सभाओं को प्रसन्न रखनेवाली गणिकाएँ कौन थीं? पुरुष की दासता से छूटने के लिये ही अपनी स्त्री-सुलभ चारुता को विशेष रूप से बढ़ाकर और कमा कर स्त्री ने इनका रूप धारण किया था। प्राचीन काल की गणिकाएँ और नर्तिकाएँ कोई साधारण वेश्याएँ नहीं होती थीं। वे तत्त्ववेत्ताओं और शिल्पियों की संगति करती थीं, साहित्य और कला का उनको बहुत अच्छा ज्ञान रहता था। इसीलिये बड़े-बड़े विद्वान् और राजमंत्री उनसे मनोविनोद करते थे। फ्रांस की राज्य-क्रांति संसार की एक बहुत बड़ी क्रांति थी। इससे फ्रांस के पुरुषों को तो स्वतंत्रता मिल गई, परंतु स्त्रियाँ वैसी-की-वैसी दासी बनी रहीं।

यही विचार इस समय तक भी बने रहे। ओटो वीनिंगर (Otto Weininger)-नामक एक विद्वान् ने बड़ी निर्दयता-पूर्वक सिद्ध किया कि स्त्रियों के आत्मा नहीं होती। शोपनहार ने अपने "स्त्रियों पर प्रबंध" में उनको "ठिगने क़द की, तंग कंधों, चौड़े नितंबों और छोटी टाँगोंवाली जाति" कहा। नीशे (Nietzsche)-जैसा दार्शनिक कहता है—

"जब तू स्त्री के पास जाय, तो अपने कोड़े को याद रखना।" हमारे यहाँ कबीर-जैसा महात्मा भी स्त्री-निंदा से दूर न रह सका। उन्होंने कह ही डाला—

"नारी नदी अगाध जल, डूब मुआ संसार।"

पुरुष इस स्त्री-निंदा को सुनकर मन-ही-मन अपनी श्रेष्ठता पर प्रसन्न होता है। वह इस बात की परवा नहीं करता कि ये निंदा-वाक्य स्त्री-जाति और पुरुष-जाति के सनातन-युद्ध का एक अंश हैं, घेरे में क़ैद हुए लोगों की सैनिक संहिता है और पराजित पुरुषों की कातर-ध्वनि। हम इस बात का विचार नहीं करते कि ये लोग जो कुछ कह रहे हैं, कहीं पक्षपात से तो नहीं कह रहे। शोपनहार वीनस की एक सुंदरी को चाहता था, परंतु उस सुंदरी ने उसका परित्याग करके बायरन से संबंध जोड़ लिया। नीशे का लाउसलोमी-नामिका एक रमणी पर प्रेम था। वह उसके पीछे-पीछे योरप का आधा भूखंड घूमा और उसने शब्दों और प्रार्थनाओं द्वारा उसकी कृपा प्राप्त करने का यत्न किया, परंतु वह उसे छोड़कर किसी दूसरे से प्रेम करने लगी। इसी प्रकार वीनिंगर भी एक परिचारिका से प्रेम करता था। जब उसने उसकी इच्छा को पूर्ण करने से इनकार कर दिया, तो वीनिंगर को इतनी घोर निराशा हुई कि उसने गोली मारकर आत्महत्या कर ली। इन लोगों की पुस्तकों में नारी-निंदा मिलने का कारण समझना अब

कठिन नहीं। हम इनकी पुस्तकों को कृतज्ञता-पूर्वक इस लिये पढ़ते हैं; क्योंकि वे हमारे प्रतिनिधि होकर सुरक्षित रूप से उस जाति के प्रति हमारे गुप्त विद्वेष को प्रकट करते हैं, जिससे हम सदा प्रेम करेंगे।

सन् १६०० तक स्त्री को मुश्किल से कोई ऐसा अधिकार प्राप्त था, जिसको मानने के लिये पुरुष क़ानून से बाध्य हो। वह उसको पीट सकता था और यदि उसमें प्राण बाक़ी रह जायँ, तो क़ानून पति का कुछ नहीं कर सकता था। वह प्रतिदिन रात्रि को घर से बाहर व्यभिचार करके भी क़ानून की गिरफ़्त से बाहर था। यदि वह स्त्री को छोड़कर आप ही कहीं भाग न जाय, तो स्त्री के पास अपने पति के सदृश ही व्यभिचार करने के सिवा उससे बदला लेने का और कोई उपाय न था। यदि स्त्री धन पैदा करे, तो वह पुरुष का हो जाता था; यदि वह मायके से कुछ संपत्ति लाए, तो उसका मालिक भी वही हो जाता था। स्त्री को कारख़ाने (फ़ैक्टरी) में काम करने या वोट देने का भी अधिकार प्राप्त होगा, यह कभी किसी के विचार में भी नहीं आता था।

तब अचानक ही ये मनमोहिनी दासियाँ स्वतंत्रता और समता ऐसी असंभव बातों की चर्चा करने लगीं। उन्होंने खिड़कियाँ चकनाचूर कर डालीं, लेटरबक्स तोड़ डाले, समाप्त न होनेवाले जलूस निकाले और कड़ी-कड़ी

बातें सुनाईं। उन्होंने एक बार दृढ़ निश्चय कर लिया और उस पर अटल रहीं। अब पुरुष उनको पीट नहीं सकते। अब वे हमारे लिये रोटी भी नहीं बनाएँगी। वे घर पर बैठी रहने के लिये भी बाध्य नहीं, पतियों के पापों के झंझट में पड़ने की जगह वे अपने काम में लीन रहती हैं। उन्होंने आत्मा और वोट ऐसे समय में प्राप्त किए हैं, जब कि पुरुष आत्मा को खो बैठे और वोट को भूल गए प्रतीत होते हैं। वे तंबाकू पीतीं, सौगंध खातीं, मदिरा पान करतीं और सोचती हैं। दूसरी ओर अभिमानी पुरुष जिन्होंने कभी इन कलाओं का इजारा-सा ले रक्खा था, घर बैठे बच्चों की देख-रेख कर रहे हैं।

* * *

इन अतीत, प्राचीन और स्थिर रीतियों तथा संस्थाओं के एकदम उलट-पलट हो जाने का कारण क्या है? इस परिवर्तन का व्यापक कारण मशीनरी की सीमातीत वृद्धि है। स्त्री का उद्धार औद्योगिक क्रांति का एक स्वाभाविक फल है। इसका पहला फल यह हुआ कि स्त्रियाँ इतनी बड़ी संख्या में उद्योग-धंधों में लग गईं कि पहले कभी उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। पुरुषों की अपेक्षा वे सस्ती मज़दूरनी थीं। कारखानों के मालिकों ने महँगे और विद्रोही पुरुषों की अपेक्षा उनको काम देना पसंद किया। एक शताब्दी पूर्व इँगलैंड में पुरुषों का

काम मिलना कठिन हो रहा था। विज्ञापकों ने उनको अपनी स्त्रियाँ और बच्चे कारख़ानों के दरवाज़ों पर भेजने के लिये कहा। मालिकों को अपने लाभ का ध्यान रहता है। आचार, संस्था या राज्य का विचार उनके मन को विक्षिप्त नहीं करने पाता। जिन लोगों ने योरपीय देशों में (और अब भारत में भी) "घर का नाश" करने का कपट प्रबंध रचा, वे उन्नीसवीं शताब्दी के देश-हितैषी कारख़ानों के मालिक (मैनुफ़ैक्चरर) थे।

स्त्रियों के उद्धार के लिये इँगलैंड में सबसे पहला क़ानूनी क़दम सन् १८८२ में रक्खा गया। उस वर्ष यह क़ानून पास हुआ कि ग्रेट ब्रिटेन की स्त्रियाँ आज से अपना कमाया हुआ धन अपने पास रख सकेंगी। यह क़ानून कारख़ानों के मालिकों ने पास कराया था, ताकि लालच से खिंचकर स्त्रियाँ उनकी मशीनों पर काम करने आने लगें। उस समय से लेकर अब तक पूँजीपतियों की धनलोलुपता ने स्त्रियों को घर के अविरत आयास से निकालकर दूकान की गुलामी में ला बैठाया है। इँगलैंड में आज प्रत्येक दो स्त्रियों में से एक किसी कार्यालय या फ़ैक्टरी में काम करती है। उद्योग-धंधे में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा चौगुनी तेज़ी से बढ़ रही है। जिस समय तक वर्तमान पीढ़ी मरकर समाप्त होगी, इँगलैंड, जर्मनी और अमेरिका में पाँच करोड़

रहने के मकान होंगे; परंतु 'घर' मुश्किल से एक होगा।

कारण यह कि स्त्रियों के उद्योग-धंधों में लगने से गार्हस्थ्य जीवन का ह्रास अवश्यंभावी है। जिस प्रकार मशीनरी ने नए-नए यंत्रों की एक बाढ़-सी उत्पन्न कर दी है और बहुत बड़े परिमाण में चीज़ें तैयार करके लागत बहुत सस्ती कर दी है, उसी प्रकार फ़ैक्टरी ने सैकड़ों व्यवसायों में, जो स्त्री के जीवन में वैचित्र्य का कारण हो जाते थे, घर को मात करके पछाड़ दिया है। थोड़ा-थोड़ा करके स्त्री का काम उससे छीन लिया गया है। जो काम उसकी दासता तथा सुख के कारण थे, वे एक-एक करके उसके हाथ से निकाल लिए गए हैं। इससे घर दिलचस्पी से ख़ाली और वह आप निकम्मी और असंतुष्ट रह गई है।

स्त्री के लिये यह प्रशंसा की बात है कि वह घर छोड़-कर फ़ैक्टरी में गई है। उसने वह काम ढूँढ़ लिया है, जो उसके हाथ से निकल गया था। वह जानती थी कि काम के बिना वह निरर्थक मुफ़्त में दूसरे का अन्न खानेवाली बन जायगी। केवल वही पुरुष उसका भोग कर सकेंगे, जो धन की दृष्टि से पुष्ट, परंतु शरीर की दृष्टि से भ्रष्ट होंगे। स्त्री को जब पहलेपहल वेतन मिला, तो उसे वैसी ही प्रसन्नता हुई, जैसे स्कूल से भागकर मज़दूरी से धन

कमानेवाले लड़के को अपनी कमाई से सिगरेट ख़रीदने पर होती है। बड़े उल्लास के साथ स्त्री ने नई दासता को स्वीकार किया। वह अपने लिये कोई काम पाने की इच्छुक थी, अब किसी-न-किसी प्रकार फिर अपने को किसी काम के योग्य पाकर फूली न समाई।

इसलिये जब घर ख़ाली हो गया, वह कोई ऐसा स्थान न रहा, जहाँ कोई चीज़ें बनाई जाती हों या जीवन बिताया जाता हो, तो पुरुषों और स्त्रियों ने उसका परित्याग कर दिया और वे कबूतरों के दड़बों और मधुमक्खियों के छत्तों-जैसी छोटी-छोटी कोठरियों और लंबी-लंबी डॉर्मिटरियों (शयन-स्थानों) में सोने लगीं, जो उन लोगों के लिये बनाई गई थीं, जिनका जीवन दिन-रात नगर के शोर और हाय-हाय में घर से बाहर बीतता था। घररूपी संस्था, जो लाखों वर्षों से चली आ रही थी, एक ही पीढ़ी में नष्ट कर दी गई। वैज्ञानिक समाज-शास्त्री और सामाजिक मनोविज्ञानी कहा करते थे कि संस्थाएँ, रीति-नीति और आचार-व्यवहार मंद और अगोचर क्रम से ही बदल सकते हैं। किंतु यहाँ सभ्यता के इतिहास में एक घोर परिवर्तन हो गया और इसमें एक मनुष्य को लड़कपन से प्रौढ़ावस्था में पहुँचने तक जितना समय लगता है, उससे अधिक समय नहीं लगा। संपादक, उपदेशक और राजनीतिज्ञ लोग जनता को सावधान करते

ही रह गए कि देखना कहीं सोशलिस्ट (साम्यवादी) घर का विध्वंस न कर दें। इस बीच में उनकी आँखों के सामने उनके जीवन-काल ही में आर्थिक परिवर्तन की अपौरुषेय क्रियाओं ने दुर्घटना कर डाली और नीति-उपदेशक समझ ही न सके कि इसके कारण क्या थे।

घर कदाचित् बचा रहता, यदि बच्चे इसे कष्ट और हँसी से भरा-पूरा रखते। परंतु औद्योगिक क्रांति उनको भी ले गई, बच्चे जो खुले खेतों में बड़ी सहायता और आनंद का कारण होते थे। जनाकीर्ण नगरों और तंग कोठरियों में खर्चीली रुकावटें बन गए। संसार में मज़दूरों की बहुतायत थी, इसलिये पुराने फ़ैशन से दर्जनों बच्चे पैदा करते जाने का रिवाज बंद करना पड़ा, ताकि कहीं मनुष्य सदा दरिद्र और अशिक्षित न रहें। मशीनों के आविष्कार ने फ़ैक्टरियाँ बनाई थीं, और फ़ैक्टरियों ने बड़े-बड़े नगर बनाए थे और नगरों ने लोक-तंत्र-शासन (डेमोक्रेसी), साम्यवाद (सोशलिज़्म) और गर्भ-निरोध को जन्म दिया। यह काम किसी की इच्छा से नहीं हुआ। स्त्रियों के अधिकारों की विशद व्याख्या और संतान संख्या को सीमित रखने के उपदेशों का इसके साथ बहुत थोड़ा संबंध है। धर्मोपदेशकों और राष्ट्रपतियों के उपदेश इसकी गति को रोक नहीं सके। इन परिणामों को पहले से रोकने के लिये योरप और

अमेरिका के गत एक सौ वर्ष के संपूर्ण इतिहास को बदलने की आवश्यकता थी; परंतु शक्ति के सदृश इतिहास को भी उलटाया नहीं जा सकता। इसमें एक विशेषघातक शक्ति रहती है। इसकी गति को रोकना संभव नहीं।

देहात में खेती करते हुए मनुष्य के लिये बच्चे सुख और आनंद की सामग्री हैं। वे छोटी आयु ही में सहायता भी देने लगते हैं; परंतु नगरों में वे भार बन गए। वहाँ पाँच वर्ष की अवस्था में उनसे काम नहीं लिया जा सकता था और उनको रखने के लिये फ़ालतू कमरा लेने से किराया अधिक देना पड़ता था। इतना ही नहीं, वरन् नागरिक जीवन से माता के लिये बच्चा जनना एक स्वाभाविक घटना नहीं एक भयावह कार्य हो गया। फ़ैक्टरी में काम करने या घर में कुछ काम न होने से आधुनिक स्त्री का शरीर अपनी पूर्वजाओं से दुर्बल हो गया। आधुनिक पुरुष की भ्रष्ट सौंदर्य-बुद्धि ने दुबले-पतले शरीर पर प्रेम प्रकट करके और भी काम बिगाड़ दिया। हृष्ट-पुष्ट और मोटी-ताज़ी स्त्री हमारे चित्रकारों और नागरिक पुरुषों को नहीं भाती थी। जिस स्त्री से मज़बूत बच्चे पैदा होने की आशा हो सकती है, उसकी अपेक्षा दुबली-पतली, परंतु चटकीली-मटकीली, में ही उन्हें सौंदर्य देख पड़ता था। इसलिये स्त्रियाँ दिन-पर-दिन बच्चा जनने में अधिक

असमर्थ होती गईं। जितने भी अधिक काल तक उनसे हो सकता था, वे माता बनने से बचती थीं। उनके पति भी अधिकांश इस बात में उनसे सहमत होते थे और तब उन नए यंत्रों ने, जिन्हें गर्भ-निरोधक कहा जाता है, इस चक्कर को पूरा कर दिया और स्त्रियों के उद्धार में चुपचाप उनको सहयोग दिया। संतान की चिंता से एवं उस अंतिम काम से छुटकारा पाकर, जो शायद उसके लिये घर को एक सहनीय और सार्थक परिस्थिति बना देता, वह दफ़्तर, फ़ैक्टरी और संसार में चली गई। बड़े अभिमान के साथ उसने दूकान में पुरुष के साथ स्थान लिया। वह वही काम करने, वही बातें सोचने और वही शब्द बोलने लगी, जो पुरुष करता, सोचता और बोलता था। उद्धार अधिकांश में नक़ल के मार्ग से हुआ। नवीन स्त्री ने एक-एक करके परंपरागत और पुराने ढर्रे के पुरुष के अच्छे या बुरे स्वभाव भी ग्रहण कर लिए। वह उसके सिगरेट पोने, धर्म की निंदा करने, ईश्वर में संदेह करने, सिर पर टोपी और टाँगों में पैंट पहनने की नक़ल करने लगी। दिन-भर एक दूसरे के समीप रहने से पुरुष ज़नाने और स्त्रियाँ मर्दानी बन गईं। एक जैसे व्यवसायों, एक जैसी परिस्थितियों और एक जैसे उत्तेजनों ने दोनों जातियों को प्रायः एक ही साँचे में ढाल दिया। एक पीढ़ी के अंदर-अंदर ही स्त्री को

पुरुष से पहचानने और अनुशोचनीय सम्मिश्रण से बचने के लिये उन पर निशान लगाने की आवश्यकता हो जायगी। इस समय भी उनमें निश्चित रूप से भेद करना कठिन हो रहा है। प्राचीन काल के स्त्री-पुरुष बाँझपन से कितना भय खाते थे, यदि हम इस पर तनिक विचार करें, तो पिछले समयों की स्त्रियों की तुलना में आजकल की निःसंतान स्त्री या एक बच्चे की माता एक गंभीर परिवर्तन उपस्थित करती है। अभी हमारी शताब्दी के आरंभ तक भी, स्त्री का सम्मान उसकी संतान की संख्या के अनुपात से न्यून या अधिक होता था। स्त्री का काम था कि या तो वह माता हो, या वारांगना! प्रतिदिन सहस्रों देवी-देवताओं से संतान के लिये प्रार्थनाएँ होती थीं। पुत्र-दर्शन के लिये मालाएँ फेरी जातीं, समाधों और क़ब्रों तक पर माथे रगड़े जाते और मिन्नतें मानी जाती थीं! माया-जाति के लोगों में हताश दंपति उपवास करते, प्रार्थना करते और देवता पर चढ़ावा चढ़ाते थे, ताकि वह प्रसन्न होकर उनको बहुत-से बच्चे दे। एक अफ़्रीकन राजा से जब पूछा गया कि तुम्हारी संतान कितनी है, तो उसने बहुत उदास होकर कहा कि बहुत थोड़ी, मुश्किल से सत्तर होंगी। हमारे यहाँ राजा सगर के एक सहस्र और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र बताए जाते हैं।

क्या कारण है कि मातृत्व का चित्र हमारे हृदय को

स्पर्श करके नेत्रों में आँसू ले आता है? कारण यह कि बड़े-बड़े नगरों के प्रादुर्भाव के पूर्व बच्चों की एक बड़ी संख्या में आवश्यकता थी और हमारे भाव उस आवश्यकता के प्रत्यावर्तन थे। अब नगर को संतानोत्पत्ति का प्रयोजन नहीं। वह अपनी चमक-दमक से देहात के मज़बूत रज-वीर्य से उत्पन्न हुए बच्चों को आकर्षित कर सकता है। नगर की चटक-मटक, बिजली के नानावर्ण प्रकाश, व्यवसाय और भोगविलास के साधनों के प्रलोभन से खिंचकर प्रतिवर्ष हज़ारों देहाती बच्चे नगर में आते हैं और अपनी बारी से चतुर और बाँझ बन जाते हैं। नगर का इस बात में विश्वास नहीं कि बच्चों का होना आवश्यक है। इसलिये वह स्त्रियों को सधाकर नायिका बनाता है और मातृत्व के मैल से उनको मैला नहीं करता। मातृत्व की कोमलता, जो ईश्वर में संदेह करनेवाली आत्माओं को भी कभी-कभी पिघला दिया करती है, उस देहाती यौवन की उपज है जिसमें स्त्रियाँ अब तक भी संतान उत्पन्न करती हैं। जिन अवस्थाओं में वे उत्पन्न हुए थे, उनके परिवर्तित और नष्ट हो जाने पर भी हमारे भाव अभी तक बचे हुए हैं। पिछले लोग कहा करते थे—जिनके संतान नहीं, उनको प्रसन्नता भी नहीं। बलवान् पुत्र और सुशील पुत्रियाँ उत्पन्न करने के लिये बड़े चरित्र की आवश्यकता है। यह सुंदर चित्र

बनाने, कविता करने, उपन्यास और लेख लिखने से बढ़कर पुण्य कार्य है। यह पितृ-ऋण से उऋण होना है।

*   *   *

अच्छा, तो फिर मुक्त स्त्री आर्थिक विकास की उपज है। वह अपनी इच्छा से मुक्त नहीं हुई, जो नीति-उपदेशक उसकी वर्तमान स्थिति को लक्ष्य करके उसकी निंदा करते हैं, उनसे बढ़कर बकवादी और कोई नहीं। हमें निष्पक्ष होकर उस पर विचार करना चाहिए।

उद्योग में वह अपने को आश्चर्य-जनक पारदर्शिता और उत्साहमय धैर्य के साथ अवस्थाओं के अनुकूल बना रही है। बहुत-सी चालाकियाँ और बुद्धिमत्ता के स्वभाव, जिनको हाल का मनोविज्ञान पुरुष की ही सहज संपत्ति कहता था, बिलकुल बाह्य रूप से प्राप्त किए सिद्ध हुए हैं। इनको स्त्रियाँ भी वैसी ही सुगमता से प्राप्त कर सकती हैं, जिस सुगमता से वे अलंकार पहनती या पाउडर लगाती हैं। इन दफ़्तरों में काम करनेवाली लड़कियों को सब कहीं तनिक ध्यान-पूर्वक देखिए (काम-कला के सिवा) किसी नई बात को सोच निकालने में शायद वे कुछ पीछे हों; परंतु उनकी शांत कार्यक्षमता, धैर्ययुक्त शिष्टाचार, बिना किसी आडंबर के दफ़्तर के बहुत-से असली काम को हथियाना—जब कि उपरिस्थित पुरुष सिगरेट पीता, कुरसी में सहारा लगाकर आराम करता और बड़े

रौब से इधर-उधर देखता है—ललित कलाप्रिय तत्त्ववेत्ता को विस्मय तथा प्रशंसा के भाव से भरे बिना नहीं रह सकता। एक-दो पीढ़ियों में अबलाओं ने उद्योग-धंधे में अपना स्थान जीतने में इतनी उन्नति कर ली है कि जान स्टूअर्ट मिल को भी आज विस्मय होगा कि जिस स्त्री-जाति का उसने पक्ष समर्थन किया था, उसके लिये उसकी बनाई हुई आशाएँ कितनी परिमित थीं। कोई नहीं कह सकता कि स्त्रियाँ उद्योग-धंधे में कहाँ तक घुस जायँगी। वह समय आ सकता है, जब स्त्रियों की कार्य-कुशलता और छोटी-छोटी बातों को भी ठीक-ठीक रीति से करने की दक्षता पुरुषों के बड़े बल और अधिक साहसिक आरंभ-शूरता को मात कर देगी। जब बिजली की शक्ति से कल-कारख़ानों से मैल दूर हो जायगा और उनमें शारीरिक आयास की आवश्यकता न रहेगी, तो पुरुष को भी आर्थिक संसार में अपना स्थान बनाए रखने के लिये समझदार बनना पड़ेगा।

राजनीति में स्त्रियों को उतना लाभ नहीं रहेगा। निःसंदेह उद्योग-धंधे में काम करनेवाली को व्यवस्थाओं और समकालीन भेद से अपनी रक्षा करने के लिये राजनीति के खेल में भाग लेना पड़ा है। क्या दुष्ट पुरुष-जाति ने अपने पुराने विशेषाधिकारों के गिर्द सहस्रों क़ानूनों की बाढ़ नहीं लगा रक्खी और अपनी शक्ति को सैकड़ों स्थानों

पर पूजनीय क़ानूनों के क़िले में सुरक्षित नहीं कर रक्खा? इन सब क़िलेबंदियों को हटाना आवश्यक है। घरेलू श्रम और हर दूसरे वर्ष बच्चा जनने के बोझ से मुक्त हुई स्त्री-जाति की संयमित शक्ति के लिये प्रत्येक मार्ग खोलना पड़ेगा। देखिए, मताधिकार प्राप्त करने के युद्ध में उन्होंने कैसी प्रचंड योग्यता दिखलाई। आधी दुनिया उनकी विरोधी थी, परंतु उन्होंने कितनी वीरता और कितनी तेज़ी से उसको नीचा दिखाया। युद्ध के मारू बाजे और उन्माद के नशे में मस्त सन्नद्ध पुरुषों की वीरता इन स्त्रियों के साहस का मुक़ाबला न कर सकी। ये स्त्रियाँ वोट देने के स्थानों पर पहुँचीं, इन्होंने अधिकारियों के द्वारों को खटखटाया और तब तक खटखटाना बंद न किया, जब तक कि वे खुल न गए और प्रजातंत्र उनको भीतर ले जाने के लिये विवश न हुआ। आज से पचास वर्ष बाद स्त्रियाँ अनुभव करेंगी कि वे कितने पूर्णरूप से भीतर घुस गई हैं।

उनमें से कुछ अब समझती हैं और अनुभव करती हैं कि नाक की गिनती का नाम उद्धार नहीं और कि स्वतंत्रता राजनैतिक नहीं, वरन् मन की होती है। लाखों सचेत और सुखी बालिकाएँ उन स्कूलों और आश्रमों को अपने रूप और चारुता से भर रही हैं, जिनमें पहले केवल अभिमानी पुरुष ही भरती हो सकते थे। सहस्रों कालेजों में

आप उनको पाएँगे। उनके मुख-मंडल संसार के साहित्य और कला से, नए सिरे से गंभीर हो रहे हैं, उनके नेत्र ज्ञान-लिप्सा से चमक रहे हैं और उनके कसरती शरीर पूर्ण यौवन की वृद्धि से उछल रहे हैं। कदाचित् उनका सौंदर्य हमें अंधा कर देता है और हम उनके बुद्-बुदों के समान उठते हुए उल्लास और प्रवाहमय चपलता में बह जाते हैं; परंतु क्या आपने उनको कभी अपने शिक्षकों से प्रश्न पूछते सुना है? क्या आपने उनको किसी सिद्धांत की धज्जियाँ उड़ाते और संसार को दुबारा अपने हृदय की अभिलाषा के निकटतर बनाते देखा है?

इस सारी शिक्षा का क्या परिणाम होगा? क्या यह आधुनिक स्त्री के विशाल जीवन के साथ उसको दुबारा ढाँचे में ढालनेवाले सहस्रों नवीन अनुभवों के साथ सहयोग देकर उसे इस बदलती हुई दुनिया के साथ बराबरी करनेवाली बुद्धि प्रदान करेगी? क्या मन और रुचि की यह नवीन विभिन्नता उस एकता और सहज ज्ञान की प्रज्ञा को फोड़ डालेगी, जिसने कभी स्त्री को ससंशय प्रतिभान्वित पुरुष के साथ अनंत युद्ध में उतना काम दिया था? क्या स्त्री में इस नवीन ज्ञान का प्रादुर्भाव उससे विवाह की इच्छा रखनेवाले पुरुष को डराकर भगा देगा और सुशिक्षिता नारी के लिये पति मिलना कठिन हो जायगा? कहते हैं, रोमन नागरिक शिक्षिता भार्या की प्रत्याशा से

भयभीत हो जाता था, और यही बात प्रत्येक पुरुष की है। वह उस स्त्री के सहवास में सुख का अनुभव नहीं करता, जिसकी बुद्धि उसकी अपनी बुद्धि के तुल्य हो। वह केवल उसी पर प्रेम कर सकता है, जो उसकी अपनी अपेक्षा दुर्बल है; परंतु स्त्री केवल उसी से प्रेम कर सकती है, जो उससे अधिक बलवान् हो। इसलिये जिस लड़की ने अपने ज्ञान और विचारों को संस्कृत किया है, वह पति की प्राप्ति में उस लड़की के सामने न ठहर सकेगी, जिसने अपनी स्वाभाविक चारुता और अर्ध-अचेत पटुता को उन्नत किया है। वह उन क्षेत्रों में अनधिकार प्रवेश कर रही है, जिनको पुरुषों ने शताब्दियों से पुरुषों ही के लिये रक्षित रक्खा है। इसलिये सुख की अभिलाषिणी कोई भी चतुर लड़की पति के सामने अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता को छिपाएगी। गृहस्थी को सुख-शांति से भरा-पूरा रखने के लिये पुरुष की आरंभशूरता और श्रेष्ठता के भ्रम को बनाए रखना ही आवश्यक है।

लगभग पचास वर्ष में स्त्रियों ने प्रमाणित कर दिया है कि स्त्री और पुरुष के बीच के मानसिक अंतरों का कारण उतना अपरिवर्तनीय प्रकृति नहीं, जितना कि परिस्थिति और व्यवसाय है। इसका यह अर्थ नहीं कि स्त्रियाँ शीघ्र ही उन बौद्धिक रुकावटों को हटा सकेंगी, जिनके साथ समय और रीति ने उनको चारों ओर से

घेर रक्खा है। उनका संस्कृत-संबंधी उत्कर्ष अभी केवल आरंभ ही हुआ है। उनके पीछे कोई बहुत पुराना ऐतिह्य और प्रोत्साहन नहीं है। उनमें विश्वास भरनेवाले या उनके उत्कर्ष के लिये उन्हें आदर्श का काम देनेवाले कोई बड़े-बड़े दृष्टांत नहीं हैं। अभी हाल ही में सामान्य स्त्री को विद्या-प्राप्ति के ऐसे अवसर मिले हैं, जिनको हम मुश्किल से पुरुष के बराबर कह सकते हैं। अभी अनेक पीढ़ियों तक हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों में स्त्रियों का पुरुषों से अनुपात उस अनुपात से बहुत कम रहेगा, जो जन-संख्या में स्त्रियों का पुरुषों से है। जब तक अनुपात बराबर न हो, कला या विज्ञान के क्षेत्र में स्त्री की उत्पादक क्षमता की तुलना पुरुष की उत्पादक क्षमता के साथ करना व्यर्थ और अन्याय है। पुरुष-जाति में जिन प्रतिभाशाली मनुष्यों ने नए-नए आविष्कार किए हैं, वे करोड़ों पठित पुरुषों में से चुने हुए सर्वोत्तम हैं। स्त्रियों में प्रतिभा उनकी संख्या को कैसे पहुँच सकती है, जब तक स्त्री को मनुष्य-जाति के सभी शिक्षा-संबंधी अधिकारों में समान भाग न मिल जाय? और अंततः वर्तमान काल के सदृश चाहे स्त्रियाँ कम-से-कम संख्या में भी बच्चे पैदा करने लगें, मातृत्व स्त्री की शक्तियों का एक बड़ा भाग ज़रूर सोखता रहेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि वह संतानोत्पत्ति को अपना

एक महान् कार्य समझती रहेंगी, तथा साहित्य और कला ऐसी नैमित्तिक झालरों को पुरुषत्वहीन पुरुषों के सिपुर्द करने में ही संतुष्ट रहेंगी। वह इस बात का आविष्कार करेंगी कि इस संसार में लिखित शब्दों से भी बढ़कर कोई चीज़ें हैं। वह यह भी मालूम करेंगी, जिसको अब पुरुष भी समझ सकते हैं कि बौद्धिक और चतुर के बीच कुछ अंतर है।

इस बीच में आधुनिक स्त्री के शरीर की क्या दशा हुई है? क्या उसके घर से निर्वासन और फ़ैक्टरी में स्वागत से उसके शरीर का अपकर्ष हुआ है? बहुत संभव है। वह उतनी स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट नहीं मालूम होती, जितनी कि उसकी खेती का या घर का काम करनेवाली दादी थी। उसके चेहरे पर प्राकृतिक रंग बहुत कम है। बच्चा जनने में उसे इतनी लंबी लाचारी और पीड़ा होती है कि पिछले समय की स्त्री यदि उसे देख पाए, तो उसे बड़ी घृणा हो; परंतु यह बात तो हम सभी पर लागू होती है। जब से पुरुष कृषि-कर्म को छोड़कर फ़ैक्टरियों में काम करने लगे हैं, तब से उनका भी बल क्षीण हो गया है। आधुनिक मन अधिक सचेत है, यह जटिल यंत्रों और वाहनों को स्थिर विश्वास और (अपेक्षाकृत) निर्भयता के साथ पकड़ता है; परंतु आधुनिक शरीर उन आयासों और बोझों के लिये अक्षम

है, जिनको कभी यह अपने दैनिक कार्य के रूप में वहन किया करता था।

अपने सब दुःखों के होते हुए भी हमारे समय की स्त्री इतनी सुंदर अवश्य है कि यदि वह किसी तत्त्ववेत्ता के पास से निकल जाय, तो उसका सिर चकराने लगेगा। वह अपनी मोहिनी चारुता को चतुर कलाओं द्वारा इतनी अधिक अवस्था तक अक्षुएण रखती है, जिसमें कि पिछली शताब्दियों की स्त्रियाँ बूढ़ी हो जाया करती थीं। इसके लिये हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए। यह हर्ष की बात है कि स्त्रियाँ अपने को बूढ़ी नहीं होने देतीं और चालीस वर्ष की आयु में भी अपने काम-बाणों से पुरुषों को घायल कर देती हैं। इस दृष्टि से पाउडर और लिप-स्टिक भी कला और सभ्यता के लिये क्षंतव्य अनुबंध हैं। यद्यपि चेहरे की प्राकृतिक लाली इन अंग-रागों और कांति-लेपों से कहीं अधिक अच्छी है।

समकालीन स्त्री की यह थोड़ी-सी भंगुरता, यह शारीरिक दौर्बल्य, कदाचित् एक अस्थायी और ऊपरी अवस्था है। बिजली से सारे काम लेनेवाले जगत् में, फ़ैक्टरियाँ उतनी ही साफ़ होंगी जितने कि कभी घर होते थे। नगर बाहर की ओर फैल जायँगे और मनुष्य एक बार फिर स्वच्छ वायु में साँस लेने लगेंगे। टेनिस, बास्केट-बॉल और गॉल्फ़ आदि खेलों के प्रताप से

आधुनिक लड़की उस गुलाबी रंग को फिर प्राप्त कर लेगी, जो नगर के उद्योग-धंधे ने उसके गालों से छीन लिया है। तंग पोशाक की रुकावट को उसने पहले ही दूर कर दिया है। आधुनिक लड़की का शरीर उन प्रतिबंधों और अभेद्य साज़-सामानों से बड़ी वीरता-पूर्वक छुटकारा पा चुका है, जो कभी उसे जकड़कर पूरी तरह से साँस तक नहीं लेने देते थे। सन् १९२७ की लड़की जिस चारुता के साथ निकर-वाकर पहनती है, उसे देख आश्चर्य होता है। उसके नंगे घुटनों को देखकर पुरुष की कल्पना-शक्ति चकित-स्तंभित रह जाती है, और कौन जानता है—कदाचित् स्त्रियों में कोई सौंदर्य ही न होता, यदि पुरुषों में कल्पना-शक्ति न होती?

स्त्रियों को पुरुषों की तरह बाल कटाए और सिगरेट पीते देख कदाचित् हममें से कई एक को मानसिक वेदना हो, परंतु आनेवाली पीढ़ी इन ऊपरी विकारों की कुछ परवा नहीं करेगी। जिस किसी बात को सुंदर स्त्रियाँ एक ही रीति से करती रहेंगी, वही सामान्य पुरुषों को मनोहर जान पड़ने लगेगी। रीति-रिवाज आचार-नीति बनाया करते हैं और सौंदर्य में भी इनका हाथ रहता है। पहले की स्त्रियाँ हुक्का पिया करती थीं, और दुनिया के सब कारबार वैसे ही चलते आए हैं। आधुनिक युग की लड़कियाँ सिगरेट पीकर मुँह से धुएँ के बादल

निकालेंगी, तो भी दुनिया वैसे ही चलती रहेगी। तमाकू पीना हानिकारक और रम्य हो सकता है; परंतु स्त्रियाँ और पुरुष छोटे और आमोदमय जीवन को पसंद करें, तो क्या उनको उसे ग्रहण करने का अधिकार न दिया जाय? हमें इस बात का कैसे निश्चय हो सकता है कि उल्लास प्रज्ञा से अधिक बुद्धिमान् नहीं?

परंतु हम वर्तमान नाच के विषय में क्या कहें? क्या इसका आविष्कार किसी स्त्री ने किया था या किसी पुरुष ने? फिर लूट, हत्या और राजनीतिरूपी शांत कलाओं में स्त्रियों की बढ़ती हुई निपुणता के संबंध में क्या कहा जाय? योरप और अमेरिका में स्त्रियों के डकैती डालने और नर-हत्या तक करने की घटनाएँ दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही हैं। हाल में अमेरिका के एक पत्र में समाचार छपा है कि एक पुरुष सड़क पर टहल रहा था। तीन लड़कियाँ एक गाड़ी में बैठी हुई उसके पास से होकर निकलीं। उन्होंने उस पुरुष को गाड़ी में बैठ जाने के लिये कहा। पुरुष गाड़ी में बैठ गया। थोड़ी दूर जाकर लड़कियों ने एक एकांत सड़क पर गाड़ी ठहरा दी। तब आपस में लाड़-प्यार होने लगा। इस बीच में एक लड़की उस पुरुष में अनुराग की कमी देखकर बहुत क्रुद्ध हुई। आपस में धौल-धप्पा होने लगा। दो लड़कियों ने पुरुष को पकड़ लिया और तीसरी ने अपनी टोपी के

पिन से उसे घायल कर दिया और उसे सड़क पर निः-सहाय छोड़कर सब भाग गईं। क्या अब भी स्त्रियों के उद्धार में कोई संदेह कर सकता है?

ऐसा जान पड़ता है कि प्रोफ़ेसर हक्सले का कथन ठीक ही है—"स्त्री का सद्गुण पुरुष की अत्यंत काव्य-मय कल्पना थी।" उनमें ये मनोभाव सदा से हैं, परंतु एक समय वे इनको बड़े यत्न के साथ छिपाए हुए थीं, क्योंकि उनकी धारणा थी कि सभ्य पुरुष लज्जा और मर्यादा को अच्छा समझते हैं; परंतु अब पुरुष अविनय और अमर्यादा के द्वारा अधिक शीघ्र आकर्षित होते प्रतीत होते हैं। इसलिये आधुनिक लड़की अपने मन और शरीर को अधिक उदार और खुला बनाने की ओर झुकी हुई है। उसका यह कृत्य थोड़ी देर के लिये इंद्रियों को अवश्य मोहित कर लेता है, परंतु वह आत्मा को आकर्षित नहीं कर पाता। परिपक्व पुरुष रुकावट में आनंद मानता है, वह स्त्री में सूक्ष्म संकेत पसंद करता है। इसमें संदेह नहीं कि जब पुरुष अप्राप्त काल हो, प्रकी-र्णता के किनारे पर चढ़ा हुआ पत्नीव्रत के आनंद को अनुभव करने में असमर्थ और काम-वासना की चारुता के सिवा और किसी प्रलोभन से अनभिज्ञ हो, तो उसको विवाह-बंधन में फँसाने के लिये असाधारण उपायों की परमावश्यकता होती है; परंतु यह अमर्यादा और अविनय

आत्मघातक है। इससे पुरुष के मन में ऐसी लड़की से विवाह करके पत्नी बनाने की नहीं, बरन केवल कुछ काल के लिये विषय-वासना की तृप्ति की ही इच्छा होती है। यदि काम की आँधी से अंधे होकर किसी प्रकार इनका विवाह हो भी जाय, तो विवाह के व्यापार और अभ्यास से विषय-वासनारूपी अग्नि-शिखा के बुझते ही उनमें खटपट हो जाती है।

* * *

इस प्रलयंकरी परिवर्तन के भँवर में विवाह की क्या दशा हो गई! यह प्रायः लुप्त हो गया है। देर तक अविवाहित रहने और तलाक़ ने दोनों तरफ़ से इसको संक्षिप्त कर दिया है। तलाक़ के संबंध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। विलायती पत्रों को पढ़नेवाले इसकी बढ़ती हुई संख्या को भली भाँति जानते हैं। अब रही विवाह को टालने की बात। आधी शताब्दी में पश्चिमी योरप और उत्तरी अमेरिका के नगरों में पुरुषों के विवाह करने की आयु बीस की समीपता से निकलकर तीस के पड़ोस में पहुँच गई है। पुरुष का आर्थिक अक्षमता, स्त्री के अलंकारिक तथा बहुव्ययी और अनुचित व्यापार, धन आदि में अपने से ऊँची श्रेणी के पुरुषों के साथ विवाह करने की स्त्रियों की निर्वाचक लालसा, आधुनिक नगरों में पुरुषों के लिये काम-वासना की तृप्ति की सुविधा ये उन

कारणों में से कुछ एक हैं, जिन्होंने विवाह की आयु को पीछे हटाकर बुढ़ापे के आरंभ के निकट पहुँचा दिया है। अपनी परिस्थिति से धोका खाने के कारण, आधुनिक पुरुष स्त्री से विवाह नहीं, वरन् काम-वासना की तृप्ति के लिये स्त्रीपन चाहता है; क्योंकि यह तृप्ति एक क्षणिक कार्य हो सकती है, जिसमें नवीनतम प्रशंसित विधियों के अधीन पुरुष पर कोई स्थायी कर्तव्यता नहीं लागू होती। विवाह एक सुख-विलास है, हमारी स्वाभाविक स्वाधीनताओं पर एक बंधन है, एक रुकावट है; पुरुष ऐसे कारागार में क्यों प्रवेश करे और कच्ची आयु में ही निर्वाण का क्यों अभिलाषी हो, जब कि प्रत्येक नाट्यशाला में उसके लिये बड़े-बड़े प्रलोभन मौजूद हैं और गली का प्रत्येक कोना उत्तरदायित्वहीन-विलासिता को शरण देता है।

सच तो यह है कि पुरुष कायर है। वह उन कठोर बरजोरियों और विशाल कार्यों का सामना करना नहीं चाहता, जिन्होंने उसके पूर्वजों को पुरुष बनाया था। एक समय था, जब लोग केवल इतनी बात के सहारे ही विवाह का साहस कर लेते थे कि हममें काम करने की शक्ति है और हम परिश्रम करने को तैयार हैं; परंतु अब ऐसा साहस करने के पूर्व अपने पास सहस्रों का होना आवश्यक समझा जाता है और जब अंत को वे विवाह करने का निश्चय करते हैं, तो यौवन की विमल वह्नि शांत हो चुकी होती

है। लाखों स्त्रियों को वारांगनाओं के रूप में जिनको कभी मालूम भी नहीं कि अपना घर या अपने बच्चे क्या चीज़ होते हैं, एक ओर हटा देना आवश्यक है, तब ही दूसरी हज़ारों, विना प्रेम के वड़ी अवस्था में पहुँचकर दुर्व्यसनों से पशु बने हुए पुरुषों के साथ विवाह कर सकती हैं। जब तक इन स्त्रियों को अपनी इच्छा के विना कुमारी रहकर प्रतीक्षा करनी पड़ती है और इस प्रतीक्षा में ही वे सूख जाती हैं, जब कि उनके मौजी मालिक अवकाश के समय में सोचते हैं कि इनको खेल बनाना अच्छा रहेगा या वेश्या या पत्नी—तब तक स्त्रियों का यह उद्धार कैसा दुःखदायक प्रहसन है!

इस स्थिति में बड़ा अपराध पुरुष का है। इस दुःखद कल्पना के अधिकांश का कारण शारीरिक तथा आर्थिक रूप से श्रेष्ठ पुरुष के प्रकीर्ण अधिकार हैं; परंतु इस कंगाल-श्रेणी के बाहर स्त्री भी वैसी ही अपराधी है, जैसा कि पुरुष। मध्यवर्ती तथा ऊपर की श्रेणियों में वह स्वेच्छा से या वैसे ही पराए अन्न पर जीनेवाली सुंदर प्राणी बन गई है। घर से उद्योग-धंधे के निर्वासित हो जाने के कारण घरेलू श्रम से छूट जाने और गर्भ-विरोधक यंत्रों, दाइयों और नर्सों के द्वारा बच्चा जनने के बोझ से छुटकारा पाने के कारण उसके हाथ, हृदय और मस्तिष्क अशांत रूप से निरुद्यम हो गए हैं और अनिष्ट के सहस्रों बीजों के लिये उपजाऊ

भूमि बन गए हैं। यह बात स्वाभाविक ही है कि जितना थोड़ा काम उसे करना पड़ता है, उतनी ही अधिक वह आलसी होती जा रही है और उतना ही कम वह उस बचे-खुचे काम को करना पसंद करती है, जिसको करने के कारण वह एक समय एक खिलौने के स्थान में पुरुष की सहायिका थी। इन अवस्थाओं में एक गुण-दोष-विवेचक कुमार को विवाह एक ऐसा लक्ष्य नहीं जान पड़ता, जिस पर पहुँचने से पुरुष परिपक्वता को प्राप्त होता है, वरन् वह उसे कीट-जगत् में प्रकृति को प्रिय प्रतिज्ञा का सभ्य समर्पण मालूम होता है, जहाँ प्रायः मादा मकड़ी संतानोत्पत्ति के कार्य में लीन नर का सिर काटकर खा जाती है।

इस सबका परिणाम क्या होगा, यह बताना कठिन है। अधिक संभव यही है कि पुरुष जो कुछ चाहता है, वह नहीं होगा। पश्चिमी समाज परिवर्तन की प्रबल धारा में पड़ गया है। वह उसे किसी अवांछित और भाग्य द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर ले जायगी। रीतियों, स्वभावों और संस्थाओं की इस उमड़ती हुई बाढ़ में किसी भी बात का हो जाना असंभव नहीं। जहाँ बच्चे उत्पन्न करने की इच्छा न होगी, वहाँ कदाचित् अस्थायी विवाहों को क्षमा की दृष्टि से देखा जायगा। स्त्री-पुरुषों के स्वतंत्र संयोगों की संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ेगी। यद्यपि उनकी स्वतंत्रता मुख्यतः पुरुषों के लिये ही होगी, तो भी स्त्रियाँ अकेली

और बाँझ रहने की अपेक्षा इन संयोगों में कम बुराई देखकर इनको स्वीकार करेंगी। दूसरी सब बातों में पुरुषों का अनुकरण करती हुई, विवाह के पूर्व ही ब्रह्मचर्य भंगकर डालने में भी वे उनकी बराबरी करेंगी। तलाक़ दिन-पर-दिन बढ़ेगा, तलाक़-हीन विवाह का मिलना एक अक्षत-योनि दुलहन जैसा ही दुर्लभ होगा। विवाह की सारी संस्था नवीनतर तथा अधिक ढीले-ढाले रूपों में ढाली जायगी। प्रत्येक चीज़ का अंत हो जायगा।

हमारी इच्छा इस आनेवाले संकुल संसार से सर्वथा भिन्न चित्र बनाना चाहती है। हम चाहते हैं कि पुरुष अधिक स्वाभाविक आयु में विवाह करें। यह सत्य है कि जवानी अंधी होती है और निर्णय नहीं कर सकती; परंतु बुढ़ापा ठंडा होता है और प्रेम नहीं कर सकता। क्या हमें सुरक्षितता का मूल्य इतना अधिक समझना चाहिए कि जीवन के सर्वोत्तम पुरुष को ही खो बैठें? क्या ही अच्छा हो, यदि स्त्रियों की समझ में यह बात आ जाय कि आकाश-बेल की तरह दूसरों के अन्न पर जीने में न स्वास्थ्य है और न स्थायिता, और उन व्यवसायों की अपेक्षा जो शरीर को कड़ा और आत्मा को पुरुष बनाकर पुरुषत्व-हीन पुरुष की अमनोहर प्रतिमूर्ति बना देते हैं, मातृत्व में अधिक आनंद (यद्यपि अधिक गहरा शोक भी) है। सौंदर्य के सदृश सुख भी कर्तव्य के पूरा करने

में है। मनुष्य को वह काम करना चाहिए, जिसमें उसे अपने लाभ के साथ-साथ जाति का भी हित हो।

यदि स्त्री ने मातृत्व को छोड़कर अपने लिये कोई दूसरा ऐसा व्यापार ढूँढ़ लिया है, जो उसकी शक्ति को सोखता और उसके जीवन को भर देता है, तो यह खुशी की बात है; परंतु यदि वह विचित्र रूप असंतुष्ट होकर इधर-उधर घूमती फिरती है, एक विनोद से अतृप्त रहकर दूसरे के पास भागती है और अपने खाली घर में उसे कोई दिलचस्पी नहीं होती, तो इसका कारण यह है कि उसने प्रेम के सुव्यक्त आदेश को शिरोधार्य नहीं किया। यह सत्य है कि संसार को अब बच्चों की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि पहले थी; परंतु यहाँ हमें संसार का कुछ भी विचार नहीं, यह नर और नारी एक दूसरे के साथ सहवास का सुख ही है जिसके लिये दोनों के संयोग से भी बढ़कर किसी चीज़ की आवश्यकता है। उस विवाह को हम सफल नहीं कह सकते, जिसमें केवल स्त्री और पुरुष का ही संबंध है, इसमें दंपति का उनके बच्चे के साथ संबंध होने से सुख और रम्यता की मात्रा बहुत बढ़ जाती है।

हमें आशा करनी चाहिए कि ये केवल परिवर्तन की कठिनाइयाँ हैं। हमारे आचार-विचार, रीति-नीति, कला और राजनीति की गड़बड़, मरती हुई व्यवस्था तथा

सातत्य की प्रणाली के बीच और उसके बीच, जो उत्पन्न हो रही है, अनुज्ज्वल अंतर है। इस नई प्रणाली का प्रादुर्भाव धीरे-धीरे हो रहा है, हमारे सिद्धांतों या युक्तियों में से नहीं, वरन् एक औद्योगिक, नागरिक और ऐहिक युग की अस्वाभाविक दशाओं के साथ मानवी आवेगों के परीक्षा और प्रमाद-मूलक व्यवस्थापन से। यह समझना ठीक नहीं कि पाश्चात्य सभ्यता का अंत होनेवाला है। यह संसार ऐसा ही चलता रहेगा और लोग अपनी भूलों के अनुभव से लाभ उठाकर एक दिन अवश्य किसी अच्छी प्रणाली का आविष्कार करेंगे।

ऊपर के विचार अमेरिका की 'सेंचुरी'-नामक पत्रिका से संकलित हैं। उनका संबंध यद्यपि अधिकतर पाश्चात्य जगत् के साथ है; परंतु देखनेवाले देख रहे हैं कि भारत भी उसी लहर में बेतरह बहता चला जा रहा है। पश्चिम के औद्योगिकवाद से उत्पन्न होनेवाले सभी अनिष्ट यहाँ भी प्रकट हो रहे हैं। इसलिये देश-हितैषियों का यह कर्तव्य है कि पश्चिम के दृष्टांत से लाभ उठाकर अपने देश को उस प्रलयंकरी गड़बड़ से बचाए रखने का भरसक यत्न करें, नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा। विचार करने पर इस भयानक आपत्ति को रोकने के लिये महात्मा गांधी का चरखा और खद्दर-प्रचार ही सर्वोत्तम उपाय दीखता है।

महाशक्ति

स्त्री एक महान् शक्ति है। माता, भगिनी, भार्या और बेटी—अपने इन चारों रूपों में वह अद्भुत कार्य-संपादन करती ह। उसके बहुत निकट होने से ही पुरुष उसके वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ सका। अन्य शक्तियों के सदृश इस महाशक्ति में भी संसार का कल्याण और अनिष्ट दोनों करने की क्षमता है। तनिक उदाहरण से समझिए। बिजली एक महाशक्ति है, इसके सदुपयोग से संसार का भारी कल्याण होता है। मशीनें चलती हैं, जहाज़ दौड़ते हैं, तार समाचार जाता है, प्रकाश होता है, खाना पकता है और रोगों की चिकित्सा होती है; परंतु प्राणी को एक क्षण में जीवन-शून्य भी यही

कर सकती है। वज्र के गिरने से गगनचुंबी वृक्ष एकदम धराशायी हो जाते हैं और बिजली के नंगे तार को छू देने से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। ठीक यही बात नारी-शक्ति पर चरितार्थ होती है। इस शक्ति के शुद्ध और पवित्र दशा में रहने से समाज में सुख और शांति का राज्य रहता है, और इसमें किसी प्रकार की अस्वाभाविकता और अपवित्रता के आ जाने से जाति का विध्वंस तक हो सकता है। सीता, द्रौपदी, हेलन और क्लियोपेटरा के वृत्तांत हमें इसी परिणाम पर पहुँचाते हैं।

खेद है कि स्त्री के वास्तविक स्वरूप को जानने का यत्न बहुत कम हुआ है। उसके स्वरूप को समझने के लिये पुरुष में बड़े भारी संयम और तप की आवश्यकता है। विषय-विकार के अधीन होकर पुरुष उस महाशक्ति के तत्त्व को देखने में असमर्थ हो जाता है। उसका विवेकचक्षु फूट-सा जाता है। इसके विपरीत वैराग्य और त्याग की डींग मारनेवाले पहले से ही पक्षपात में वह जाने के कारण गाढ़ी निद्रा में ही अपने ब्रह्म-ज्ञान और धार्मिकता की परा काष्ठा समझते हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि भर्तृहरि-जैसा बुद्धिमान् भी अपनी भूल स्वीकार न कर स्त्री ही को गाली देता है। जो पुरुष चाहे वह राव हो या रंक एक काल में एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करता है। वह यदि उन स्त्रियों से पातिव्रत की आशा

करे, तो यह उसकी भारी भूल है। उस मूर्ख को सोचना चाहिए कि जब मैं एक पत्नीव्रत नहीं हूँ, तो मेरी अनेक स्त्रियाँ पतिव्रता कैसे हो सकती हैं। जिस व्रत का पालन वह आप नहीं करता, उसके पालन की आशा दूसरों से किस मुँह से करता है।

संसार का अनुभव हमें बताता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री में प्रण की दृढ़ता कहीं अधिक है। जिस बात का वह एक बार प्रण कर लेती है, फिर उसको वह सहज में नहीं छोड़ती। उसके प्रण का अच्छा या बुरा होना दूसरी बात है। प्रेम-पात्र चुनने में वह भूल कर सकती है, परंतु जिस पर उसका एक बार प्रेम हो जाय, फिर उससे विराग होना कठिन है। प्रेम के संसार में प्रायः पुरुष ही विश्वासघात करते देखे गए हैं। स्त्री जिस पर सच्चा प्रेम करती है, अपने प्राणों पर खेलकर भी वह उस प्रेम को निभाती है। आगे हम दो-एक उदाहरण देते हैं, इनसे पता लग जायगा कि स्त्री में कितनी दृढ़ता है। यदि पुरुष अपने अज्ञान के कारण उसको अच्छे कार्य में नहीं लगा सकता, तो यह उसकी ही भूल है।

भारतवर्ष में सरकार अँगरेज़ के राज्य का आधार इसकी सिविल सर्विस है, जैसे चुने हुए बढ़िया और उच्च योग्यता के अँगरेज़ सिविल सर्विस में यहाँ भेजे जाते हैं, वैसे पुलिस, डाक्टरी या इंजीनियरी आदि किसी दूसरे

विभाग में नहीं। सरकार सिविलियन लोगों के चरित्र की देख-रेख भी बहुत अधिक रखती है। वह इनको सब कलंकों और दोषों से परे देखना चाहती है। यही कारण है कि हम बड़े-बड़े अँगरेज़ अधिकारियों में भी उन आचार-संबंधी दोषों को बहुत कम पाते हैं, जिनके कारण हमारे राजा और नवाब इतने गिरे हुए हैं। भारत में शायद ही कोई ऐसा राजा या नवाब होगा, जिसमें व्यभिचार का दोष न हो; परंतु उसके विपरीत बहुत ही कम ऐसे सिविलियन मिलेंगे, जिनके आचार पर उँगली उठाई जा सके। एक बात और भी है। पहले तो सरकार सिविलियनों के आचार की कड़ी रक्षा करती है। परंतु जब वह देखती है कि सिविलियन चेतावनी मिलने पर भी अपने आचार को सुधारने का यत्न नहीं करता, तो फिर वह उसे ऐसे गहरे गर्त में फेंक देती है कि जहाँ संसार में उसका पता तक नहीं लगता। बहुत वर्षों की बात है, ब्रह्मा में एक सिविलियन था। उसका एक ब्राह्मी लड़की के साथ अनुचित संबंध हो गया। वह स्त्री कई वर्ष उसके घर में पत्नी-रूप से रही। परंतु बाद को जब अपवाद बहुत फैलने लगा, और कुलीन योरपीय समाज में सिविलियन महाशय से घृणा होने लगी और कदाचित् सरकार की ओर से भी दबाव पड़ा, तब उसने उस स्त्री को घर से निकाल दिया। कहने को तो पुलिस ने उसे साहब की

कोठी से बाहर कर दिया, परंतु वह उसके हृदय से साहब को बाहर न निकाल सकी। वह स्त्री नित आकर दिन-भर उसके बँगले के गिर्द चक्कर लगाती और बड़े ही करुणा-जनक स्वर में दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहती—"लवली वैलंटाइन" ! हाय ! मिस्टर वैलंटाइन। उसकी यह पागल की-सी दशा कई वर्ष रही। इससे उस सिविलियन का अपयश और भी अधिक फैलने लगा। अंत को कमिश्नर ने उस स्त्री को एक दिन अपनी कोठी पर बुलाया। वहाँ और बहुत-से अँगरेज़ स्त्री-पुरुष भी उपस्थित थे। कमिश्नर साहब ने स्त्री से कहा—"लो ये पाँच हज़ार के नोट लेकर साहब का पीछा छोड़ दो। अब यदि तुम उसके पीछे पड़ोगी, तो तुम्हें कठोर दंड दिया जायगा। तुम कारागार में फेंक दी जाओगी। इस पर उस स्त्री ने कड़ककर उत्तर दिया—"इन नोटों को चूल्हे में फेंक दो। इनकी ज़रूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं हूँ। मैं वैलंटाइन की भूखी हूँ, रुपए की नहीं। ख़बरदार मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव फिर मत करना। मुझे तुम्हारे दंड का कुछ भी भय नहीं।"

उसके ये शब्द सुनकर कमिश्नर महोदय कुछ कहा ही चाहते थे कि उनकी मेम साहिबा झट बोल उठीं—"अब और कुछ मत कहिए। इसकी परीक्षा हो चुकी। भय और लालच इसको डिगाने में असमर्थ है।"

कमिश्नर महोदय ने एक और चाल चलने की ठानी।

वे उस स्त्री के माता पिता को रुपया देकर उस पर दबाव डलवाने की सोचने लगे। परंतु जब स्त्री को इस बात का पता लगा तब उसने अपने माँ बाप को डाँट कर कहा कि यदि तुमने रुपया ले लिया तो मैं तुम्हारे सारे परिवार का नाश कर डालूँगी। इसलिए भयभीत होकर वे उस लालच के शिकार होने से बचे रहे।

जब कमिश्नर साहब ने देखा कि वह स्त्री किसी प्रकार भी नहीं मानती और उस सिविलियन का अपयश दिन पर दिन बढ़ रहा है, तो उन्होंने उसे ब्रह्मा से उठाकर मद्रास प्रान्त में कहीं फेंक दिया। उस स्त्री को भी किसी प्रकार इस बात का पता लग गया। वह भी कुलियों में भरती होकर, बड़े बड़े कष्ट सहती हुई, मद्रास जा पहुँची और जिस कोठी में वह महाशय रहते थे उसके द्वार पर धरना धर कर बैठ गई। उसने साहब से स्पष्ट कह दिया कि यदि तुम कोई मेम ब्याह लाओगे, तो मैं उसे जीता न छोड़ूँगी, उसका कलेजा चीर कर खा जाऊँगी। बसाना है तो मुझे ही अपने घर में बसाओ।

साहब उस बला को देखकर बहुत घबराया। उसने पुलीस की सहायता से उसे वहाँ से हवालात में भेज दिया। फिर उसका मार्ग व्यय आदि देकर जहाज़ में लौटा दिया। ब्रह्मा में आकर बेचारी पागलों के सदृश घूमने लगी और एक डेढ़ वर्ष के बाद उसका शरीर छूट गया।

इसी प्रकार की एक और घटना सुनिए। अमृतसर की बात है। वहाँ एक कुलीन परिवार की रूपवती और युवती विधवा थी। वह शुद्धाचार और पवित्रता की देवी मानी जाती थी। वह सदा ब्रह्म-ज्ञान की चर्चा किया करती थी। सभी लोग उसका सम्मान करते थे। किसी दुष्ट का मन उसके रूप और यौवन पर ललचा गया। उसने उस पर अपना जाल फैलाया। कुछ देर के बाद उसे सफलता हो गयी। लक्ष्मी उसके प्रेमपाश में फँस गई। कुछ काल तक वह दुष्ट उसके साथ गुप्त रूप से विषय भोग का आनन्द लेता रहा।

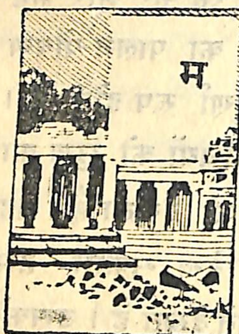
प्रकृत प्रेम अविनश्वर है। उसका सम्बन्ध शरीर के साथ नहीं, आत्मा के साथ है। इसके विपरीत मोह स्वार्थ मूलक है। इसमें स्थायित्व नहीं। कामी लोगों में प्रेम नहीं मोह होता है। स्वार्थ-सिद्धि हो चुकने पर वे एक दूसरे से ऊब जाते हैं। उपर्युक्त दुष्ट पुरुष भी उस विधवा का रूप यौवन लूटने के बाद उसे छोड़ कर भाग गया और किसी दूसरे शिकार की तलाश करने लगा। उसके इस विश्वासघात से विधवा के आत्मा पर भारी आघात हुआ। सौम्य मूर्ति लक्ष्मी ने डायन का महाकराल रूप धारण किया। उसने उस पापात्मा के परिवार को नष्ट कर डालने का निश्चय किया। उसने गुण्डों की सहायता से उस पुरुष की स्त्री पर बलात्कार कराया; उसकी युवती

लड़की को कुटनियों की सहायता से दुष्टों के फंदे में फँसा कर भ्रष्ट कर दिया, उसके बच्चे को कदाचित् विष भी खिला दिया। इस प्रकार उसका सर्वनाश करके ही उसके हृदय की जलन कुछ शांत हुई।

स्त्री के दोनों रूप हैं—महालक्ष्मी और रुद्राणी। ऊपर के दो उदाहरणों में हमने इस महाशक्ति के महाकराल रूप का निदर्शन कराया है। उसका महामाया रूप सीता और सावित्री की सहस्रों प्रतिनिधियों में आज भी हिंदू-गृहों में देखा जा सकता है। आप भूखी रह कर और कष्ट सह कर जब कोई देवी अपने परिवार का पालन-पोषण करती है तो वह इस शक्ति का अन्नपूर्णा रूप होता है। स्त्री तेल की तरह जलकर अपने संबंधियों को सुख का प्रकाश देती है। संसार उस प्रकाश को देखता है। वह उस भीतर जलनेवाले तेल को नहीं देख सकता—हम शीतल पवन को देनेवाले पंखे को हिलते देखते हैं। उसको हिलानेवाली अदृश्य विद्युत्शक्ति को नहीं देख सकते।

हमारे कथन का सारांश यह है कि स्त्री एक बहुत बड़ी शक्ति है। इसके वास्तविक स्वरूप को समझ कर इसके सदुपयोग करने में ही मनुष्य जाति का कल्याण है। इसको तुच्छ जानकर इसका निरादर करने से संसार का नाश भी निश्चित है।

अबलाओं के आँसू



म

नुजी कहते हैं, कि जिस कुल में स्त्रियाँ दुखित होकर हाहाकार करती हैं वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। मैं इससे कुछ आगे जाना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ, जिस जाति में और जिस धर्म में स्त्रियाँ दुःख से अश्रुपात करती हैं वह जाति और वह धर्म भी चिरकाल तक संसार में नहीं रह सकता। मैं कोई कवि नहीं और न स्त्री दास ही हूँ। इसलिए मेरे उपर्युक्त शब्द स्त्री-समाज की झूठी श्लाघा न समझे जाने चाहिएँ। मैं इन शब्दों में एक अटल सच्चाई देखता हूँ। इस सच्चाई के कारण ही ऋषियों ने समाज में स्त्री को इतना महत्व दिया था। दुःख और चिंता से रोते-धोते रहनेवाली माता कभी

नीरोग और वीर संतान को जन्म नहीं दे सकती। फिर जिस घर में लड़के और लड़कियाँ रोगी, कायर और बुद्धिहीन हैं उसका अभ्युदय असंभव है। परिवारों के समूह ही का नाम जाति है। दुःखी, कायर और दुर्बल मनुष्यों का समूह कभी सुखी और स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसीलिए आज्ञा है कि स्त्री चाहे कितना ही घोर अपराध कर चुकी हो उसे फूल तक भी नहीं मारना चाहिए। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसे दुराचार से न रोका जाय या उसे मन-मानी करने दी जाय। इससे समाज को घोर हानि होने का भय है। इसलिए जिस उद्देश से स्त्रियों को सुखी और प्रसन्न रखने की आज्ञा है वह महान् उद्देश्य उच्छृङ्खलता से लुप्त हो जाता है।

हिंदू-सभ्यता में स्त्री का स्थान बहुत ऊँचा है। उसके बिना कोई भी धर्म-कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। परंतु दुःख से कहना पड़ता है कि पौराणिक काल में हिंदू-स्त्री का पद बहुत गिर गया था और अब तक गिरा हुआ है। हिंदुओं के राजनीतिक और सामाजिक पतन के कारण चाहे अनेक हों, परंतु उनमें से अवश्य एक यह भी है। किसी फारसी कवि का कथन है कि पीड़ितों का करुण-क्रंदन बड़े-बड़े साम्राज्यों को नष्ट कर डालता है। इसे शायद कुछ लोग अतिशयोक्ति समझें। परंतु यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि आँख का आँसू अनेक ऐसी वस्तुओं

को भी गला देता है जिनको कोई भी दूसरी चीज़ नहीं गला सकती। फिर यदि ये आँसू किसी दुःखिया देवी के हों, तो न मालूम ये क्या कर डालें। हिंदू लोग ईसाइयों और मुसलमानों के तलाक की हँसी उड़ाया करते हैं। वे अपने विवाह-संबंध को अटूट और आध्यात्मक बताकर अपनी पारिवारिक शांति की डींग हाँका करते हैं; परंतु वे उस समय उन आत्म-त्यागी दुःखी देवियों को भूल जाते हैं जो दीपक में तेल की तरह जल कर उनके गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बना रही हैं। हिंदू-पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर लेता है। अपने अनुकूल न होने से वह पत्नी का परित्याग कर सकता है। उसकी इच्छा न रहते भी वह उसे अपने साथ रहने पर विवश कर सकता है और स्त्री के रुग्ण होने पर भी वह बलात् उसे माता बना सकता है। इसके विपरीत, स्त्री कानूनी तौर पर उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। वह इसकी भोग्य वस्तु है और यह भोगनेवाला है। कोढ़ी, कलङ्की, दुराचारी, और अत्याचारी होने पर भी वह इसका परित्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में हिंदू-पुरुषों को अपना विवाह-संबंधी नियम क्यों अच्छा न लगेगा? आगे मैं दो एक उदाहरण देता हूँ। उनसे पता लगेगा कि हिंदू कन्याओं को कैसे-कैसे अत्याचार सहने पड़ते हैं।

मेरे अपने ही गाँव की बात है। पिछले वर्ष एक लड़की

का विवाह हुआ । लड़की का पिता नहीं है। माता और भाई हैं। खेती का काम होता है। दरिद्रता के कारण भाई का विवाह नहीं हो सकता था। माता ने लड़की को बेचने की ठानी । लड़की की अवस्था मुश्किल से १४ वर्ष की होगी। माता ने रुपया लेकर एक चालीस वर्ष के अधेड़ उम्र के पुरुष के साथ उसकी सगाई कर दी। विवाह की तिथि निश्चित हो गई । विवाह-मंडप में जब वर महाशय पधारे, तो बालिका एक ढलती हुई जवानी के कुडौल पुरुष को देखकर बहुत घबराई। उसने वहीं रोना आरंभ कर दिया। उसने अपने सुहाग की चूड़ियाँ तोड़ डालीं। और मारे क्रोध के कपड़े फाड़ डाले। परंतु उसकी सुनता कौन था ? ज़बर्दस्ती ब्याह कर दिया गया। जब बारात के बिदा होने का समय आया, तो वह भाग कर कहीं छिप गई। ढूँढ़ने पर जब मिली तो उसने अपनी माता-रूपिणी बैरन से साफ कह दिया कि मैं तो इस बुड्ढे के साथ जाऊँगी नहीं, तू चली जा। यह तेरे ही योग्य और तेरे ही समवयस्क—हमउम्र—है। परंतु इस घोर विरोध का कुछ भी फल न हुआ। बेचारी को उस पुरुष के साथ जो उसे एक आँख भी न भाता था, पत्नी रूप में, रहना ही पड़ा । इस निर्दोष देवी की मानसिक व्यथा की कल्पना मात्र से मेरा कलेजा काँप उठता है।

एक दूसरी घटना सुनिए। मेरे एक मित्र की दो बहनें

हैं। बड़ी विधवा है। बहुत दुःखिया है। भाई का देहांत हो चुका है। दोनों बहनें अपनी विधवा भाभी के मायके में रहती थीं। भाभी के पिता ही ने छोटी बहन की सगाई एक जगह की। लड़की की आयु मुश्किल से तेरह चौदह वर्ष होगी। परंतु जिस विधुर के साथ उसका संबंध किया गया उसकी आयु पैंतालीस से कम क्या होगी। परंतु कन्या को वर की बड़ी उम्र का पता तक न दिया गया। वह यही समझती रही कि वर उसकी ही उम्र का है। जिस दिन बारात आई लड़की की सहेलियाँ उसे लेकर वर को देखने गईं। वर को बुड्ढा देख बालिका के हृदय पर भारी चोट लगी। वह मन को मसोस कर रह गई। घर आकर उसने बड़ी बहन से कहा—बहन, मौसा तो कहते थे कि तेरे लिये तेरी ही अवस्था का वर खोजा है। पर वह तो बुड्ढा है। इतना कहते ही कहते, अनाथा के नेत्रों से टप-टप आँसू गिर पड़े। वह अपने भारी शोक को न सँभाल सकी। पर क्या कर सकती थी? पराधीन थी। एक घंटा बाद सप्तपदी हो जाने पर वह उस वृद्ध महाशय की जंगम संपत्ति बन गई। अब उसे उसके अत्याचार से कानून भी नहीं बचा सकता।

तीसरी घटना एक चमार कन्या की है। उसका विवाह कोई चार पाँच वर्ष की आयु में हो गया था। परंतु वह ससुराल नहीं गई थी। इस बीच में किसी आर्यसमाजी ने

उसके पठन-पाठन का प्रबंध कर दिया। बुद्धि कुशाग्र थी, शीघ्र ही विद्या प्राप्त कर ली। नाना प्रकार के कष्ट और बाधाएँ होते हुए भी उसने पाँच कक्षाएँ पास कर लीं। सभ्य समाज में उठने-बैठने और बोलने-चालने का ढंग भी आ गया। साफ़-सुथरी रहने लगी। होशियारपुर के पास बसी गुलाम हुसेन नाम का एक गाँव है। वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की एक कन्या-पाठशाला है। वह उसमें सहायक अध्यापिका हो गई। इधर पति महाशय घास खोद कर निर्वाह करते थे। पहले तो इसलिए पत्नी को घर न लाये कि अभी छोटी है। व्यर्थ भोजन-वस्त्र का भार ही बढ़ेगा। परंतु जब वह बड़ी हो गई और पढ़-लिखकर विदुषी हो गई तो डरे कि मेरे जैसे निरक्षर के घर बसना वह कब पसंद करेगी। इसलिए उसने अपने पैसे खरे करने के लिए एक दूसरे पुरुष के पास उसे बेच दिया। रजिस्टरी की जो नकल अर्ज़ीनवीस के रजिस्टर में रहती है वह नीचे दी जाती है।

नक़ल रजिस्टर अज़ अमृतसरिया अर्ज़ीनवीस सदर होशियारपुर।

मवर्रिखा २७ जून सन् १९२८

महँगा (लड़के के पति) की ओर से इकरारनामा

मसम्मात बनती उर्फ़ रमाबाई ज़ोजा को मुज़हर ने अपनी ज़ौजियत से मुवलिग़ तीन सौ रुपया नक़द लेकर और बाक़ी दो सद रुपया लेना करके बहक़, मंगलसिंह

वल्द गएडासिंह रामदासिया सकना मंगूवाल तर्क कर दिया है।

इक़रारनामा अज़ जानिब मंगलसिंह

मुज़हिर मुसम्मात वनती उर्फ रमाबाई के बखावरा ख़ुद आबाद हो जाने पर मुबलिग़ दो सद रुपया महँगा वल्द दरबारी सकना धर्मकोट को दे दूँगा।

जब गाय या भैंस बेची जाती है तो भी बेचनेवाला उस का रस्सा खरीदनेवाले के हाथ में सौंपता है। परंतु इस सौदे में इतनी बात की भी आवश्यकता न समझी गई। रमाबाई को कुछ पता ही नहीं। वह अपनी पाठशाला में पढ़ा रही है। इधर वह बिक भी गई। एक दिन अचानक मंगल-सिंह बसी गुलाम हुसैन आया और पूछने लगा—रमाबाई कहाँ है? रमाबाई ने कहा—कहो, क्या काम है? तब वह बोला, यह देखो रजिस्टरी है। मैंने तुम्हें मोल ले लिया है। तुम अब मेरे घर चलो।

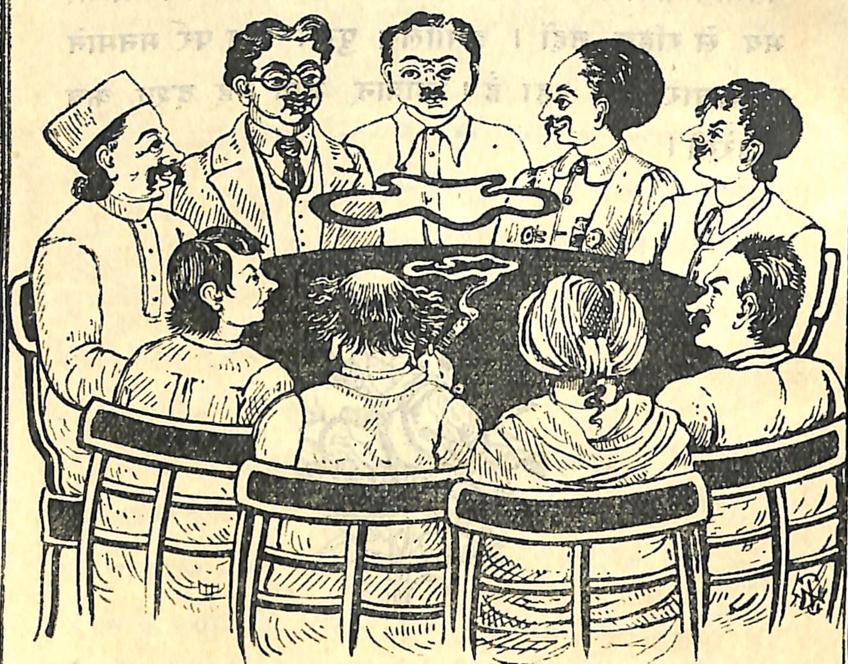
रमा को बड़ा कष्ट हुआ। लड़की चतुर थी। वह अपनी पाठशाला के भीतर चली गई ताकि वह दुष्ट किसी प्रकार का अपमान न कर सके। गाँव के लोग बेचारी की सहायता करने के स्थान में उलटा उसकी हँसी उड़ाने और लाँछन लगाने लगे। अंत को मंगलसिंह के विरुद्ध शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के पास शिकायत की गई। तब कई महीने के रगड़े-झगड़े के बाद अब उस धूर्त्त को डाँट-डपट

हुई और बेचारी का पीछा छूटा। रमा का जो पत्र हाल ही में मुझे मिला है उसमें अपने कष्टों का वर्णन करते हुए उसने स्त्रीजाति की बेवसी पर भी आँसू बहाए हैं। यदि स्त्रियों के लिए भी पुरुषों को इस प्रकार बेच डालना संभव होता तो संसार की अवस्था आज से सर्वथा भिन्न होती। स्त्री अबला है। वह अपनी रोटी आप नहीं कमा सकती। वर्तमान समाज में उसका अकेली रहना या विचरना भी भय से रहित नहीं। इसीलिए पुरुष उस पर मनमाने अत्याचार कर रहा है। भगवान् जाने यह दशा कब सुधरेगी।



साहित्य-सुमन-माला पुष्प ३

हास्य और व्यंग्य की अनूठी पुस्तक—मूल्य ।।।)



ठलुआ-क्लब

गुलाबराय

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला पुष्प १

अद्भुत और आश्चर्य-जनक जीव-जंतुओं का हाल—मू० ॥=)

वैचित्र्य-चित्रण



मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

मानव-शरीर-रहस्य

(दो भाग)

लेखक, डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा, एम्०बी०बी०एस्

शरीर-संबंधी ज्ञान का अभाव ही शारीरिक दुर्बलता का मुख्य कारण है। इस विषय की पुस्तकें हिंदी में अभी नहीं निकली हैं। डाक्टर साहब ने बड़े परिश्रम और अनुभव से यह ग्रंथ-रत्न हमारे लिये तैयार किया है। विषय वैज्ञानिक है, पर लेखक ने इसे ऐसे ढंग से लिखी है कि साधारण पाठक भी इसे आसानी से पढ़ और समझ सकता है। प्रत्येक पृष्ठ में नई और ज्ञातव्य बातें मिलती हैं, जिनका जानना प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिये आवश्यक ही नहीं, पर एक प्रकार से अनिवार्य-सा है। विषय की नवीनता और रोचकता कौतूहल-वर्द्धक है।

यह पुस्तक डाक्टरी और वैद्यक के विद्यार्थियों के लिये ही नहीं, डाक्टरों और वैद्यों के भी बड़े उपयोग की है।

सैकड़ों रंगीन और सादे चित्रों को देकर विषय को खूब स्पष्ट कर दिया गया है। भाषा बड़ी सुंदर, सरल और सुबोध है। प्रत्येक घर में इसकी एक प्रति का होना बड़ा आवश्यक है। मूल्य लगभग ६)

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.